इकाई–1: निर्देशन: संप्रत्यय, सिद्धान्त, मान्यताएँ, मुद्दे एवं समस्याएँ, निर्देशन की आवश्यकता, कार्य-क्षेत्र एवं महत्व, निर्देशन के प्रकार (Guidance: Concept, Principles, Assumptions, Issues and Problems; Need, Scope and Significance of Guidance, Types of Guidance)

इकाई संरचना :

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 निर्देशन का संप्रत्यय
1.3 सिद्धान्त
1.4 धारणाएँ
1.5 मुद्दे एवं समस्याएँ
1.6 निर्देशन की आवश्यकता
1.7 कार्यक्षेत्र
1.8 महत्व
1.9 निर्देशन के प्रकार
1.10 सारांश
1.11 शब्दावली
1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.13 सन्दर्भ एवं ग्रन्थ सूची
1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

मानव जीवन में परिवर्तन बहुत तीव्र गति से हो रहा है। संचार माध्यमों, आवागमन के साधनों, सूचना के द्रुत गति से आदान–प्रदान ने इक्कीसवीं सदी के व्यक्तियों में भौतिक दूरी को कम कर दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में मानव के विकास की गति द्रुत हुई है तथा शिक्षा, व्यवसाय, रोजगार व उद्यमों के नूतन क्षितिज उभरे हैं। ऐसी स्थिति में मानव जीवन में विभिन्न अवस्थाओं पर, जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रायः सभी व्यक्तियों को अपने जीवन क्षेत्र में विद्यमान अनेक विकल्पों में से कुछ एक का सोच–समझ कर चयन करने की आवश्यकता का अनुभव होता है। विकल्प का चयन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि चयनित मार्ग जीवन में सन्तुष्टि, समायोजन, विकास एवं स्वास्थ्य अर्जित करने की दिशा में सहायक सिद्ध हो। ऐसा करते समय व्यक्ति को अन्य लोगों से सहयोग लेने की आवश्यकता का अनुभव होता है। ऐसी

आवश्यकताएँ प्राचीन काल से विद्यमान रही हैं, किन्तु आधुनिक काल में जीवन की बढ़ती हुई जटिलताओं के कारण ऐसे बाहरी सहयोग की आवश्यकता अब और भी अधिक अनुभव की जा रही हैं जो कि बुद्धिमत्तापूर्ण चयन करने एवं उपयुक्त आत्मनिर्णय विकसित करने हेतु व्यक्ति को समर्थ बनाये, निर्देशन इस प्रक्रिया में सहायक होता है। हम यहाँ निर्देशन व परामर्श के संप्रत्यय, उसकी उपयोगिता व महत्व आदि को जानने का प्रयास करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप–

- निर्देशन को भलीभाँति समझ सकें।
- निर्देशन के सिद्धान्तों को जान सकें।
- निर्देशन के मुद्दे एवं समस्याओं से अवगत हो सकें।
- निर्देशन के महत्व को जान सकें।
- निर्देशन के कितने प्रकार होते हैं, समझ सकें।

1.2 निर्देशन का संप्रत्यय

निर्देशन एक ऐसा सम्प्रत्य है जो कि न तो सरल है, न ही आसानी से समझे जाने योग्य है। एक सम्प्रत्यय के रूप में इसके अर्थ में विविधता, व्यापकता एवं गहराई है। निर्देशन किसी व्यक्ति द्वारा माँगे जाने पर अथवा व्यक्ति की आवश्यकता को ध्यान में रखकर न माँगे जाने पर भी स्वतः उपलब्ध कराई जाने वाली सहायता होती है जो व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु समर्थ बनाती है। निर्देशन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को समस्या समाधान में व समायोजन करने में सहायता मिलती है। निर्देशन जीवन में उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए व्यक्तिगत सहायता है। निर्देशन व्यक्ति के लिए समस्याओं का निराकरण एवं समाधान नहीं है, बल्कि व्यक्ति की सहायता द्वारा वह उसके अन्दर अर्न्तबुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे वह स्वयं समस्याओं का समाधान प्राप्त कर पाने में समर्थ हो जाता है। निर्देशन एक क्रिया है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को सहायता प्रदान की जाती है जिससे वह अपने निर्णय ले सके, निष्कर्ष निकाल सके तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, अपनी क्षमता, योग्यता तथा मानसिक स्तर का ज्ञान प्राप्त करता है। निर्देशन किसी भी समस्या का समाधान नहीं करता है वरन् व्यक्ति को ही समस्या समाधान करने योग्य बनाता है। इस प्रकार निर्देशन का अर्थ है व्यक्ति को उसकी शक्तियों का ज्ञान इस प्रकार करा दिया जाय कि वह अपनी शक्तियों को पहचान सके। वास्तव में निर्देशन ऐसी सहायता है जो व्यक्तिगत रूप से योग्य और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति के लिए उसके जीवन

के कार्यों का प्रबन्ध करने और अपना स्वयं का भार उठाने के लिए उपलब्ध कराई जाती है।

निर्देशन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है, उसकी समस्या नहीं। उसकी समस्याओं का अध्ययन, निर्देशन बाद में करता है, पहले तो व्यक्ति की शक्ति तथा योग्यताओं का अध्ययन करता है। यूनाइटेड ऑफिस ऑफ एजुकेशन ने लिखा है, ''निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति का परिचय विभिन्न उपायों से, जिनमें विशेष प्रशिक्षण भी सम्मिलित है तथा जिनके माध्यम से व्यक्ति को प्राकृतिक शक्तियों का बोध भी हो, कराती है जिससे वह अधिकतम व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित कर सके।''

निर्देशन वास्तव में एक सेवा है जो व्यक्ति को स्वयं के बारे में जानने अर्थात् यह ज्ञान प्राप्त करने में कि उसकी मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ एवं योग्यताएँ क्या हैं, उसकी भौतिक, मानसिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताएँ क्या हैं, सहायता प्रदान करती है तथा इसके साथ–साथ व्यक्ति की अधिकतम विकास प्राप्त करने में भी सहायक होती है। इसके अन्तर्गत वह सेवाएँ भी सम्मिलित हैं जो व्यक्ति की मदद केवल आत्मविश्वास की प्राप्ति में ही नहीं वरन् आत्म–निर्देशन में कौशलों को विकसित करने में भी करती है। ये सेवाएँ व्यक्ति को उपयुक्त व्यक्तिगत शैक्षिक एवं व्यावसायिक लक्ष्यों को स्थापित करने में सहायता प्रदान करती हैं अर्थात् यह व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वह इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वांछित तरीके से योजना बनाने पर विचार हेतु अपनी आकांक्षाओं एवं उद्देश्यों के अनुरूप मूल्यों के मानक को विकसित कर सके।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास वातावरण के सम्पर्क में ही सम्भव है। इसलिए व्यक्ति को सन्तुलित विकास तथा जीवन की सफलता हेतु आवश्यक हो जाता है कि वह स्वयं अपने आपको तथा वातावरण को समझे जिससे वह विभिन्न परिस्थितियों से समायोजन स्थापित कर सके। जीवन पथ पर व्यक्ति को अनेक कठिनाइयों का सामना व समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। कभी–कभी इनका समाधान व्यक्ति अकेले नहीं कर पाता है उसे अन्य व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। सभी प्रकार की सुनियोजित सहायता जो व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाने तथा उसके जीवन को सुखमय बनाने में सहायक होती है, निर्देशन कहलाती है। निर्देशन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए क्रो तथा क्रो ने लिखा है कि, यह एक व्यक्ति के दृष्टिकोण को दूसरे पर लादने की प्रवृत्ति नहीं है, निर्देशन में व्यक्ति प्रधान माना जाता है तथा व्यक्ति स्वयं अपने बारे में निर्णय करता है। यह दूसरों के दायित्व को अपने ऊपर लेकर चलना नहीं है वरन् निर्देशन एक ऐसी सहायता है जो व्यक्तिगत रूप से योग्य और प्रशिक्षित व कुशल परामर्शदाता द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति को उसके जीवन कार्यों का प्रबन्ध करने, अपने दृष्टिकोण का विकास करने, अपने निजी निर्णय करने एवं अपना स्वयं का भार उठाने के लिए दी जाती है।

1.3 निर्देशन के सिद्धान्त

निर्देशन के सिद्धान्त से आशय उन मूलभूत नियमों से है जिनके आधार पर निर्देशन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है। निर्देशन में व्यक्ति के भविष्य के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता रहती है। मूलतः यह निर्देशन कार्यकर्त्ता की दूरदर्शिता एवं सूझबूझ पर निर्भर करता है। हम यह भलीभाँति रूप से जानते हैं कि सामान्य एवं असामान्य प्रायः दोनों परिस्थितियों में निर्देशन की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है। लेस्टर डी0 क्रो तथा एलिस क्रो ने अपनी पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू गाइडेन्स' में निर्देशन के चौदह सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् है–

(1) व्यक्ति की सम्पूर्ण प्रदर्शित अभिवृत्तियों एवं व्यवहार के स्वरूपों में उसके जटिल व्यक्तित्व साँचे का हर पक्ष एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है। उन निर्देशन सेवाओं को जिनका लक्ष्य किसी खास अनुभव क्षेत्र में वांछनीय समंजन लाना है, व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से महत्त्व देना चाहिए।

(2) यद्यपि सभी मनुष्य कई दृष्टियों से समान हैं, तथापि व्यक्तिगत भिन्नताओं को पहचानना तथा बालक, किशोर या प्रौढ़ के निर्देशन या सहायता के सिलसिले में उन पर यथेष्ठ ध्यान देना अपेक्षित है।

(3) निर्देशन का प्रकार्य है–(अ) व्यक्ति को प्रेरक, उपयोगी तथा प्राप्त होने योग्य उद्देश्यों के निरूपण में मदद देना तथा (ब) इन उद्देश्यों को अपने व्यक्तिगत मामलों में लागू करना।

(4) वर्तमान सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक असन्तोषों के कारण अनेक अपसमंजनकारी तत्त्व उत्पन्न हो रहे हैं जिनसे निपटने के लिए अनुभवी एवं भली प्रकार से प्रशिक्षित निर्देशन–उपबोधकों एवं समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता है।

(5) निर्देशन को एक ऐसी सतत् सेवा के रूप में उपकल्पित करना चाहिए जो व्यक्ति को उसके बाल्यकाल से लेकर प्रौढ़ावस्था तक उपलब्ध रहती है।

(6) निर्देशनका कार्य उन कतिपय व्यक्तियों में ही सीमित नहीं होना चाहिए जो इसकी आवश्यकता स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं, व्यक्ति इसे सभी आयु–वर्ग के उन लोगों के लिए उपलब्ध कराना चाहिए जो इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में लाभ उठा सकते हैं।

(7) विविध पाठ्यक्रमों के लिए गठित अध्ययन सामग्रियों तथा शिक्षण पद्धतियों में निर्देशन का दृष्टिकोण झलकना चाहिए।

(8) यद्यपि निर्देशन क्रिया का ताल्लुक व्यक्ति के जीवन के हर पहलू से होता है, इसके अन्तर्गत सामान्यतः वे क्षेत्र आते हैं जिनमें इस बात में दिलचस्पी रखी जाती है कि व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक अस्वास्थ्य उसके परिवार, विद्यालय तथा व्यावसायिक एवं सामाजिक माँगों एवं सम्बन्धों में किस सीमा तक बाधक होता है

अथवा इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली परिस्थितियों से व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य किस हद तक प्रभावित होता है?

(9) शिक्षकों तथा अभिभावकों को निर्देशनपरक जिम्मेदारियाँ सौंपनी चाहिए जिससे वे निर्देशन–कार्य में अपेक्षित भूमिका निभा सकें।

(10) किसी आयु–स्तर पर निर्देशन की विशिष्ट समस्याओं को उन्हीं व्यक्तियों को सुपुर्द करना चाहिए जो खास क्षेत्र के समंजन की प्रक्रियाओं से निपटने के लिए प्रशिक्षित हों।

(11) निर्देशन के विविध पक्षों का प्रशासन बुद्धिमत्तापूर्वक एवं व्यक्ति के सम्यक् अवबोध के आधार पर करने की दृष्टि से व्यक्तिगत मूल्यांकन तथा अनुसंधान के कार्यक्रमों को संचालित करना चाहिए तथा छात्र की प्रगति एवं उपलब्धि का सही विवरण प्रस्तुत करने वाले संचयी अभिलेखों को निर्देशनकर्मियों तक उपलब्ध करना चाहिए। साथ ही ठीक ढंग से चुने गये मानकीकृत परीक्षणों तथा मूल्यांकन के अन्य उपकरणों के माध्यम से छात्रों की मानसिक क्षमता, निष्पत्ति, प्रदर्शित रुचियों एवं व्यक्तित्व विषयक विशेषताओ से सम्बन्धित विशिष्ट प्रकार के प्रदत्तों (आधार–सामग्री) को संकलित कर उनका रिकार्ड रखना चाहिए तथा निर्देशन के लिए उनका समुचित प्रयोग करना चाहिए।

(12) व्यक्तिगत एवं सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुकूल निर्देशन के लिए गठित कार्यक्रम नमनीय (लचीला) होने चाहिए।

(13) निर्देशन कार्यक्रम का दायित्व ऐसे सुयोग्य एवं सुप्रशिक्षित नेतृत्व पर केन्द्रित होना चाहिए जो अपने सहकर्मियों तथा समुदाय कल्याण में रुचि रखने वाले व्यक्तियों एवं निर्देशन से जुड़ी एजेन्सियों के पूर्ण सहयोग द्वारा कार्य कर सके।

(14) विद्यालयों में उपलब्ध निर्देशन के कार्यक्रमों का समय–समय पर मूल्यांकन करना चाहिए। इनकी कार्यवाहियों की सफलता ऐसे परिणामों से ज्ञात करनी चाहिए जो निर्देशन कार्य से जुड़े हुए निर्देशकों तथा निर्देशित व्यक्ति में कार्यक्रम के प्रति प्रदर्शित अभिवृत्तियों द्वारा प्रगट होती है। निर्देशन की कार्यवाही का लाभ जिन्हें मिला है उनके व्यवहार में किस तरह की तब्दीली आई, यह उससे भी मालूम होता है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों पर विचार करने से यह अवगता होगा कि निर्देशन–कार्यक्रमों के सम्यक संचालन हेतु अत्यन्त कुशल एवं दूरदर्शितापूर्ण नेतृत्व अपेक्षित है। इसके मूल में निर्देशनकर्मियों, प्रशासकों, शिक्षकों, विशेषज्ञों एवं निर्देशन का लाभ उठाने वाले सेवार्थियों का आपसी सहयोग, उनकी निष्ठा तथा प्रेरणा की जबर्दस्त भूमिका होती है।

निर्देशन के सिद्धान्तों की संख्या निश्चित नहीं की जा सकी है। अलग–अलग विद्वानों ने निर्देशन के सिद्धान्तों की संख्या अलग–अलग मानी है। लीफिवर व टसेल, जोन्स इम्ब्रीज और ट्रैक्सलर आदि ने भी निर्देशन के सिद्धान्तों का अलग–अलग

उल्लेख किया है। किन्तु इन सभी विद्वानों द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों में कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जो प्रकारान्तर से सभी ने स्वीकार किये हैं। हम यहाँ उनका उल्लेख समीचीन समझते हैं–

1. व्यक्ति के महत्व एवं प्रतिष्ठा की स्वीकृति :

निर्देशन का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं महत्व को ध्यान में रखा जाय। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों, सम्भावनाओं एवं क्षमताओं के अनुरूप पूर्ण विकास तक ले जाना निर्देशन का लक्ष्य है। तभी समाज संगठित रूप से अधिकतम प्रगति कर सकता है। इसी सिद्धान्त से जुड़ा हुआ निर्देशन का एक अन्य सिद्धान्त है कि निर्देशन की सुविधा सभी को उपलब्ध हो, केवल कुछ विशेष आवश्यकता वाले व्यक्तियों के लिए ही नहीं। सामान्य व्यक्ति के जीवन में प्रगति के लिए एवं समस्याओं के समाधान के लिए निर्देशन उतना ही आवश्यक है, जितना कि विशेष समस्या वाले व्यक्ति के लिए।

2. स्वयं निर्देशन करने की योग्यता है :

निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति की इस प्रकार सहायता करे कि वह समस्याओं के प्रति अपनी सूझ, विवेक एवं निर्णय करने की योग्यता विकसित कर ले। इसके लिए व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों को समझने, उनमें समायोजन करने एवं अपनी क्षमताओं से वाकिफ होने में निर्देशन सहायक सिद्ध होता है। व्यक्ति धीरे–धीरे समस्याओं के बारे में आत्म–निर्भरता एवं आत्म–विश्वास विकसित कर लेता है। यह ध्यान रहे कि विशेष परिस्थितियों को छोड़कर परामर्शदाता को अपनी ओर से कोई निर्णय या हल उपबोध्य पर थोपना नहीं चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर सम्भव है कालान्तर में वह हल व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हो तथा उसमें आत्मविश्वास की कमी हो जाय।

3. निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है :

निर्देशन सभी के लिए सुलभ होना चाहिए। निर्देशन की आवश्यकता सामान्य व्यक्ति के लिए भी उतनी ही है जितनी विशिष्ट समस्या वाले व्यक्तियों के लिए। निर्देशन प्रक्रिया किसी विशेष आयु के लोगों तक सीमित नहीं है अपितु यह सम्पूर्ण जीवन भर चलती रहनी चाहिए, क्योंकि जीवन और समस्याओं का चोली–दामन का साथ है। अधिकांश समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनका हम तुरन्त तैयार कोई हल प्रस्तुत नहीं कर सकते, उनके समाधान के लिए समय की अपेक्षा होती है। निर्णय समझ–बूझ कर लिये जाते हैं, जल्दबाजी में नहीं। इसके अतिरिक्त विशिष्ट समस्या का समाधान प्राप्त हो जाने के बाद उपबोध्य के सामने अन्य नई समस्याएँ आती रहती हैं। फलस्वरूप निर्देशन की आवश्यकता सतत् विद्यमान रहती है और इस प्रकार निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है; हाँ यह अवश्य होता है कि ज्यों–ज्यों उपबोध्य की सूझ एवं विवेक का विकास होता जाता है, वह परामर्शदाता या निर्देशक पर अपेक्षाकृत निर्भरता कम करता जाता है।

4. सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टि :

व्यक्ति की समस्याओं पर विचार करते समय निर्देशक को उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ध्यान में रखना आवश्यक है। व्यक्ति की समस्याएँ शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत या अन्य कई प्रकार की हो सकती हैं पर उनका सम्बन्ध एक दूसरे से बना रहता है। उदाहरण के लिए, व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास एवं उसके समायोजन सम्बन्धी कठिनाइयों को भी ध्यान में रखना होता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व टुकड़ों में नहीं विभक्त किया जा सकता। वह एक संश्लिष्ट इकाई के रूप में कार्य करता है

5. विभिन्न कायकर्त्ताओं के कार्यों में समन्वय :

निर्देशन प्रक्रिया अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत होती जा रही है। फलस्वरूप विभिन्न कार्यों के लिए विशिष्टीकृत लोगों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है। निर्देशन सेवाओं का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि सभी निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्नों में समन्वय स्थापित किया जा सके। प्रत्येक कार्यकर्त्ता अपनी योग्यता के अनुरूप योगदान करे और सभी कार्यकर्त्ता अपने प्रयत्नों को समन्वित दिशा में ले जायें। इसके लिए इन बातों का ध्यान रखना जरूरी है–(1) निर्देशन सेवाओं का संगठन तर्कसंगत आधार पर किया जाय, (2) विशिष्ट योग्यताओं के अनुरूप अलग–अलग कार्यकर्त्ताओं को अलग–अलग भूमिकाएँ सौंपी जाये और निर्देशन सेवाओं से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध सभी व्यक्ति पूरे दिल से एक–दूसरे को सहयोग प्रदान करें।

निर्देशन प्रक्रिया में निर्देशन कर्मचारियों के साथ ही कक्षाध्यापक, माता–पिता एवं अन्य सूत्रों का सहयोग निर्देशन की सफलता के लिए आवश्यक है। जहाँ निर्देशन सेवा में एक से अधिक व्यक्ति लगे हों, वहाँ एक निरीक्षण अधिकारी उन सभी के कार्यों के संयोजन के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। कार्य बड़ा हो अथवा छोटा, निर्देशन की पूर्णता के लिए सभी को समुचित महत्व प्रदान किया जाना चाहिए।

6. निर्देशन सेवा के वस्तुगत अध्ययन विश्लेषण पर आधारित होनी चाहिए :

निर्देशन प्रक्रिया आधुनिक युग में काफी आगे बढ़ चुकी है। समस्याओं का अब विस्तृत परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाता है और प्राप्त आँकड़ों के आधार पर निर्देशन कार्य चलता है। बिना गहराई से अध्ययन किये हुए कोई परामर्शदाता अपना कार्य करता है तो उपबोध्य को लाभ के बजाय हानि पहुँचा सकता है। शैक्षिक, व्यावसायिक तथा निजी किसी क्षेत्र में निर्देशन की सफलता के लिए निर्देशक के पास विभिन्न निर्देशन संस्थाओं, व्यावसायिक सूचना–प्राप्ति के सूत्रों तथा व्यक्ति को रोजगार प्रदान करने में सहायता करने वाली संस्थाओं के बारे में पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए।

7. समकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से परिचय :

निर्देशकों को जहाँ अपने क्षेत्र में जानकारी होनी आवश्यक है वहाँ समकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन से भी परिचित होना चाहिए। क्रो तथा क्रो के अनुसार व्यक्ति के अपसमायोजन में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक अशान्ति का महत्वपूर्ण हाथ होता है। अतः समस्याओं का निदान खोजते समय उन राजनीतिक एवं सामाजिक सन्दर्भों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिनके कारण अपसमायोजन की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

8. लचीलापन :

व्यक्ति की समस्याओं का जन्म उस परिवेश में होता है जहाँ वह जीवन बिताता है। परिवेश के बदलने से समस्याओं का रूप भी परिवर्तित होता रहता है। अतः निर्देशन में आवश्यकतानुसार परिवर्तन के लिए लचीलापन होना चाहिए। व्यवस्थित निर्देशन कार्यक्रम रूढ़ि पर आधारित न होकर समाज और व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार सतत् परिवर्तन का प्रावधान रखता है।

9. सर्वांगीण विकास में सहयोग :

निर्देशन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायता करे। यद्यपि निर्देशन के कार्य का प्रारम्भ किसी विशिष्ट समस्या के सन्दर्भ में होता है तथापि उसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होना है। व्यक्ति की विशिष्ट समस्या का सम्बन्ध उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से होता है। किसी भी कार्य को करते समय व्यक्ति के दृष्टिकोण, मान्यताएँ, मूल्य एवं कार्य करने के ढंग इत्यादि में उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रतिच्छादित होता है। इसलिए निर्देशन सेवाओं को व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में सहायक होना चाहिए।

10. अधिकांश व्यक्तियों को सामान्य मानना :

हम्फ्रीज एवं ट्रैक्सलर के अनुसार निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था करते समय अधिकांश व्यक्तियों को सामान्य मानकर रखना चाहिए। कुछ विशिष्ट व्यक्ति, जो बौद्धिक या शारीरिक रूप से पिछड़े हों या जिनका संवेगात्मक विकास बहुत ही अपर्याप्त हो विशेष निर्देशन की आवश्यकता अनुभव करता है। ऐसे लोगों के लिए निर्देशन की विशिष्ट सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं पर अधिकांश व्यक्तियों को जो सामान्य के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, समस्याओं एवं समायोजन के लिए निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। छात्रों के मन पर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए कि निर्देशन कर्मचारी केवल 'समस्या छात्रों' पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। इसके लिए विशिष्ट समस्या वाले छात्रों को विशेष योग्यता प्राप्त निर्देशकों को सौंपकर सामान्य निर्देशक सामान्य छात्रों के लिए अधिक समय निकाल सकता है। ऐसा करके वह अन्य छात्रों को अपसमायोजन एवं असामान्य बनने से रोकने में सहायक हो सकता है।

11. निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को आवश्यक गोपनीयता बनाये रखना :

निर्देशनकर्त्ता को छात्रों या निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का विश्वास अटूट रखने के लिए उनके द्वारा प्रदत्त व्यक्तिगत सूचनाओं को अनावश्यक रूप से सभी के सामने नहीं बताना चाहिए। गोपनीयता के नैतिक मानदण्डों का पालन उन्हें कठोरता से करना चाहिए। यदि निर्देशक ही इसका पालन नहीं करता है तो वह उपबोध्य का विश्वास खो बैठेगा और अन्य विशिष्ट छात्रों को भी छात्र अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के बारे में स्पष्टतापूर्वक सभी बातें बताने से हिचकिचायेगा। निर्देशन सेवाओं में लगे हुए व्यक्तियों को यदि इस प्रकार की जानकारी देनी हो तो भी उसे व्यक्तिगत रूप से मिलकर बताना चाहिए।

12. वैयक्तिक भिन्नताओं का ध्यान :

यद्यपि सामान्य व्यक्तियों की अनेक समस्याओं में बहुत कुछ समानता होती है फिर भी आनुवंशिकता एवं परिवेश के कारण समस्याओं का स्रोत अलग–अलग हो सकता है। कोई भी दो व्यक्ति पूर्णतः एक जैसे नहीं होते, अतः निर्देशन कार्यकर्त्ता को निर्देशन सेवाएँ प्रदान करते समय वैयक्तिक भिन्नताओं को अपनी दृष्टि में रखना चाहिए।

13. विशेष प्रशिक्षण :

आज विज्ञान एवं अध्ययन की व्यापकता के साथ–साथ प्रत्येक क्षेत्र में विशेषीकरण का जोर है। सभ्यता एवं मानव–व्यवहार आज पहले से कहीं अधिक जटिल होते जा रहे हैं। अतः नई–नई समस्याओं एवं परिस्थितियों में साधारण अनुभव प्राप्त व्यक्ति सफल निर्देशक नहीं हो सकता। इसके लिए निर्देशन कर्मचारियों को अपने–अपने कार्य की विशेष दीक्षा की व्यवस्था की जाती है। मूल्यांकन एवं व्यवहार के अध्ययन के लिए व्यावसायिक योग्यता का पता लगाने के लिए और व्यक्ति की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अतः कुशल निर्देशन के लिए निर्देशन कर्मचारियों के विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान आवश्यक है।

हमने निर्देशन के लक्ष्यों, आधारभूत मान्यताओं एवं सिद्धान्तों पर विचार किया। किसी भी कार्य को सफल बनाने में लक्ष्य की निश्चितता एवं व्यवस्थित सिद्धान्तों का ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निर्देशन प्रक्रिया का सम्बन्ध व्यक्ति के सर्वांगीण विकास से है, उसकी प्रतिभा के विकास में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने से है। समाज के उन्नति एवं समृद्धि की ओर ले जाने के लिए सभी व्यक्तियों की क्षमता एवं सम्भाव्यता के अनूरूप शैक्षिक, व्यावसायिक एवं निजी विषयों में निर्देशन की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

1.4 धारणाएँ

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का व्यक्ति के ऊपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। सामंजस्य स्थापित करने में व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की

समस्याओं का सामना करना पड़ता है। निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर इन समस्याओं के समाधान की क्षमता का विकास प्रत्येक व्यक्ति में किया जा सकता है। निर्देशन की धारणा कुछ आधारभूत मान्यताओं से समर्थित होती है। कुछ निर्देशन की धारणाएँ निम्नलिखित रूप में वर्णित की जा सकती हैं–

(1) **वैश्विक भिन्नता**–व्यक्ति अपनी जन्मजात योग्यता, अभिक्षमता, रुचियों तथा अभिवृत्तियों की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता रखता है। यह भिन्नता हमारे सम्पूर्ण व्यवहार संघात को निर्मित करती है।

(2) **अवसरों की विविधता**–व्यक्ति में विविध प्रकार की भिन्नताओं के साथ ही बाह्य परिवेश में भी विभिन्न प्रकार की भिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं। शैक्षिक, व्यावसायिक, पारिवारिक व सामाजिक क्षेत्रों में यह विविधता देखी जा सकती है। व्यक्ति का समुचित विकास वांछित दिशा में हो सके तथा विकास के उपरान्त अवसरों का सही उपयोग किया जा सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि सही समय पर इन अवसरों का चयन करने की योग्यता का विकास व्यक्ति में किया जा सके। निर्देशन के द्वारा व्यक्ति को इन अवसरों से सम्बन्धित समस्याओं तथा किस अवसर का, किस समय तथा किस प्रकार उपयोग किया जाय आदि के समाधान हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये जा सकते हैं।

(3) **वैयक्तिक विकास का भावी कथन सम्भव है**–मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे परीक्षणों का निर्माण किया है जिनके उपयोग से व्यक्ति के व्यक्तित्व, बुद्धि, अभिरुचि, अभिक्षमता, अभियोग्यता, आदि का मापन किया जा सकता है और व्यक्ति में निहित मानसिक एवं संवेगात्मक विशेषताओं की वस्तुनिष्ठ जानकारी प्राप्त कर व्यक्ति के विकास की दिशा एवं गति के सम्बन्ध में पूर्व कथन किया जा सकता है कि व्यक्ति किस क्षेत्र में अपनी सर्वाधिक योग्यता का प्रदर्शन कर सकेगा।

(4) **समायोजन व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता है**–अवसरों की विविधता एवं व्यक्ति के भीतर पाई जाने वाली विभिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि समायोजन व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता है, शिक्षा एवं निर्देशन द्वारा इसकी सन्तुष्टि आवश्यक है। निर्देशन की मुख्य धारणा है व्यक्ति का अपने शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक पर्यावरण में अधिकाधिक समायोजन लाना है। व्यक्ति के वांछित विकास के लिए समायोजन की क्षमता का विकास यथासमय किया जाना चाहिए, यह निर्देशन की मूल अभिग्रह है। समायोजन के बिना हमारा पारिवारिक, शैक्षिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन बोझ बन सकता है।

(5) **समायोजन द्वारा न केवल वैयक्तिक वरन् सामाजिक विकास भी सम्भव है**–व्यक्ति तथा समाज दोनों के कल्याण में निर्देशन का योगदान होता है। व्यक्ति को स्वयं का विकास तथा उसके समाज की अपेक्षित प्रगति उसकी योग्यताओं, अभिक्षमताओं एवं रुचियों तथा बाह्य अवसरों में तालमेल एवं समुचित समायोजन पर निर्भर होती है। निर्देशन की धारणा है कि व्यक्ति और पर्यावरण में समायोजन की

सम्भावना बढ़े, समरसता आये तथा परस्पर सम्बन्धों में तनाव न हो। व्यक्ति में समायोजन की भावना एवं कुशलता का विकास करने से व्यक्ति एवं समाज, दोनों का ही विकास किया जा सकता है। जिन समस्याओं का तत्काल समाधान सम्भव न हो सके उन समस्याओं से व्यर्थ ही जूझने के स्थान पर समायोजन का प्रयास किया जाना चाहिए।

निर्देशन सम्बन्धी उपरोक्त धारणाओं का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है क्योंकियह प्रक्रिया उन मनोवैज्ञानिक आधारों पर संचालित होती हैं जिनको विभिन्न प्रकार के अनुसंधानों के माध्यम से ज्ञात किया जा चुका है। यही धारणाएँ निर्देशन के सिद्धान्तों के निर्माण में कार्य करती हैं।

1.5 मुद्दे एवं समस्याएँ

निर्देशन का मूल कार्य उन व्यक्तियों की सहायता करना है जिन्हें अपनी समस्या के समाधान के लिए सहायता की आवश्यकता है और जो सहायता चाहते हैं। मानव स्वभाव की जटिलता, एक ही माता–पिता के बच्चों में भी होने वाला विकास सम्बन्धी अन्तर परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक दशाओं में निरन्तर होने वाली नूतनता, निर्देशन के मुख्य मुद्दे हैं। भारतीय सन्दर्भ में निर्देशन सेवाओं का आयोजन अधिकांशतः माध्यमिक विद्यालयों को दृष्टिगत रखकर किया गया है। एन0सी0ई0आर0टी0 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) राष्ट्रीय स्तर पर, राज्यों में निर्देशनशाला, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान भी इस कार्य को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। परन्तु निर्देशन का व्यवस्थित रूप कुल मिलाकर माध्यमिक स्तरों पर ही दिखाई पड़ता है। प्राथमिक शिक्षा, कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों के स्तर पर निर्देशन का स्वरूप कमजोर एवं अस्पष्ट सा लगता है। जबकि स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, जनसंख्या का दबाव बढ़ा है, व्यवसाय के अवसरों में अनियंत्रित विस्तार, मानवीय संसाधनों के विकास में न्यूनताओं के परिणामस्वरूप निर्देशन की समस्या अत्यन्त जटिल एवं चुनौतीपूर्ण बन गयी है। शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक निर्देशन के सभी अनुक्षेत्रों में प्रभावी निर्देशन की व्यवस्था करना शैक्षिक प्रशासकों के लिए बहुत बड़ी समस्या है। निर्देशन के मुख्य मुद्दे एवं समस्याएँ निम्नवत् हैं–

(1) प्रशिक्षण का अभाव–निर्देशन कार्यक्रमों को समुचित प्रकार से संचालित करने हेतु विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है, उनके प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, अभी भी प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध नहीं है।

(2) व्यवस्था की समस्या–शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्रों में उपलब्ध निर्देशन सेवाओं का प्रबन्ध एवं उनकी व्यवस्था अपने पारस्परिक तालमेल, संगठन एवं सहयोग की दृष्टि से कई तरह की समस्याओं से ग्रस्त है। सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों तरह के निर्देशन संस्थानों में प्रबन्धन की उचित व्यवस्था नहीं है। सरकारी

संस्थानों में उच्च कोटि के उपकरणों एवं संसाधनों के होते हुए भी उनकी कार्यान्वयन की शैली नितान्त कमजोर है। प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों का अभाव है।

(3) अभिभावकों की उदासीनता–हमारे निर्देशन कार्यक्रमों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उनके क्रियान्वयन में आम अभिभावक कोई दिलचस्पी नहीं लेता है। निर्देशन के बारे में उनकी रुचि जैसे–तैसे केवल व्यवसायों के दिलाने तक प्रायः सीमित होती है। जबकि अभिभावकों की निर्देशन सेवाओं में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उनमें अपेक्षित स्तर की निर्देशन चेतना का अभाव है। इसलिए निर्देशन सेवाओं के प्रभावी संचालन हेतु आवश्यक है कि अभिभावकों को निर्देशन के ढाँचे में ढाला जाय।

(4) मानकीकृत उपकरणों की कमी–निर्देशन कार्य के सम्पादन में अपेक्षित संसाधनों का अभाव एवं मानकीकृत परीक्षणों की कमी एक आम समस्या है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, मनोवैज्ञानिक केन्द्रों, कॅरियर केन्द्रों पर व्यावसायिक सूचना का अभाव है, उनके लिए उपयुक्त सामग्री एवं स्रोतों के विकास के प्रति पर्याप्त उदासीनता विद्यमान है। इसके अतिरिक्त निर्देशन की दृष्टि से उपयोगी पाये जाने वाले वस्तुनिष्ठ उपकरण पर्याप्त मात्रा में उपयुक्तता के आधार पर उपलब्ध नहीं है। ऐसे उपकरणों की रचना एवं उनके मानकीकरण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' के अन्तर्गत 'एजुकेशन ट्रेनिंग सर्विस' जैसी संस्थाओं के गठन पर जोर तो दिया गया है, किन्तु उनकी निर्देशन सेवाओं में उपयोग बन सकने योग्य सम्भावनाओं के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

(5) निर्देशन सेवाओं में विविधता एवं यथार्थ का पुट न होना–हमारे यहाँ जो भी निर्देशन की सेवाएँ गठित की गयी हैं उनका स्वरूप प्रायः एक जैसा कठोर एवं औपचारिक होने के कारण वास्तविकता से कहीं अधिक दूर हो जाता है। भिन्न–भिन्न पृष्ठभूमि वाले बच्चों जैसे–ग्रामीण एवं शहरी, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से पिछड़े, हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम आदि के लिए एक ही प्रकार की सूचनाओं, सम्प्रेषण विधि आदि के कारण भी कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(6) विद्यार्थियों के संख्या की अधिकता–निर्देशन की सेवा को सम्यक् रूप देने में विभिन्न आयु वर्ग के लोगों विशेषकर युवा वर्ग के आकार की उनकी संख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। आज हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की भारी संख्या मौजूद है उन्हें पूरी तरह उपयोगी सूचनाओं का सम्प्रेषण कर पाना ही दुष्कर हो जाता है, व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर पाना तो दूर की बात है। इसके लिए हमारी परम्परागत ढंग से चली आ रही कार्य पद्धति अधिक जिम्मेदार मानी जा सकती है। हमें सूचना एवं प्रौद्योगिकी के नये संसाधनों का प्रयोग करना चाहिए।

(7) शैक्षिक प्रशासकों में अपेक्षित अभिवृत्ति की कमी–निर्देशन कार्यक्रमों के सुचारुपूर्वक संचालन हेतु प्रशिक्षित निर्देशनकर्त्ताओं के अतिरिक्त शिक्षकों, प्रधानाचार्यों,

प्रबन्धकों में प्रायः अपेक्षित समय व धैर्य की कमी देखी गयी है। निर्देशन के प्रति उनकी अभिवृत्ति सकारात्मक नहीं होती है, प्रायः वे उदासीन बने रहते हैं। संस्थाओं में निर्देशन की प्रक्रिया, उनकी आवश्यकता एवं महत्व का ज्ञान कराने हेतु विशिष्ट गोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन कम ही किया जाता है।

(8) अनुवर्ती अध्ययन का अभाव–वैयक्तिक, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के बाद आमतौर से सेवार्थी का अनुवर्ती अध्ययन काफी लाभप्रद होता है क्योंकि इससे निर्देशन की सफलता या असफलता का वास्तविक संकेत मिलने के अतिरिक्त इसके प्रभावों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। परन्तु अपने यहाँ ऐसे अनुवर्ती अध्ययन न के बराबर ही सम्पन्न होते हैं।

(9) व्यवसायों एवं उद्यमों के अवसरों का अभाव–हमारे देश में जिस गति से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विस्तार हुआ है, व्यक्तियों द्वारा उत्पादक उद्यमों को अपनाये जाने एवं व्यवसायों के अवसर कम मिल पा रहे हैं। ऐसे अवसर पैदा करने के प्रति सरकारी प्रयास अवश्य हो रहे हैं, किन्तु ये पर्याप्त नहीं हैं। ग्रामीण युवाओं के लिए 'स्वरोजगार' योजनाएँ चालू तो की गयी हैं पर उनका प्रचार–प्रसार न होने से तथा लालफीताशाही के कारण, उनका लाभ युवा बेरोजगारों को नहीं मिल पा रहा है। भौगोलिक व्यवसायों एवं उद्यमों के अवसर उत्पन्न करने हेतु वैज्ञानिकों, राजनेताओं, प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों तथा उद्योगपतियों की भूमिका नगण्य सी बन गयी है। ऐसी स्थिति में शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं को आघात पहुँचना स्वाभाविक है।

(10) निर्देशन के क्षेत्र में शोधकर्त्ता का अभाव–समस्याओं के समाधान हेतु शोध कार्य की आवश्यकता होती है। हर विधा या क्षेत्र का विकास उसमें सम्पादित होने वाले शोध कार्यों के माध्यम से हो रहा है। किन्तु निर्देशन के क्षेत्र में मौलिक, व्यावहारिक एवं क्रियात्मक शोधों की गुंजाइश होते हुए भी हमारे मनोविज्ञानी व शिक्षाशास्त्री इस ओर आकर्षित नहीं हो सके हैं। निर्देशन के क्षेत्र में जो शोध कार्य सम्पन्न हुए हैं वे अल्प हैं। शोध कार्य के अभाव में निर्देशन सेवाओं का विस्तार नहीं हो सकता है।

1.6 निर्देशन की आवश्यकता

वर्तमान औद्योगिक एवं वैज्ञानिक युग में नवीन तकनीकों का आविर्भाव हुआ है। विकास ने जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। सामाजिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। तीव्र गति से विकसित हो रहे समाज में व्यक्ति का समायोजन, उसका व्यक्तित्व कहीं न कहीं से प्रभावित हुआ है जिसके कारण अनेक समस्याओं ने जन्म लिया है। परिणामस्वरूप निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। कोचर ने ठीक ही लिखा है, ''व्यक्तियों के लिए समाज बहुत पेचीदा, माता–पिता एवं अभिभावकों के लिए सामंजस्य की समस्या बहुत तीक्ष्ण तथा विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त विषयों के चुनाव की समस्या बहुत ही प्रबल हो गयी है। छात्रों के उचित समायोजन के लिए प्रत्येक विद्यालय में निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता है।''

व्यक्ति में पाई जाने वाली वैयक्तिक भिन्नता, उसकी एक जैसी क्षमताओं का न होना, उसके परिवेश की विविधता निर्देशन की आवश्यकता को सहज संकेत प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे समाज की संरचना का निरन्तर जटिल होते रहना, शैक्षिक तथा व्यावसायिक सम्भावनाओं एवं आकांक्षाओं में अभिवृद्धि, शैक्षिक अवसरों की विविधता, विशाल, तकनीकी एवं औद्योगिक विकास के बढ़ते कदम ने निर्देशन की आवश्यकता को पर्याप्त बल प्रदान किया है। व्यक्ति और समाज को ध्यान में रखते हुए निर्देशन की आवश्यकता को निम्न क्षेत्रों में व्यक्ति किया जा सकता है–

(1) निर्देशन व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता–प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में निर्देशन की आवश्यकता बुनियादी तौर पर पाई जाती है। जोन्स ने तो यहाँ तक कह डाला कि निर्देशन की आधारशिला मानवीय जीवन तथा मानवीय शक्ति के संरक्षण तथा मानवीय आवश्यकता की वास्तविकता पर टिकी हुई है। अनेक सन्दर्भों पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होगा कि मनुष्य की अधिकांश शक्ति एवं उसका अधिकांश समय व्यर्थ की बातों में नष्ट हो जाता है। अपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने से पूर्व ही व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार की सलाह की जरूरत महसूस होने लगती है। इस प्रकार जीवन के हर विकास पथ पर आगे बढ़ता हुआ मानव किसी न किसी क्षण निर्देशन की अपेक्षा अवश्य रखता है।

(2) परिवर्तित पारिवारिक सन्दर्भ–इधर हमारे 'परिवार' एवं 'पारिवारिक जीवन' की धारणा में भारी तब्दीली आई है। संयुक्त परिवार की अपेक्षा अब छोटे–छोटे परिवार जिसमें पति–पत्नी एवं उनके बच्चे शामिल हैं, पर्याप्त संख्या में विकसित हुए हैं। संयुक्त परिवार जिनका आकार प्रायः बड़ा होता था, बड़े भाई एवं बहनों के सान्निध्य में निर्देशन का कार्य अनौपचारिक ढंग से सम्पादित कर देते थे। किन्तु अब बच्चों की अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही अपने माँ–बाप के अलावा समाचार पत्रों, दूरदर्शन, रेडियो, चलचित्रों तथा अन्य सम्प्रेषण माध्यमों से तरह–तरह की सूचनाएँ एवं निर्देशन सुलभ रहते हैं। इन परिवर्तित पारिवारिक सन्दर्भों में न केवल निर्देशन की आवश्यकता में तब्दीली आई है, बल्कि इसके स्वरूप, माध्यम एवं विधियों में भी विशेष आयाम जुड़े हैं।

(3) जनसंख्या विस्फोट एवं मानवीय संसाधनों का विस्तार–भारतीय सन्दर्भ में जनसंख्या के विस्फोट एवं उसके तहत स्वाभाविक एवं अनियोजित ढंग से विकसित मानवीय संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में भी निर्देशन की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। हमारी आबादी गाँवों एवं शहरों में जिस तेजी से बढ़ी है, उसमें सुनियोजित विकास की प्रक्रिया को पर्याप्त आघात पहुँचा है। इस सिलसिले में हर आयु वर्ग के लोगों, विशेषतौर से युवा वर्ग को खास प्रकार की जानकारी एवं निर्देशन की महती आवश्यकता है। साथ ही विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के प्रभावों से अभिभूत पूरे मानवीय समाज में संचार माध्यमों, दूरी, अन्तर्सम्बन्धों तथा गतिशीलता की दृष्टि से अनेकानेक संसाधनों का उद्भव हुआ है। इस प्रकार बढ़ती हुई आबादी एवं उसके द्वारा संसाधनों

के सम्यक् सदुपयोग किये जाने की सम्भावना को दृष्टिगत रखकर निर्देशन प्रदान करने की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता।

(4) शैक्षिक एवं सामाजिक आकांक्षाएँ—बच्चों से लेकर वयस्क तक सभी आज अपने शैक्षिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं में विस्फोट का अनुभव कर रहे हैं। हर व्यक्ति शिक्षा की दृष्टि से आगे बढ़ना चाहता है और तदनुसार अपना सामाजिक स्तर बदलने के लिए सचेष्ट है। शैक्षिक आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने के निमित्त तरह–तरह के औपचारिक तथा अनौपचारिक पाठ्यक्रम गठित किये जा रहे हैं। अब पत्राचार पाठ्यक्रम की व्यवस्था के अतिरिक्त मुक्त विश्वविद्यालय एवं मुक्त विद्यालय जैसी संस्थाओं को बड़ी तेजी से समर्थन मिल रहा है। इन पाठ्यक्रमों से समुचित लाभ उठा सकने के लिए निर्देशन का होना आवश्यक है। व्यक्ति अपनी सामाजिक गतिशीलता में किस प्रकार की वृद्धि लाये जिससे उसका समयोजन न बिगड़े, इस दृष्टि से भी उचित निर्देशन अपेक्षित है।

(5) परिवर्तित औद्योगिक एवं तकनीकी सन्दर्भ—स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सन्दर्भ में औद्योगिक एवं तकनीकी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हमारे सामने आई हैं। उद्योगों के विकास के साथ मानवीय सहयोग के नये पक्ष उभरे हैं। टेक्नोलॉजी का अनुप्रयोग हर पग पर हो रहा है। इससे हम बच नहीं सकते। इसीलिए उद्योगों में तथा व्यवसायों से भिन्न सन्दर्भों में भी मानव–प्रशिक्षण के कार्यक्रमों को युद्ध स्तर पर लागू किया गया है। अब हाईस्कूल के तुरन्त बाद व्यवसायोन्मुख शिक्षा उपलब्ध कराने की योजना को अपेक्षित महत्त्व प्रदान करने की संस्तुति 'नई शिक्षा नीति' के माध्यम से भी की जा रही है। इस प्रकार नई नीति के फलस्वरूप व्यक्त एवं अव्यक्त सन्दर्भों में युवा वर्ग को ठोस एवं यथार्थवादी निर्देशन की नितान्त आवश्यकता है।

(6) राजनीतिक परिवर्तन—राजनीतिक परिवर्तन का हमारे सामाजिक, व्यावसायिक एवं शैक्षिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। नये व्यवसायों तथा शिक्षा के कार्यक्रमों से सम्बन्धित नीतियों के सन्दर्भ में यह प्रभाव तुरन्त देखा जा सकता है। अभी हाल ही में 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' तथा अन्य मंत्रालयों के कार्य क्षेत्रों तथा कार्य पद्धतियों में जो परिवर्तन हुए हैं, वे इस बात के मूर्त्त प्रमाण कहे जा सकते हैं। इस प्रकार राजनीतिक परिवर्तन के कारण होने वाले बदलाव हमारे जीवन के प्रायः हर हिस्से को प्रभावित करते हैं। हमारा नजरिया, सोचने का ढंग, कार्य संस्कृति तथा हमारे मूल्य बुनियादी तौर पर बदलने लगे हैं। इस बदलाव की स्थिति में नये मुद्दों तथा नई नीतियों के सफल एवं प्रभावी कार्यान्वयन हेतु निर्देशन की भूमिका सहज ही स्पष्ट हो जाती है।

(7) नगरीकरण—गाँवों से अपना रिश्ता समाप्त कर नगर में बसने वाले शिक्षित एवं नौकरी पेशा व्यक्ति के समक्ष समंजन की नई समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। ग्राम्य जीवन की महिमा का गुणगान करने वाले व्यक्ति भी प्रायः व्यवहार में नगर की जिन्दगी को ही पसन्द करते हैं। कुल मिलाकर इसका परिणाम यह है कि शहरी व्यवसायों तथा

उद्यमों पर अनावश्यक बोझ बढ़ रहा है तथा नगरों में बसने वाले व्यक्तियों के लिए उपयुक्त प्रकार के उद्यम उपलब्ध कराने की समस्या तूल पकड़ रही है। इस पूरी परिस्थिति से भली प्रकार निपटने के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में आयोजित निर्देशन सेवाओं का बड़ा महत्त्व है।

(8) पाश्चात्य एवं अन्य देशों का प्रभाव–पाश्चात्य देशों यथा–अमेरिका, इंग्लैण्ड, यूरोप, रूस एवं जापान आदि का सांस्कृतिक, तकनीकी, शैक्षिक एवं वैज्ञानिक सहयोगों के माध्यम से भारतीय तौर–तरीकों पर स्पष्टा एवं अस्पष्ट रूपों में प्रभाव पड़ा है। हमारे युवा वर्ग कुछ मायने में इन देशों का अंधाधुंध अनुसरण करने लगे हैं। उन्हें तथा अन्य आयु वर्ग के लोगों को उचित परामर्श देने के लिए सम्यक् निर्देशन सर्वथा आवश्यक है।

(9) विशिष्टीकरण पर जोर–आज जीवन के हर क्षेत्र में विशिष्टीकरण को महत्त्व दिया जा रहा है। कोई भी ऐसी विधा या प्रशिक्षण का क्षेत्र नहीं है जिनमें विशिष्टीकरण पर जोर न दिया जाता हो। सभ्यता के विकास, अनुसंधान एवं आविष्कारों के फलस्वरूप ज्ञान–विज्ञान, टेक्नोलॉजी तथा व्यवसायों में विशिष्टीकरण एक आम ढंग बन गया है। कहना न होगा कि विशिष्टीकरण को प्रभावी रूप में अपनाने के लिए विशेष प्रकार की प्रतिभाओं तथा कौशलों से युक्त व्यक्तियों की तलाश जरूरी है। इस सन्दर्भ में उपयुक्त प्रकार के निर्देशन का अपना विशिष्ट स्थान है।

(10) अवकाश का सदुपयोग–छात्र जीवन के अलावा उद्योगों, कृषि कार्य, कार्यालयों, अस्पतालों तथा अन्य उद्यमों एवं सेवाओं में अवकाश या खाली समय को भली प्रकार व्यतीत करने की समस्या हमारे देश के अलावा अन्य देशों में भी है। हाँ, इतना अवश्य है कि हमारे यहाँ विभिन्न कर्मियों को अपने अवकाश को उचित ढंग से बिताने का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था नहीं की गयी है। निर्देशन के जरिए ठीक ढंग के कार्यकलापों का प्रावधान एवं उनके लिए उचित प्रतिभाओं के सम्बन्ध में विशेष तैयारी अपेक्षित है।

(11) विकासात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से–निर्देशन की आवश्यकता व्यक्ति के जीवन के कुछ विशेष क्षणों में खासतौर से अनुभूत होती है। उसके व्यक्तिगत विकास तथा समंजन, शैक्षिक प्रगति एवं समायोजन, व्यावसायिक विकास एवं समंजन तथा विद्यालय छोड़ने के बाद अनुवर्तन या अनुश्रवण के महत्त्व को दृष्टिगत रखकर निर्देशन की आवश्यकता आम रूप में बनी रहती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि निर्देशन की आवश्यकता को व्यक्ति के विकास के अतिरिक्त सामाजिक प्रगति, राष्ट्रीय समृद्धि एवं मानव–कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करने की दृष्टि से विशेष रूप से आँका जा सकता है। इस प्रकार व्यावसायिक, शैक्षिक एवं वैयक्तिक तीनों ही प्रकार के निर्देशन हर देश के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं।

1.7 कार्यक्षेत्र एवं महत्व

मानव एक प्रगतिशील प्राणी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नित नई समस्याएँ आती हैं। इन समस्याओं के समाधान के बिना प्रगति करना असम्भव होता है। इसके लिए निर्देशन ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम समस्याओं का समाधान खोजकर प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। निर्देशन का कार्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी, समूह, समस्याएँ तथा अनेकानेक शैक्षिक, व्यावसायिक तथा वैयक्तिक परिस्थितियाँ शामिल हैं। इस आधार पर निर्देशन के कार्यक्षेत्र की व्याख्या करना कठिन नहीं है। कार्यक्षेत्र की व्यापकता को देखते हुए भी छात्र के लिए इसका प्रमुख क्षेत्र शिक्षा, वैयक्तिक समस्याएँ तथा व्यावसायिक समस्याओं तक ही सीमित रहता है। अपने देश में निर्देशन का कार्यक्षेत्र अभी सीमित है क्योंकि अभी भी अपने देश में इसकी समुचित व्यवस्था नहीं है। निर्देशन के कार्यक्षेत्र को निम्न रूपों में व्यक्त किया जा सकता है–

(1) शैक्षिक निर्देशन–इसके अन्तर्गत विविध पाठ्यक्रमों, उनके लिए छात्र में अपेक्षित योग्यता एवं अभिक्षमता का स्तर, रुचि तथा अभिवृत्ति, शिक्षण–अधिगम की व्यवस्था, विधियों एवं युक्तियों की सम्पूर्ण जानकारी करनी पड़ती है। विद्यार्थी को अपनी योग्यता, अभिरुचि एवं अभिक्षमता के अनुकूल कौन–सा विषय पढ़ना चाहिए, उसे कला, विज्ञान, कृषि, वाणिज्य, प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, विधि, प्रबन्धन में से किसका चयन करन अधिक उपयोगी होगा? इस सम्बन्ध में प्रभावी विधियाँ क्या हो सकती हैं? आदि इस प्रकार के निर्देशन का प्रमुख कार्यक्षेत्र है। रुथस्ट्रैंग के अनुसार शैक्षिक निर्देशन (अ) पाठ्यकम सम्बन्धी चयन करने, (ब) आगे की शिक्षा के बारे में निर्णय लेने, और (स) श्रेणी सुधार के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान करता है। इसके अलावा अपव्यय एवं अवरोधनकी समस्या का समाधान ढूँढ़ने में, अधिगम क्रिया को निरन्तर ध्यान में रखकर उपलब्धि स्तर को कार्यक्रमों की दिशा में जानकारी देकर उन्हें उसे प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना, राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समृद्धि के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए छात्रों को प्रेरित करना आदि के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन देकर हम विद्यार्थियों का उचित मार्गदर्शन व सहयोग कर सकते हैं।

(2) व्यावसायिक निर्देशन–व्यावसायिक क्षेत्र में भी निर्देशन की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रकार के निर्देशन से व्यक्ति को जीविका या व्यवसाय सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु निर्देशन दिया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को जीविकोपार्जन के माध्यम या व्यवसाय के चयन करने, व्यवसाय हेतु तैयारी करने, उसमें प्रविष्ट होने, समायोजन प्राप्त करने में सहयोग प्रदान किया जाता है। मायर्स ने लिखा है, व्यावसायिक निर्देशन मूलतः युवकों की अमूल्य क्षमताओं तथा विद्यालयों द्वारा उन्हें प्रदान किये जाने वाले मँहगे प्रशिक्षण को संरक्षित करने का प्रयत्न है। यह मानवीय संसाधनों में से सर्वाधिक कीमती संसाधन को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति को वहाँ (उस क्षेत्र में) निवेश करने और उपयोग करने में सहयोग प्रदान करना है जहाँ उसे अपने लिए सर्वाधिक प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि और समाज को सर्वाधिक लाभ हो।

स्पष्ट है कि व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज या व्यावसायिक संगठन दोनों के हितों की रक्षा करता है। जहाँ व्यक्ति की सन्तुष्टि और प्रगति महत्त्वपूर्ण है वहीं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति, राष्ट्रीय माँग की पूर्ति और व्यावसायिक संगठन के हितों की पूर्ति भी समान रूप में महत्वपूर्ण है।

(3) वैयक्तिक निर्देशन–वैयक्तिक समस्याओं के क्षेत्र में व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान हेतु भी निर्देशन कार्यक्रमों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। मैथ्यूसन के अनुसार, व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्तियों को चयन करने, नियोजन और समायोजन तथा प्रभावशाली आत्म निर्देशन करने और व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का सामना करने में प्रदान किये जाने वाले व्यवस्थित व्यावसायिक सहयोग की प्रक्रिया है। निर्देशन के इस क्षेत्र के अन्तर्गत (अ) व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान करने में, (ब) पारिवारिक जीवन की समस्याओं के समाधान में, (स) सांवेगिक समस्याओं तथा संकट के समय में सदैव भावात्मक व मानसिक सन्तुलन बनाये रखने में तथा (द) अवकाश के समय का सदुपयोग करने में, उपयोग किया जाता है।

आधुनिकता से प्रभावित इस संसार की बढ़ती हुई जटिलताओं और वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण निर्देशन का महत्व निरन्त बढ़ता जा रहा है। निर्देशन वास्तव में एक सेवा है जो व्यक्ति को स्वयं के बारे में जानने अर्थात् यह ज्ञान प्राप्त करने में कि उसकी मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ एवं योग्यताएँ क्या हैं, उसकी भौतिक, मानसिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताएँ क्या हैं, सहायता प्रदान करती है तथा इसके साथ–साथ व्यक्ति को अधिकतम विकास प्राप्त करने में भी सहायक होती है। निर्देशन किसी व्यक्ति की आयु अथवा अवस्था से बँधा हुआ नहीं होता है। यह जीवनपर्यन्त विद्यमान रहने वाली आवश्यकता है। निर्देशन बच्चों, किशोरों, वयस्कों एवं वृद्धों सभी के लिए महत्त्वपूर्ण होताहै। निर्देशन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है, उसकी समस्या नहीं। उसकी समस्याओं का अध्ययन, निर्देशन बाद में करता है, पहले तो व्यक्तिकी शक्ति तथा योग्यताओं का अध्ययन करता है। यूनाइटेड ऑफिस ऑफ एजुकेशन ने लिखा है, निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति का परिचय विभिन्न उपायों से, जिनमें विशेष प्रशिक्षण भी सम्मिलित है, तथा जिनके माध्यम से व्यक्ति को प्राकृतिक शक्तियों का बोध भी हो, कराती है जिससे वह अधिकतम व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित कर सके।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास वातावरण के सम्पर्क में ही सम्भव है। इसलिए व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास तथा जीवन की सफलता हेतु आवश्यक हो जाता है कि वह स्वयं अपने आपको तथा वातावरण को समझे जिससे वह विभिन्न परिस्थितियों से समायोजन स्थापित कर सके, इसमें निर्देशन की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वर्जीनिया के शिक्षकों के एक प्रतिनिधि समूह द्वारा तैयार किये गये प्रारूप के अनुसार निर्देशन का महत्व या निर्देशन का होना आवश्यक है–

1. प्रत्येक व्यक्ति के लिए ऐसा स्थान प्राप्त करना जिसमें वह व्यक्तिगत प्रसन्नता प्राप्त कर सके।

2. नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के सम्बन्ध में जागरुकता का विकास करना।
3. व्यक्ति के रूप में मान्यता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करना।
4. प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में यह अनुभव करना कि वह जिस समूह का सदस्य है उसमें अपना योगदान दे रहा है।
5. अपने आपको, अपनी योग्यताओं को, अपनी सीमाओं को और अपनी क्षमताओं को समझना।
6. अपने विकास के अवसरों और अपनी योग्यता एवं अनुभव का उपयोग करने हेतु।
7. उत्साह, प्रेम और ज्ञान के लिए।
8. समाज में होने वाले परिवर्तनों के अनुकूल स्वयं को ढालने की दिशा में साधन–सम्पन्नता और आत्म निर्देशन का विकास करने हेतु।

स्वतंत्र रूप से निर्देशन का जीवन में कोई स्थान नहीं है। यह केवल एक प्रक्रम है जिसका उद्देश्य सामाजिक एवं पारिवारिक विकास में सहायता पहुँचाना है। निर्देशन की प्रक्रिया निरन्तर गतिशीलरहती है तथा व्यक्ति को इस तरह सहायता पहुँचाई जाती है कि व्यक्ति स्वयं को समझे, क्षमताओं, रुचियों, अभियोग्यताओं का अधिकतम उपयोग कर विकसित हो सके तथा परिवेश में विद्यमान विभिन्न परिस्थितियों में अपना समायोजन स्थापितकर सके। स्पष्ट है कि निर्देशन हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है।

1.8 निर्देशन के प्रकार

आधुनिक युग में हुई वैयक्तिक प्रगति के परिणामस्वरूप औद्योगिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में द्रुत गति से परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति में निर्धारित मानदण्डों के आधार पर नवीन मूल्यों का प्रस्फुटन निरन्तर होता जा रहा है। व्यक्ति के सम्मुख यह एक जटिल समस्या उपत्न हो गयी है कि वह किस प्रकार के मूल्यों एवं आदर्शों को अपनाते हुए प्रगति की दिशा में आगे बढ़े। विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के स्वरूप, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय, अवकाश के समय का सदुपयोग, पारिवारिक सम्बन्ध आदि क्षेत्रों में पहले की अपेक्षा आज अनेक समस्याएँ उत्पन्न होने लगी हैं। निर्देशन व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों में बेहतर समायोजन प्राप्त करने में सहायक होता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए निर्देशन पर विचार करने वाले अनेक विद्वानों ने निर्देशन के कई प्रकार बताये हैं। हम यहाँ प्रकृति के आधार पर व क्षेत्र के आधार पर निर्देशन के कुछ महत्वपूर्ण प्रकारों पर प्रकाश डालेंगे।

1. प्रकृति के आधार–निर्देशन की प्रकृति के आधार पर निर्देशन दो प्रकार का हो सकता है–

(i) व्यक्तिगत निर्देशन (Individual Guidance)–जब निर्देशन के द्वारा किसी एक ही व्यक्ति की समस्याओं का समाधान निकालने में सहयोग

किया जाता है तो वह व्यक्तिगत निर्देशन का स्वरूप होता है। इसमें निर्देशन सेवा का लक्ष्य होता है कि उसी एक व्यक्ति को उसकी समस्या का समाधान निकालने में उसका सहयोग करना, उसकी विभिन्न प्रकार की समस्याएँ हो सकती हैं–

a) शैक्षिक समस्या

b) सामाजिक समस्या

c) वैवाहिक समस्या

d) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या

e) मानसिक समस्या

f) समय सदुपयोग सम्बन्धी समस्या

g) पारिवारिक समस्या

h) धार्मिक समस्या

i) अन्य समस्याएँ

(ii) सामूहिक निर्देशन (Group Guidance)–निर्देशकर्त्ता समस्याओं के समाधान में सहयोग जब किसी समूह का करता है तो इस प्रकार के सामूहिक सहयोग वाले निर्देशन को सामूहिक निर्देशन कहा जाता है। इसका उपयोग निम्न समूहों में किया जाता है–

a) किसी कक्षा विशेष में

b) किसी आयु वर्ग के व्यक्तियों में

c) किसी संगठन के समूह में

d) किसी दल के कार्यकर्त्ताओं में

e) किसी परिवार को

f) सामूहिक उपचार के रूप में

2. क्षेत्र के आधार निर्देशन के प्रकार–निर्देशन के क्षेत्र अथवा उद्देश्य के आधार पर भी निर्देशन के प्रकार निर्धारित किये जा सकते हैं, जो मुख्य रूप से निम्नवत् हैं–

1. शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)–शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी अलग–अलग समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं के कारण विद्यालयीय वातावरण में अपने को समायोजित करने में हर छात्र सक्षम नहीं होता है। अतएव विद्यार्थी के विकास के लिए समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए तथा विकास के अवसर पैदा करने के लिए तथा विद्यालयीय परिवेश से सामंजस्य स्थापित करने हेतु शैक्षिक निर्देशन आवश्यक है।

इसी सम्बन्ध में जीन्स ने लिखा है कि शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध छात्रों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है जो उन्हें विद्यालयों, पाठ्यक्रमों एवं शिक्षालय के जीवन से सम्बद्ध चुनावों एवं समायोजनों के लिए अपेक्षित है।

शैक्षिक निर्देशन के चार प्रमुख कार्य हैं–विद्यार्थी की क्षमता, रुचि एवं साधनों के अनुरूप शैक्षिक योजना का निर्माण करना, विद्यार्थी की भावी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना, शैक्षिक कार्यक्रम में वांछित प्रगति हेतु सहायक होना तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को भलीभाँति पूर्ण करने के लिए विद्यालय कर्मचारियों, पाठ्यचर्चाओं एवं प्रशासनिक परिवर्तनों से सम्बन्धित सुझाव देना।

शैक्षिक निर्देशन का मुख्य लक्ष्य, विद्यार्थियों में वांछित जागरुकता एवं संवेदनशीलता उत्पन्न करना है, जिससे वे उपयुक्त अधिगम लक्ष्यों, उपकरणों, परिस्थितियों आदि का स्वयं चयन कर सकें तथा विद्यालयीय परिवेश से सामंजस्य स्थापित कर सकें।

2. व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance)–व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति में निहित क्षमताओं, योग्यताओं तथा व्यावसायिक जगत की परिवर्तित परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं का मूल्यांकन किया जाता है। व्यवसाय चयन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु निर्देशन प्रदान की जाने वाली यह इस प्रकार की सहायता है, जो व्यावसायिक अवसरों के लिए अपेक्षित योग्यताओं को ध्यान में रखकर प्रदान की जाती है। व्यावसायिक निर्देशन किसी भी व्यक्ति को व्यवसाय चुनने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने तथा दक्षता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है। डोनाल्ड सुपर के अनुसार–व्यावसायिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने व्यवसाय से समुचित समंजन कायम कर सके, अपनी निहित मानवीय शक्ति का प्रभावी उपयोग कर सके तथा उपलब्ध सुविधाओं द्वारा समाज का आर्थिक विकास कर सकने में सक्षम हो सके।

व्यावसायिक निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य व्यावसायिक क्षेत्र में व्यक्ति को सामंजस्य स्थापित करने योग्य बनाना है। व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत, व्यवसाय चार्ट, व्यवसाय विवरण पत्रिका, वार्ता एवं अन्य माध्यमों की सहायता से सेवार्थी की व्यावसायिक रुचि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। आज के वैज्ञानिक युग में व्यवसायों की विविधता, विशिष्टीकरण की आवश्यकता, श्रम व उद्योग की परिवर्तित परिस्थितियों, मानवीय शक्ति के संरक्षण एवं समुचित उपयोग और उत्पादन में गुणवत्ता की प्रसार की दृष्टि से व्यावसायिक निर्देशन बहुत महत्वपूर्ण है।

3. व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance)–निर्देशन–कार्य व्यक्तिगत रूप में ही सम्पन्न होता है, चाहे वह व्यावसायिक निर्देशन हो या शैक्षिक या अन्य किसी प्रकार का निर्देशन। व्यक्तिगत निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक व

भौतिक पक्षों में सामंजस्य स्थापित करना होता है। व्यक्तिगत समायोजन एवं व्यक्तिगत कुशलता के आधार पर ही व्यक्ति को अपने सामाजिक परिवेश के साथ समायोजन स्थापित करने, पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने तथा जीवन को सुखद बनाने में सफलता प्राप्त हो पाती है। परिवार, समाजिक समस्याओं, मानसिक वेदनाओं व स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्तिगत निर्देशन आवश्यक है। क्रो तथा क्रो ने लिखा है, व्यक्तिगत निर्देशन का तात्पर्य व्यक्ति को प्राप्त उस सहायता से है जो उसके जीवन के सभी क्षेत्रों तथा अभिवृत्तियों के विकास को दृष्टिगत रखकर बेहतर समायोजन के प्रति निर्दिष्ट होती है।

मानव जीवन लक्ष्य केवल शैक्षिक एवं व्यावसायिक समायोजन प्राप्त करना ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत जीवन में सामंजस्य, तालमेल एवं संगति लाना भी है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी जटिल बनती जा रही है कि शैक्षिक दृष्टि से उच्च कोटि की उपलब्धि वाला तथा व्यावसायिक तौर पर सुप्रशिक्षित व्यक्ति भी अपने व्यक्तिगत विकास जैसे–सांवेगिक, सामाजिक, चारित्रिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों के पक्षों में अत्यन्त कमजोर हो सकता है। सन्तुलित रूप में विकास न होने से व्यक्ति में अनेक प्रकार की ग्रंथियाँ एवं मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके शैक्षिक तथा व्यावसायिक जीवन में भी तनाव, विसंगतियाँ, कुसमायोजन तथा अवरोध ला सकती हैं। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति को व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है।

1.9 सारांश

निर्देशन एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति की सहायता इस प्रकार की जाती है जिससे वह अपने निर्णय ले सके, निष्कर्ष निकाल सके तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, अपनी क्षमता, योग्यता तथा मानसिक स्तर का ज्ञान प्राप्त करता है। वह व्यक्ति में निहित सम्भावनाओं को सामाजिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में पूर्ण विकसित होने में सहायता देने का प्रक्रम है। जोन्स के अनुसार, निर्देशन का अर्थ है–प्रदर्शन करना, इंगित करना, सूचित करना तथा पथप्रदर्शन करना और इसका अर्थ सहायता देने से अधिक है।

व्यक्ति के महत्व की स्वीकृति स्वयं निर्देशन की क्षमता का विकास, निर्देशन को जीवनपर्यन्त चलने वाला प्रक्रम मानना, सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टि रखना, वस्तुगत अध्ययन प्रणाली, लचीलापन, उपबोध्य का सर्वांगीण विकास, गोपनीयता एवं नैतिक आचरण संहिता का पालन, वैयक्तिक भिन्नताओं का ध्यान तथा निर्देशन कार्य के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता आदि निर्देशन के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं जिन्हें लगभग सभी विद्वानों ने किसी किसी रूप में स्वीकार किया है।

निर्देशन की धारणा है–व्यक्ति की अधिकतम क्षमता तक उसका विकास, उसके सम्मुख उपस्थित समस्याओं के समाधान में सहायता करना तथा उचित समायोजन की

शक्ति एवं प्रवृत्ति का विकास करना, व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुरूप शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों का ज्ञान कराना।

व्यक्ति के विकास एवं समाज में समायोजन के लिए निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। यह कई दृष्टियों से आवश्यक होती है। प्रत्येक समाज में किसी न किसी तरह का निर्देशन अवश्य पाया जाता है। परिवर्तित पारिवारिक सन्दर्भों, जनसंख्या विस्फोट तथा मानवीय संसाधन के विस्तार, शैक्षिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं, परिवर्तित औद्योगिक एवं तकनीकी सन्दर्भों, राजनीतिक परिवर्तन, नगरीकरण, विशिष्टीकरण, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों, अवकाश के सदुपयोग एवं व्यक्ति की विकासात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से निर्देशन की आवश्यकता को विशेष महत्व दिया जा रहा है। व्यक्तिगत भिन्नताएँ, एक ही व्यक्ति की अलग–अलग क्षेत्रों में असमान प्रगति, भावात्मक समायोजन एवं व्यक्तित्व का उचित विकास वे मनोवैज्ञानिक तत्व हैं जो निर्देशन को आवश्यक बनाते हैं।

निर्देशन का कार्य क्षेत्र व्यापक है इसमें विरादता आई है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों, सूचनाओं, विवरणों तथा अवस्थाओं का विश्लेषण एवं अध्ययन, विभिन्न प्रकार के व्यवसायों एवं उद्यमों की सर्वेक्षणात्मक एवं मूल्यांकनपरक प्रस्तुति तथा निर्देशन के उपकरणों, प्रविधियों एवं युक्तियों का सेवार्थी के अनुरूप सन्दर्भों में विकास सम्मिलित है। वर्तमान बदलते हुए परिवेश में निर्देशन का अत्यधिक महत्व है। सेवार्थी की विभिन्न योग्यताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना तदनुसार उसे निर्देशन प्रदान करना ताकि वह अपनी क्षमताओं का अधिकतम उपयोग कर सके।

निर्देशन व्यक्ति को उसकी समस्याओं के समाधान में सहायता पहुँचाने का प्रक्रम है। जीवन की समस्याओं का सम्बन्ध विविध क्षेत्रों से होता है। इन क्षेत्रों को दृष्टि में रखते हुए विद्वानों ने निर्देशन के अनेक प्रकार बताये हैं। इनमें तीन विशेष रूप से उपल्लेखनीय हैं। शैक्षिक निर्देशन जिसमें विद्यार्थियों को उपयुक्त अध्ययन विधियों एवं विषयों के चयन, पाठ्यक्रमों के निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप सही गतिविधियों में लगे रहने तथा अपने अधिगम की क्रियाओं को स्वयं निर्देशित करने के लिए दिशा–निर्देश उपलब्ध कराना प्रमुख ध्येय रहता है। व्यावसायिक निर्देशन में सवोर्थी को उसकी योग्यता, अभिक्षमता, रुझान एवं रुचि को दृष्टिगत रखकर उपयुक्त व्यवसाय चुनने में सहायता की जाती है। जबकि वैयक्तिक निर्देशन में व्यक्ति को समायोजन सम्बन्धी समस्याओं के हल प्राप्त करने में उचित मार्गदर्शन देने की व्यवस्था की जाती है।

1.10 शब्दावली

अभिक्षमता–शिक्षा पूर्व विशिष्ट योग्यता–वह वर्तमान योग्यता जिसके आधार पर यह निश्चित किया जा सके कि व्यक्ति आगे को मिलने वाली किसी विशिष्ट क्षेत्र की शिक्षा में अथवा उस विशिष्ट क्षेत्र की शिक्षा के पश्चात् उससे सम्बन्धित व्यवसाय में पर्याप्त सफलता प्रापत कर सकेगा।

अभिरुचि–एक प्रकार की भावात्मक अनुभूति जो किसी वस्तु अथवा क्रिया–विशेष की ओर ध्यान के साथ संलग्न करती है।

मूल्य–व्यक्ति या समूहों द्वारा माना जाने वाला विचार कि क्या जरूरी है, सही है, अच्छा है या बुरा।

1.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

1. निर्देशन का अर्थ है–
   (क) क्षमता का विकास
   (ख) सम्बन्धों का विकास
   (ग) विकास में सहायता देने वाला प्रक्रम
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. निर्देशन आवश्यक है–
   (क) मानव की क्षमता का विकास करने के लिए
   (ख) मानव जीवन की जटिलता को हल करने के लिए
   (ग) व्यक्ति के निजी गुणों के विकास के लिए
   (घ) उपरोक्त सभी के लिए
3. निर्देशन व्यक्ति की समस्याओं को हल करता है–
   (क) शैक्षिक
   (ख) व्यावसायिक
   (ग) वैयक्तिक
   (घ) उपरोक्त सभी
4. निर्देशन की बुनियादी मान्यता है–
   (क) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है
   (ख) मनुष्य का बुनियादी स्वरूप आध्यात्मिक है
   (ग) मनुष्य को अपने एवं दूसरों से तालमेल बनाये रखना पड़ता है
   (घ) मनुष्य के लिए जीवन एक संघर्ष है
5. शैक्षिक निर्देशन का कार्य है–
   (क) शैक्षिक सहायता
   (ख) पाठ्यक्रम चयन में सहयोग
   (ग) विषय चयन में सहायता
   (घ) उपरोक्त सभी
6. व्यक्तिगत निर्देशन में हल की जाती है–
   (क) शिक्षा की समस्या

(ख) रोजगार की समस्या

(ग) स्वास्थ्य की समस्या

(घ) उपरोक्त सभी

7. व्यक्ति के विकास में सहायक होगा निर्देशन का मुख्य सिद्धान्त कहा जाता है।

(क) सत्य (ख) असत्य

8. निर्देशन की आवश्यकता सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में महसूस होती है।

(क) सत्य (ख) असत्य

उत्तर–1. (ग), 2. (घ), 3. (घ), 4. (ग), 5. (घ), 6. (घ), 7. सत्य, 8. सत्य।

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण–2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।

2. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल–बनारसीदास, वाराणसी।

3. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013–14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

4. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।

5. एस0एन0 शर्मा एवं एम0के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण–2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए–23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।

6. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

1.3 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्देशन से आप क्या समझते हैं?

2. निर्देशन के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

3. निर्देशन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

4. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।

5. व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ बताते हुए बताइए कि यह क्यों आवश्यक है?

❖❖❖

इकाई–2 : निर्देशन एवं परामर्श में परामर्शदाता की भूमिका और एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताएँ (Role of Counselors in Guidance & Counseling and Characteristics of a Good Counselor) :

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 परामर्श सेटिंग और निर्देशन एवं परामर्श में परामर्शदाता की भूमिका
2.3 एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताएँ
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहते हुए व्यक्ति के समक्ष किसी न किसी प्रकार की समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। व्यक्ति समस्या समाधान के उपरान्त ही आगे बढ़ पाता है। इन समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करने की दिशा में निर्देशन प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की सेवाओं को संगठित किया जाता है। निर्देशन से सम्बन्धित सेवाओं के अन्तर्गत परामर्श सेवा सर्वाधिक महत्वपूर्ण व प्राचीन सेवा है। इसलिए परामर्श सेवा को निर्देशन सेवाओं का हृदय कहा जाता है। प्राचीन समय में परामर्श का कार्य अपेक्षाकृत सहज था, विद्यालय में शिक्षकों एवं समाज के अन्य व्यक्तियों के द्वारा परामर्श प्रदान किया जाता है, परन्तु वर्तमान समय में समाज का स्वरूप जटिल हो गया है। आज व्यक्ति के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं, इनका समाधान एक दुरूह कार्य हो गया है। समस्याओं के स्वरूप के आधार पर परामर्श की प्रक्रिया भी परिवर्तित हो चुकी है। अब इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए अधिक योग्य, कुशल एवं प्रशिक्षित विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है।

परामर्श का शाब्दिक अर्थ है–पूछताछ, पारस्परिक तर्क–वितर्क या विचारों का पारस्परिक आदान–प्रदान। कार्ल रोजर्स ने परामर्श को परिभाषित करते हुए कहा है कि– ''परामर्श एक निश्चित रूप से निर्मित स्वीकृत सम्बन्ध है जो उपबोध्य को अपने को उस सीमा तक समझने में सहायता करता है जिसमें वह अपने नवीन ज्ञान के प्रकाश में ठोस कदम उठा सके।''

परामर्श के आशय के सम्बन्ध में एक विशिष्ट पक्ष यह भी है कि परामर्श की प्रक्रिया के द्वारा परामर्श प्राप्तकर्त्ता अथवा उपबोध्य पर किसी निर्णय को थोपा नहीं जाता है, वरन् उसकी सहायता इस प्रकार की जाती है कि वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो सके। परामर्श का उद्देश्य उपबोध्य की सहायता करना होता है जिससे वह स्वतंत्र रूप से अपनी समस्या का समाधान कर सके। परामर्श एक व्यावसायिक कार्य है, जिसे एक पर्याप्त प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा ही सम्पन्न कराना चाहिए। बुनियादी तौर पर परामर्श के अन्तर्गत व्यक्ति को समझना और उसके साथ कार्य करना होता है जिससे कि परामर्शदाता को उसकी आवश्यकताओं, अभिप्रेरणाओं और क्षमताओं की जानकारी हो और फिर उसे इनके महत्व को जानने में सहायता दी जाये।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों के बारे में जान जायेंगे–

- परामर्श सेटिंग एवं परामर्श तथा निर्देशन में परामर्शदाता की भूमिका
- एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताएँ

2.2 परामर्श सेटिंग और निर्देशन एवं परामर्श में परामर्शदाता की भूमिका

परामर्श सेटिंग सभी प्रकार की समस्याओं तथा समस्त व्यक्तियों के लिए लगभग एक समान ही होती है और यह उसी समय से आरम्भ हो जाती है जब कोई उपबोध्य किसी परामर्श केन्द्र पर परामर्श हेतु पहुँचता है। उपबोध्य अपनी वैयक्तिक मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ तथा स्वयं के एक प्रत्यय के साथ आता है। उसके पास विभिन्न समस्याएँ जैसे आत्मस्वीकृति, शिक्षा, व्यावसायिक चयन व समायोजन से सम्बन्धित समस्याएँ हो सकती हैं। बेन्जामिन ने परामर्श में बाह्य दशाओं को अधिक महत्व दिया है। भौतिक सेटिंग का काफी महत्व है। सभी महत्वपूर्ण कारकों में से एक कारक जो परामर्श में सहायक हो सकता है या फिर इसे बाधित भी कर सकता है–वह स्थान है जहाँ परामर्श होता है। परामर्श कार्य सामान्यतः किसी कक्ष में सम्पादित किए जाते हैं। कक्ष ऐसा होना चाहिए जो आरामदायक तथा आकर्षक हो और वहाँ उचित प्रकाश व्यवस्था हो तथा ध्वनिरोधी भी हो तो अधिक बेहतर है। परामर्श सेटिंग में दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष परामर्शदाता तथा उपबोध्य के मध्य दूरी है। यह उसके भावी सम्बन्धों को प्रभावित करता है। 30 से 90 इंच की दूरी सामान्यतया अपेक्षित दूरी है। बेन्जामिन का मानना है कि परामर्श सेटिंग में दो कुर्सियाँ तथा एक मेज होनी चाहिए जो इस तरह से व्यवस्थित हो कि परामर्शी परामर्शदाता को सीधे सामने या बिना मुड़े देखे। इन सभी के लिए कोई सख्त नियम नहीं हैं बल्कि परामर्शदाता को केवल यह ध्यान रखना होता है कि भौतिक व्यवस्था उसके तथा परामर्शी दोनों के लिए आरामदायक हो।

परामर्श निर्देशन का एक अंग है। निर्देशन का क्षेत्र व्यापक है जबकि परामर्श का संकीर्ण। निर्देशन और परामर्श दोनों ही पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित और कुशल व्यक्ति

द्वारा प्रदान किया जाता है जिसमें परामर्शदाता की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। जोन्स के विचार से परामर्शदाता वह है जो परामर्श का कार्य करता है।

राव (1967) का कहना है कि परामर्शदाता की भूमिका परिवर्तित हुई है। पहले कुछ विशेषज्ञ अपने छात्रों को, अपने कर्मचारियों को परामर्श देने का कार्य किया करते थे, किन्तु अब प्रशिक्षित परामर्शदाताओं ने यह कार्य प्रारम्भ किया है। परामर्शदाता एक परामर्शक की भूमिका में दिखाई देने लगा है जो शैक्षणिक कर्मचारियों व अन्य लोगों को परामर्श में सहायक कौशलों को सिखाने में लगा है। एक परामर्शदाता परामर्श देने में निम्न प्रयास करता है—

1. विद्यार्थियों की समस्याओं तथा उनके वैयक्तिक विकास के प्रति शिक्षकों की सूक्ष्मग्राहिता में वृद्धि करना।
2. मानव की समस्या समाधान में सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग का प्रदर्शन।
3. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं के शैक्षणिक सदस्यों की प्रभावशीलता में सुधार।

उपर्युक्त भूमिकाओं के अतिरिक्त परामर्श सेवा क्षेत्र में नयी भूमिकाओं का भी उद्भव हुआ है। पहले परामर्श युवाओं से, विशेष रूप से विद्यालयीय युवाओं से ही सम्बन्धित था, लेकिन अब अनेक देशों सहित भारतवर्ष में भी वृद्धों की समस्याओं के समाधान हेतु परामर्श सेवा का विस्तार हुआ है। इस तरह अब परामर्शदाता की भूमिका केवल युवाओं को परामर्श देने तक ही सीमित न रहकर प्रौढ़ व वृद्ध वय के लोगों को भी परामर्श देने की हो गयी है। क्लायन्ट्स एक अन्य समूह भी है जिसमें परामर्शदाता अपनी रुचि प्रदर्शित कर रहे हैं। इस समूह में महिलाएँ, विशेष रूप से युवा एवं मध्य प्रौढ़, ऐसे विद्यार्थी जो अच्छा नहीं कर पा रहे हैं, पारिवारिक परामर्श, अल्पसंख्यक तथा अप्रवासी लोग भी हैं, जिन्हें परामर्श की आवश्यकता है।

परामर्श की प्रक्रिया को उचित ढंग से संचालित करने में परामर्शदाता की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। परामर्श की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को विशिष्ट एवं सुनिश्चित परिस्थितियों में ही संचालित किया जा सकता है। विलियमसन ने अपनी पुस्तक 'निर्देशन के सिद्धान्त' में परामर्शदाता की भूमिका का उल्लेख किया है—

1. सूचनाओं को एकत्र करना और परीक्षण करना।
2. विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाने में सहायक।
3. परामर्शदाता द्वारा प्रश्न पूछना।
4. उपबोध्य के सामाजिक वातावरण के विषय में सूचना देना।
5. निर्णय प्रक्रिया के विषय में सूचना प्रदान करना।

6. परामर्शदाता सलाहकार के रूप में।
7. अन्य लोगों के साथ परामर्शदाता का वार्तालाप।
8. सम्पूर्ण व्यक्ति हेतु आदर।
9. मानकीय आँकड़े एकत्रित करना।
10. अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के विषय में सूचना देना।

परामर्शदाता के प्रमुख कर्त्तव्यों का उल्लेख मायर्स ने निम्नवत् किया है–

1. परामर्श के लिए समय का निर्धारण करना।
2. परामर्श के लिए उचित प्रबन्ध करना।
3. परामर्श की तैयारी करना।
4. परामर्श देना।
5. परामर्श से सम्बन्धित अभिलेख सुरक्षित रखना।

स्टीवार्ट ने परामर्शदाता की भूमिका के विषय में निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया है–

1. उपबोध्य से सम्बन्धित आधार सामग्री को एकत्र करना।
2. सेवार्थी की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझना।
3. सेवार्थी को स्वयं के अनुभवों को समझने में सहायता प्रदान करना।
4. विद्यालय घर कक्ष में सामंजस्य स्थापित करना।
5. विद्यालय के कार्यों के मध्य तालमेल बनाये रखना।
6. उपबोध्य से मुलाकात करना।
7. शिक्षा सम्बन्धी उन्नति एवं सामाजिक मेल–जोल के मध्य सामंजस्य उत्पन्न करना।
8. समूह में निर्देशन प्रदान करना।

परामर्शदाता की प्रकृति एवं परामर्श प्रक्रिया को ध्यान में रखकर जोन्स ने परामर्शदाता की भूमिका पर प्रकाश डाला है–

1. एक व्यक्ति की समस्या से सम्बद्ध सूचना की प्रयोजनवश व्याख्या करने की आवश्यकता।
2. ध्यान पूर्वक सुनने, जाँच करने, तथा सलाह की प्रक्रिया की आवश्यकता।
3. जिन समस्याओं के समाधान तक विद्यार्थी या व्यक्ति आसानी से न पहुँच सकें उसमें सहायक उपकरणों को गतिशील करना।

4. उन समस्याओं की जानकारी जागृत करने की आवश्यकता जो वर्तमान तो है लेकिन जिन्हें अभी स्वीकृत नहीं किया गया है।
5. स्वीकार की गई किन्तु समझी न जा सकने वाली समस्याओं की परिभाषा करने की आवश्यकता।
6. जब विद्यार्थी किसी समस्या का समाधान खोजने में सहायता की आवश्यकता चाह रहा हो तब रचनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता।
7. निश्चित गम्भीर अप–समायोजनों में सहायता की आवश्यकता।

2.3 एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताएँ

निर्देशन एवं परामर्श की सफलता में एक अच्छे परामर्श परिवेश और परामर्शदाता की विशेषताएँ, शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुभव, दक्षता, व्यावसायिक अभिवृत्ति, नैतिक आचरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परामर्शदाता में शैक्षिक अभिक्षमता, रुचि, क्षमता एवं उपयुक्त व्यक्तित्व गुण होना चाहिए। परामर्शदाता की रुचियाँ और क्षमताएँ लोगों के साथ कार्य करने के लिए उपयुक्त होनी चाहिए। व्यक्तिगत गुणों की दृष्टि से परामर्शदाता में सामाजिक सम्बन्धों की परिपक्वता, अन्य व्यक्तियों के विचारों और अभिवृत्तियों के प्रति संवेदनशीलता, विनोदी स्वास्थ्य और लक्ष्य के प्रति तत्परता, अच्छा एवं आकर्षक शरीर गठन, मीठी वाणी और लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण होना चाहिए।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने परामर्शदाताओं की अनेक विशेषताएँ बताई हैं। रोपबर ने इन सभी विशेषताओं को संकलित करते हुए एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताओं को निम्नवत् व्यक्त किया है–

1. **पारस्परिक सम्बन्ध**–परामर्शदाता का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए जिससे वह दूसरों को अपनी ओर तुरन्त आकर्षित कर ले। परामर्शी को सहानुभूतिपूर्वक समझे, लोगों में रुचि ले, व्यक्तियों से मिलने–जुलने की योग्यता, दूसरों के दृष्टिकोणों के प्रति संवेदनशील होना, धैर्य, ईमानदारी, चतुरता, दूसरों का विश्वास प्राप्त कर सकने की क्षमता, दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान, परामर्शी की निजता (Privacy) का ध्यान रखना, लोगों को समझना और स्वीकार करना, आपसी सम्बन्धों में सौहार्द्र बनाये रखना, पारस्परिक सम्बन्ध निकट के होने चाहिए।
2. **व्यक्तिगत सामंजस्य**–परामर्शदाता में वैयक्तिक समायोजन की क्षमता होनी चाहिए। अपनी कमजोरियों का ज्ञान, पिछले अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता, आलोचना को स्वीकार करने की सामर्थ्य, आत्मसम्मान, अपने विषय में ज्ञान, हास्य–विनोद का पुट, परिपक्वता, बातों को स्पष्ट रूप से समझने की योग्यता, परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, लचीलापन, आत्मविश्वास आदि वैयक्तिक समायोजन में सहायक होते हैं। अन्य व्यक्तियों का आदर करने का गुण होना चाहिए।

3. **शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा विद्वता की शक्तियाँ**—उच्च शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा शैक्षिक विद्वता का सम्मिलित होना आवश्यक है। एक अच्छे परामर्शदाता में कार्य क्षमता, बुद्धि, विद्वता के प्रति रुचि, तथ्यों का समादर, व्यावहारिक निर्णय, सामान्य विवेक, उच्च सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुचियों जैसे गुण होने चाहिए। सामान्य ज्ञान एवं बुद्धि का परामर्शदाता में होना आवश्यक है।

4. **नेतृत्व**—एक अच्छे परामर्शदाता में नेतृत्व की क्षमता होनी चाहिए ताकि वह दूसरों को प्रभावित कर सके और लोगों का विश्वास हासिल कर सके। उसका व्यवहार विश्वसनीय होना चाहिए। अन्य व्यक्तियों की सहायता व सहयोग देने की भावना होनी चाहिए।

5. **जीवन—दर्शन**—परामर्शदाता में उत्तम आचरण, स्वस्थ जीवन—दर्शन, नागरिकता का भाव, रुचियाँ तथा सौन्दर्य बोध, आध्यात्मिकता एवं धार्मिक परम्पराएँ तथा मानव—प्रकृति में आस्था होनी चाहिए।

6. **स्वास्थ्य एवं बाह्य व्यक्तित्व**—एक अच्छे परामर्शदाता में स्वास्थ्य, मधुर वाणी, व्यक्तित्व की आकर्षक बाह्य रूपरेखा, स्वच्छता, सहानुभूति एवं सहनशक्ति का होना आवश्यक है। उसका हावभाव एवं अंग संचालन भी उचित ढंग का होना चाहिए।

7. **वृत्ति के प्रति समर्पित होना**—वृत्तिक दृष्टिकोण, प्रेरणाभाव, परामर्श कार्य हेतु निष्ठा व उत्साह, वृत्तिक नैतिकता के प्रति गहन भावना, वृत्तिक विकास, कर्त्तव्य हेतु निर्धारित समय के अतिरिक्त भी कार्य करने की इच्छा, परामर्श कार्य में रुचि लेना तथा परामर्शी को सहायता प्रदान करने वाले सम्बन्ध के रूप में कार्य करना।

परामर्श की प्रक्रिया आदिकाल से चली आ रही है। लेकिन परामर्श की अवधारणा सामाजिक परिवर्तनों के साथ बदलती रही है। यह एक प्रक्रिया है जिसकी अपनी विशेषताएँ हैं।

2.4 सारांश

परामर्श शब्द दो व्यक्तियों के सम्पर्क की उन सभी स्थितियों का समावेश करता है जिनमें एक व्यक्ति को अपने एवं पर्यावरण के बीच प्रभावी समायोजन प्राप्त करने में सहायता की जाती है। परामर्श में दो तत्व महत्वपूर्ण हैं—मानवीय सम्बन्ध एवं सहायता। परामर्श का कार्य करने वाला परामर्शदाता कहलाता है। परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए केलर ने इन्हें अध्यापक के समकक्ष रखा है और कहा है कि उसे अपने कार्य का महत्व समझते हुए निष्ठावान एवं आदर्श व्यक्ति होना चाहिए। एक अच्छे परामर्शदाता में पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने की योग्यता होनी चाहिए। स्वस्थ जीवन—दर्शन एवं वृत्ति के प्रति समर्पित होना चाहिए। उसका व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए एवं उसे हँसमुख व मिलनसार होना चाहिए।

2.5 शब्दावली

आत्म स्वीकृति–अपनी योग्यता को, अपने गुणों एवं सीमाओं को पहचानना व स्वीकार करना।

आत्म ज्ञान–व्यक्ति को, स्वयं के मूल्यांकन में सहायता प्रदान करना। अपने विषय में जानने, अपनी स्वयं की योग्यता व शक्ति को जानना।

वृत्तिक विकास–अपने व्यवसाय के प्रति समर्पण व उसकी आधारभूत योग्यताओं को आत्मसात करना।

जीवन–दर्शन–मूल्यों, विश्वासों, नागरिकता के भाव से ओत–प्रोत होना। एक व्यापक दृष्टिकोण जो नैतिकता पर आधारित हो।

व्यक्तिगत सामंजस्य–वैयक्तिक समायोजन की क्षमता, परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, आत्म सम्मान, अनुभवों का लाभ उठाने की योग्यता आदि गुणों का समावेश।

2.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

1. परामर्श है–

    (क) सहायता सेवा

    (ख) मार्ग दर्शन

    (ग) पारस्परिक सीखना

    (घ) उपरोक्त सभी

2. समायोजन सम्भव है, यदि–

    (क) प्रेरकों में संघर्ष कम हो

    (ख) उद्देश्यों में अधिकाधिक संगठन हो

    (ग) दुःखद स्थिति का सामना करने की क्षमता हो

    (घ) उपरोक्त सभी

3. परामर्श प्रक्रिया की महत्वपूर्ण प्रविधि है–

    (क) बुद्धि परीक्षण

    (ख) शैक्षिक परीक्षण

    (ग) साक्षात्कार प्रविधि

    (घ) उपरोक्त कोई नहीं

4. परामर्श का उपयोग किया जाता है–

    (क) शैक्षिक समस्या में

    (ख) व्यावसायिक समस्या में

(ग) व्यक्तिगत समस्या में

(घ) उपरोक्त सभी

5. परामर्शदाता की मुख्य भूमिका होती है–

(क) समस्या में सहायता

(ख) निकट का सम्बन्ध

(ग) परामर्शी विचार विनिमय

(घ) उपरोक्त सभी

6. परामर्शदाता का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। सत्य/असत्य

7. शिक्षक एवं परामर्शदाता में अन्तर नहीं है। सत्य/असत्य

8. परामर्शदाता को साक्षात्कार प्रविधि में दक्ष होना चाहिए। सत्य/असत्य

उत्तर–(1) घ, (2) घ, (3) ग, (4) घ, (5) घ, (6) सत्य, (7) असत्य, (8) सत्य।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण–2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।
2. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल–बनारसीदास, वाराणसी।
3. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013–14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
5. एस0एन0 शर्मा एवं एम0के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण–2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए–23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।
6. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्शदाता की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
2. एक अच्छे परामर्शदाता में कौन–कौन सी विशेषताएँ होनी चाहिए।
3. परामर्शदाता के लिए आवश्यक साधन कौन–कौन से हैं?
4. परामर्शदाता की प्रकृति एवं कार्यों का वर्णन करें।
5. परामर्शदाता की अर्हताओं एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर प्रकाश डालिए।

❖❖❖

इकाई–3 : परामर्श के सैद्धांतिक दृष्टिकोण, निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम की तर्कसंगता एवं उद्देश्य (Theoretical Approaches of Counseling, Rationalization and Purpose of Guidance & Counseling Programme)

इकाई की संरचना :

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण
3.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्य की तर्कसंगता एवं उद्देश्य
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

''परामर्श एक निर्धारित रूप से संरचित स्वीकृत सम्बन्ध हैं जो परामर्श प्रार्थी को पर्याप्त मात्रा में स्वयं के समझने में सहायता देता है जिससे वह अपने नवीन ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ठोस कदम उठा सके।'' कार्ल रोजर्स के ये विचार परामर्श के आधारों की ओर संकेत करते हैं जिनका सम्बन्ध सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से है। सिद्धान्त की व्याख्या प्रायः किन्हीं दृष्टिगोचर या घटनाओं के अन्तर्निहित नियमों अथवा दिखाई देने वाले सम्बन्धों के प्रतिवादनों के रूप में की जाती है जिनका एक निश्चित सीमा के अन्दर परीक्षण सम्भव है। यहाँ यह विचार किया जायेगा कि परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण कौन–कौन से हैं? इसकी तर्कसंगता एवं उद्देश्य क्या–क्या हैं?

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बातों के बारे में जान जायेंगे–

- परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण
- परामर्श की तर्कसंगता
- परामर्श के उद्देश्य

3.2 परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण

परामर्श पारस्परिक रूप से सीखने की प्रक्रिया है तथा इसके अन्तर्गत दो व्यक्ति सम्मिलित होते हैं–एक सहायता प्राप्तकर्त्ता और दूसरा वह व्यक्ति जो इस प्रथम व्यक्ति की सहायता इस प्रकार करता है कि उसका अधिकतम विकास हो सके। परामर्शकर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वह परामर्श के सैद्धान्तिक आधारों के बारे में सम्यक् जानकारी हासिल करे। परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को सुविधा हेतु इन्हें निम्न वर्गों में रखा जा सकता है–

1. **प्रभाववर्ती/अस्तित्ववादी सिद्धान्त (Affectively Oriented/Existentional Theory)**–इस सिद्धान्त का प्रारम्भ मूलतः अस्तित्ववादी–मानवतावादी दर्शन से होता है। इसमें उपबोध्य को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष बल दिया जाता है। इस सिद्धान्त का उद्देश्य व्यक्ति का उपचार करना नहीं होता बल्कि दैनिक जीवन के द्वन्द्वों तथा विरोधाभासों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की दिशा में परामर्शी को सहायता प्रदान करना होता है। समस्याएँ मानव जीवन की अविभाज्य इकाई होती हैं। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में अनेक समस्याओं से जूझता रहता है। प्रभाववर्ती सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की सभी समस्याओं का समाधान सम्भव होता है। समस्या समाधान का सम्बन्ध हमारे दृष्टिकोण से होता है। किसी भी समस्या के लिए स्वयं का या परिस्थितियों को दोषी ठहराना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होता और ना ही उससे कुछ लाभ होता है। प्रभाववर्ती सिद्धान्त के मुख्य अभिग्रह निम्नवत् हैं–

   (i) यह सिद्धान्त व्यक्ति को उसके जीवन की जटिलताओं के साथ समायोजित करने में विशेष सहायक होता है।

   (ii) व्यक्ति के जीवन में चिन्ता उसके जीवन की वास्तविकता को अर्जित करने का एक मूल्यवान साधन होता है। अतः चिन्ता का पूर्ण परिहार उचित नहीं होता है।

   (iii) व्यक्ति कभी भी एकाकी अवस्था में नहीं होता, उसका अपना एक समाज, अपनी एक दुनिया होती है, जो कि उसके अनुभव और अनुभूतियों को प्रभावित करती है।

   (iv) व्यक्ति के जीवन में दो पक्ष होते हैं–सकारात्मक तथा नकारात्मक। जीवन की तेजस्विता के लिए दोनों ही पक्षों की स्वीकृति होनी चाहिए।

   (v) इसी प्रकार जीवन के मुख्यतः चार आयाम होते हैं–आध्यात्मिक, आन्तरिक, सामाजिक तथा भौतिक। ये चारों एक दूसरे से समन्वित रहते हैं।

   (vi) जीवन की जटिलताओं में थोड़ी–सी सहायता से ही व्यक्ति जीवन के आवश्यक अधिगम को सहजता से प्राप्त कर सकता है। परामर्शदाता की सहायता के बिना जीवन की जटिलताएँ व समस्याएँ दिनों–दिन बढ़ती चली जाती हैं।

(vii) व्यक्ति में स्वयं को छलने की प्रवृत्ति होती है। आत्मबोध में सत्य का सामना करने तथा प्रमाणिकता के लक्ष्य प्राप्ति की शक्ति होती है।

(viii) व्यक्ति का स्व स्थूल व अपरिवर्तनशील नहीं होता। अतः उसमें सदैव रूपान्तरण होता रहता है।

प्रभाववर्ती या अस्तित्ववादी सिद्धान्त का उद्देश्य लोगों में उनकी बुद्धि, शक्तियों, क्षमताओं तथा संसाधनों के बारे में बोध विकसित करना तथा उनके नकारात्मक पक्ष को समझने में उनकी सहायता करना होता है। इस सिद्धान्त का यह विश्वास होता है कि अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी दृष्टिकोण के परिवर्तन द्वारा किसी भी नियति को बदलना सम्भव होता है।

2. **व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourally Oriented Theory)**–यह सिद्धान्त उपबोध्य के अवलोकनीय व्यवहारों पर बल देता है। परामर्शी के अनुभवों की अपेक्षा उसके व्यवहारों को जानने व समझने में व्यवहारवादी अधिक रुचि रखते हैं। व्यवहारवादी समस्याग्रस्त व्यक्ति के लक्षणों पर अधिक ध्यान देते हैं। ये समस्याएँ अधिकांशतः उपबोध्य द्वारा अपने व्यवहार करने के ढंग या व्यवहार में असफल होने से सम्बन्धित होती हैं। इस प्रकार व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया (Action) पर बल देते हैं।

व्यवहारवादी सिद्धान्त की मान्यता है कि जब व्यक्ति उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करने में असमर्थ होता है वह चिन्तित होने लगता है, तनाव में आ जाता है और सामान्यतया उसका व्यवहार भी अनुपयुक्त होता चला जाता है। उत्तरदायित्व विहीन व्यवहार के कारण व्यक्ति में आत्म–पराजय अर्थात् हीनभावना जाग्रत होने लगती है। व्यक्ति अपने वातावरण के साथ प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप व्यवहारों को जन्म देता है। व्यवहारवादी परामर्शदाता, उपबोध्य को उत्तरदायी रूप से व्यवहार करने के नये तरीके जानने तथा सफल होने के आत्मबोध को जाग्रत करने में सहायता करते हैं। व्यवहारवादी सिद्धान्त की मुख्य मान्यताएँ निम्नवत् हैं–

(i) समकालीन वर्तमान व्यवहार पर पूरा ध्यान देना चाहिए क्योंकि कोई भी विगत व्यवहार परिवर्तन नहीं कर सकता।

(ii) परामर्श का मूल उद्देश्य परामर्शी का व्यवहार परिवर्तन ही होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की भावनाओं, संवेगों या अभिवृत्तियों की अपेक्षा उसके व्यवहार को अधिक सुगमता से परिवर्तित किया जा सकता है।

(iii) परामर्श का लक्ष्य उत्तरदायी व्यवहार होता है। इसमें परामर्शदाता, परामर्शी को ऐसा मार्ग ढूँढ़ने में सहायता करता है जिससे वह दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक न बने साथ ही अपनी आवश्यकताएँ उत्तरदायी रूप से पूर्ण कर सकें।

(iv) सफलता–असफलता का आत्मबोध होना चाहिए।

(v) परामर्शदाता को परामर्शी के साथ व्यक्तिगत स्तर पर भी उत्तरदायी ढंग से जुड़ना चाहिए।

(vi) परामर्शदाता का एक महत्वपूर्ण कार्य परामर्शी में परिवर्तन हेतु अनेक विकल्प उत्पन्न करने में उसकी सहायता करना भी होता है।

(vii) प्रत्येक व्यक्ति को सफल व उत्तरदायित्व वाले लोगों से सम्बद्ध होना चाहिए। यह वृद्धि बल सभी व्यक्ति में पाया जाता है। परामर्श द्वारा इसमें विकास किया जा सकता है।

इस प्रकार व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्श में मुख्य बल वर्तमान पर देते हैं अर्थात् अभी परामर्शी क्या कर रहा है तथा उसके सफल होने के प्रयासों की दिशा क्या है? परामर्शी में अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने की योजना बनाने की क्षमता जाग्रत कर, उसको उत्तरदायी व्यवहार चुनने में समर्थ बनाया जा सकता है।

3. **बोधात्मक/संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Cognitively Orieted Theory)**–दार्शनिक इपिक्टेटस का विश्वास था कि, ''लोग वस्तुओं से परेशान नहीं होते हैं वरन् उनकी परेशानी का मूल कारण उनका वह अभिमत होता है जो वे उस वस्तु के विषय में रखते हैं।'' बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि बोध या संज्ञान व्यक्ति के संवेगों व व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक हैं। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार अनुभव व व्यवहार करता है। घटनाएँ या लोग किसी व्यक्ति के जीवन में उसे अनुभव करने या किसी निश्चित रूप में व्यवहार करने हेतु वस्तुतः बाध्य नहीं करते। इस सिद्धान्त के समर्थकों का मानना है कि बाह्य घटनाएँ या कारक, प्रत्यक्ष रूप से सांवेगिक या व्यवहारजन्य प्रतिक्रियाओं की जनक या कारण नहीं होती हैं। इस सिद्धान्त के मूलभूत अभिग्रह निम्नवत् हैं–

(i) वातावरण के साथ समुचित समायोजन स्थापित करने के लिए वातावरण के साथ स्वयं के तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में यथार्थपूर्ण सूचनाओं की आवश्यकता होती है।

(ii) व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियाँ वातावरण के साथ मध्यस्थता स्थापित करके मौलिक सूचनाएँ प्राप्त करती हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति की व्यवहारिकता पर देखा जा सकता है।

(iii) व्यक्ति की अनुभूतियाँ, व्यवहार तथा दैहिक अवस्थाओं के साथ विश्वसनीय सम्बन्ध होता है।

(iv) व्यक्ति अपने उत्पन्न हुए संज्ञान का औचित्यपूर्ण मूल्यांकन कर सकता है तथा उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी कर सकता है।

संज्ञानात्मक सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यह होती है कि व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक या सांवेगिक समस्याओं का कारण व्यक्ति के विकृत चिन्तन में निहित होता है। व्यक्ति की इन समस्याओं का कारण अनुभव व परिस्थितियों में निहित नहीं होता। जब

अस्वस्थ या कुसमायोजित स्कीमा विकसित व सक्रिय हो जाता है तो सूचना संसाधन में भी विकृति आ जाती है। इसके अतिरिक्त स्वतः स्फूर्ति विचार प्रणाली पर नकारात्मक रूप भी देखने में आता है। व्यक्ति का अस्वस्थ संज्ञान पुनर्बालित होता है जिसमें संवेगात्मक समस्याओं की निरन्तरता बनी रहती है। इस उपागम की सामान्य परिकल्पनाओं को हेरिस ने निम्न चार रूपों में दर्शाया है–

(क) मैं ठीक हूँ आप भी ठीक हैं–यह एक स्वस्थ मानसिक दशा है।

(ख) मैं ठीक हूँ आप ठीक नहीं हैं–यह उस व्यक्ति की मनोस्थिति है जो कि दूसरे को अपने दुःखें का कारण स्वीकार करता है।

(ग) मैं ठीक नहीं हूँ आप ठीक हैं–यह लोगों की सामान्य मनोस्थिति है जबकि वे अन्यों की तुलना में अपने को शक्तिहीन अनुभव करते हैं।

(घ) मैं ठीक नहीं हूँ आप भी ठीक नहीं हैं–यह जीवन में निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों की मनोदशा है।

परामर्शदाता संज्ञानात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत परार्शी को उसकी नष्ट अहं दशा के पुनर्निर्माण हेतु प्रेरित करता है तथा उसे जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने व विकसित करने की क्षमता दृढ़ करने का सम्बल देता है।

4. **व्यवस्थावादी विभिन्न दर्शनग्राही प्रारूप सिद्धान्त (Systematic Ellectic Model Theory)**–परामर्शदाताओं में एक नई परम्परा अपने को विभिन्न दर्शनग्राही घोषित करने की 1977 से प्रारम्भ हुई। ऐसे परामर्शदाताओं का प्रतिशत लगभग 65 था जो कि मुख्यतः नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत थे। सामान्यतः विभिन्न दर्शनग्राही परामर्शदाता यह मानते हैं कि कोई भी सिद्धान्त इतना विकसित नहीं है कि सभी उपबोध्यों के लिए समान रूप से उपयोगी या लाभदायक हो। इसलिए ये परामर्शदाता अभियोग्यताओं, सम्प्रत्ययों, सुझावों, रणीनतियों आदि का ऐसा वृहत् परिप्रेक्ष्य निर्मित करना चाहते हैं जो कि उपबोध्यों की समस्या को तार्किक ढंग से समझने में सहायक सिद्ध हो सके। इस प्रकार के कुछ प्रारूप या मॉडल वर्तमान में प्रचलन में भी आ गये हैं, जिनमें राबर्ट कारविक्स का मानव संसाधन विकास मॉडल (1969), ब्लोनर का विकास मॉडल (1974), इवी तथा डाउनिंग का उद्देश्यपूर्ण परामर्श मॉडल (1980) तथा गजदा (1984) के बहुआयामी प्रशिक्षण एवं जीवन कुशलता मॉडल प्रमुख हैं।

इस सिद्धान्त की मुख्य विशेषता परामर्श प्रक्रिया का विभिन्न सेवाओं में संयोजित होना है। इन्हीं सोपानों/चरणों के अनुरूप इस सिद्धान्त में परामर्श की विभिन्न अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं। सभी अवस्थाएँ एक दूसरे से जुड़ी व अन्तःक्रियाशील मानी जाती हैं। यही व्यवस्था प्रारूप मूलतः उपागम का आधार है व परामर्श की एक विशिष्ट प्रविधि का जनक है। संक्षेप में, इन अवस्थाओं को इस प्रकार से जाना जा सकता है–

क्र0सं0	परामर्श की अवस्था	परामर्श का क्रियान्वयन
1.	प्रथम अवस्था	समस्या का अन्वेषण करना (Problem Eploration)
2.	द्वितीय अवस्था	द्विआयामी समस्या परिभाषा (Two-Dimensional Problem Definition)
3.	तृतीय अवस्था	विकल्पों का अभिज्ञान करना (Identification of Alternation)
4.	चतुर्थ अवस्था	योजना बनाना (Planning)
5.	पंचम अवस्था	क्रिया–प्रतिबद्धता (Action Commitment)
6.	षष्ठ अवस्था	मूल्यांकन एवं पृष्ठपोषण (Assessment and Feedback)

व्यवस्थावादी सिद्धान्त सिद्धान्त की ये व्यवस्थाएँ या चरण एक दूसरे से जुड़े अर्थात् अन्तःक्रियाशील होते हैं। इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यह होती है कि व्यक्ति जीवन में एकीकरण के उच्चतम स्तर की प्राप्ति हेतु जीवनपर्यन्त प्रयासरत रहता है। इसलिए परामर्शी या उपबोध्य को दी जाने वाली परामर्श सेवा की व्यवस्था व्यावहारिक होनी चाहिए।

3.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्य की तर्कसंगता एवं उद्देश्य

व्यक्ति में पायी जाने वाली वैयक्तिक भिन्नता, उसकी एक जैसी क्षमताओं का न होना, उसके परिवेश की विविधता, निर्देशन एवं परामर्श की तर्कसंगता का सहज संकेत प्रस्तुत करते हैं। निर्देशन एवं परामर्श का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है। शिक्षा के उपरान्त निर्देशन ही एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के विकास एवं प्रगति हेतु सर्वाधिक सहायक होती है। निर्देशन का सामान्य उद्देश्य है व्यक्ति द्वारा अपने आपको अच्छी तरह जानना और समझना, अधिकांश लोग अपनी योग्यता और क्षमता के विषय में उचित जानकारी नहीं रखते। इसलिए उन्हें जीवन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। निर्देशन एवं परामर्श के बिना मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता। वह न तो अपने जीवन को सुखमय बना सकता है और न ही उत्तम व्यवसाय का चयन अपनी क्षमता के अनुरूप कर सकता है। अमेरिका के शिक्षा विभाग द्वारा निर्देशन का उद्देश्य इस प्रकार बताया गया है, किसी व्यक्ति की प्राकृतिक शक्तियों की खोजन करने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों से अवगत कराना जिससे व्यक्ति अपने जीवन को अपने तथा समाज के लिए अधिक उपयोगी बना सके।

वर्तमान सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक असन्तोषों के कारण अनेक असमायोजनकारी तत्व उत्पन्न हो रहे हैं, जिनसे निपटने के लिए अनुभवी एवं भली प्रकार से प्रशिक्षित निर्देशन कार्यकर्त्ताओं एवं समस्याओं से ग्रस्त व्यक्ति के मध्य सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता है। यद्यपि सभी मनुष्य कई दृष्टियों से समान हैं, तथापि

व्यक्तिगत भिन्नताओं को पहचानना तथा व्यक्ति के निर्देशन या परामर्श के लिए उन पर विशेष ध्यान देना अपेक्षित है। निर्देशन एवं परामर्श का सम्बन्ध यद्यपि जीवन के हर पहलू से होता है, इसके अन्तर्गत सामान्यतः वे क्षेत्र आते हैं जिनमें इस बात में दिलचस्पी रखी जाती है कि व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य उसके विद्यालय, परिवार तथा व्यावसायिक एवं सामाजिक माँगों एवं सम्बन्धों में किस सीमा तक बाधक होता है अथवा इन क्षेत्रों में पायी जाने वाली परिस्थितियों से व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य किस सीमा तक प्रभावित होता है। इसलिए निर्देशन एवं परामर्श का कार्य उन कतिपय व्यक्तियों में ही सीमित नहीं होना चाहिए और इसकी आवश्यकता स्पष्ट रूप में प्रदर्शित करते हैं, बल्कि इसे सभी आयु वर्ग के उन लोगों के लिए उपलब्ध कराना चाहिए जो इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लाभ उठा सकते हैं।

निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है व्यक्ति को सन्तुलित शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं सामाजिक प्रगति में सहायता देना,। उपबोध्य में स्वयं समस्या का समाधान खोजने एवं उसकी व्यवस्था कर सकने की क्षमता का विकास करना है। व्यक्ति के समक्ष उपस्थित समस्याओं के समाधान में सहायक हो जिससे वह तथ्यों को सही ढंग से समझ सके एवं विवेकपूर्ण चुनाव तथा अनुकूलन कर सके।

परामर्श का उद्देश्य उपबोध्य के व्यवहारों, अभिप्रेरणाओं एवं भावनाओं को समझना है। व्यक्ति की इन विशेषताओं को समझने के लिए अनेक तकनीकों एवं परीक्षणों की सहायता ली जाती है। निःसन्देह आवश्यकताओं एवं समस्याओं का निर्धारण वांछनीय है किन्तु व्यक्ति की वास्तविक प्रकृति एवं जीवन लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही उन आवश्यकताओं एवं समस्याओं के समाधान का प्रयास परामर्शदाता को करना चाहिए। परामर्शदाता का उद्देश्य केवल परामर्शी को समझने तक ही सीमित नहीं है। परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति की सहायता करना है जिससे वह तात्कालिक समस्या से निजात पा सके तथा भविष्य में भी अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ सके। परामर्श के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि परामर्श का लक्ष्य है कि उपबोध्य की सहायता इस तरह की जाय कि वह अपनी क्षमताओं को समझ सके। निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति में जीवन–मूल्यों के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता प्रदान करना है। परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति को जीवन के श्रेष्ठतम धरातल पर पहुँचने में सहायता प्रदान करना है। व्यक्ति का सर्वोत्तम एवं पूर्णतः परिष्कृत एवं सन्तुलित विकास करना निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है जिससे व्यक्ति आत्मसंयमी, आत्मनिर्देशित और आन्तरिक संसाधनों से पूर्ण हो सके। वैयक्तिक प्रसन्नता और सामाजिक निपुणता तथा व्यक्ति को बेहतर जीवन जीना सिखाना ही निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त परिवारों की सहायता करना, नैतिक चरित्र के विकास में समुदायों की सहायता करना, बेहतर मानवीय सम्बन्धों का प्रोत्साहन एवं पोषण करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझदारी के विकास को सम्मिलित किया जाता है। इस तरह स्पष्ट है कि निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य उपबोध्य की सर्वांगीण उन्नति

है। देशकाल परिस्थिति के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है। हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भ भी इसे प्रभावित करते हैं।

3.4 सारांश

परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण काफी व्यापक हैं। अध्ययन की सुविधानुसार इन्हें कई वर्गों में रखा जा सकता है–प्रभाववर्ती/अस्तित्ववादी सिद्धान्त, व्यवहारवादी सिद्धान्त, बोधात्मक/संज्ञानात्मक सिद्धान्त, व्यवस्थावादी विभिन्न दर्शनग्राही प्रारूप सिद्धान्त।

प्रभाववर्ती सिद्धान्त का प्रारम्भ मूलतः अस्तित्ववादी–मानवतावादी दर्शन से हुआ है। इसमें उपबोध्य को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष जोर दिया जाता है। इस सिद्धान्त का उद्देश्य दैनिक जीवन के द्वन्द्वों एवं विरोधाभासों के साथ समायोजन स्थापित करने के लिए परामर्शी को सहायता प्रदान करना होता है। व्यवहारवादी सिद्धान्त उपबोध्य को निरीक्षणीय व्यवहारों पर जोर देता है। व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देते हैं। बोधात्मक सिद्धानत में यह स्वीकार किया जाता है कि बोध्य या संज्ञान व्यक्ति के संवेगों या व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक हैं। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार व्यवहार करता है। व्यवस्थावादी विभिन्न दर्शनाग्राही सिद्धानत की मुख्य विशेषता परामर्श प्रक्रिया का विभिन्न सोपानों में संयोजत होना है। इन्हीं सोपानों के अनुरूप इस सिद्धान्त में परामर्श की विभिन्न अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं।

निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है उपबोध्य को अधिक अच्छा करने में सहायता देने अर्थात् उपबोध्य को अपने महत्व को स्वीकारने, वास्तविक 'स्व' एवं आदर्श 'स्व' के बीच में अन्तर को मिटाने में सहायता देने तथा लोगों को अपनी वैयक्तिक समस्याओं में अपेक्षाकृत स्पष्टता से विचार करने में सहायता देने से सम्बन्धित है। उपबोध्य की दृष्टि से निर्देशन एवं परामर्श के उद्देश्य हैं–व्यक्ति की क्षमता का अधिकतम विकास करना, उसके सम्मुख उपस्थित समस्याओं के समाधान में सहायता करना तथा प्रौढ़ समायोजन की शक्ति एवं प्रवृत्ति का विकास करना। उपबोध्य द्वारा अपनी क्षमताओं, अभिप्रेरकों तथा आत्मदृष्टिकोणों की यथार्थ स्वीकृति, सामाजिक–आर्थिक तथा व्यावसायिक परिवेश के साथ तर्कसंगत सामंजस्य की प्राप्ति। वैयक्तिक भिन्नताएँ, विशिष्टीकृत योग्यताओं का जन्मजात न होना, युवाओं की समस्याओं में सहायता की आवश्यकता आदि ऐसे बिन्दु हैं जो निर्देशन की तर्कसंगता एवं उद्देश्य को स्वयं परिभाषित करते हैं।

3.5 शब्दावली

सिद्धान्त–क्रमबद्ध रूप से संयोजित ज्ञान जो किसी वस्तु के परिकल्पनात्मक स्वरूप की ओर संकेत करता है।

उद्देश्य–वह कार्यावस्था है जिसकी ओर व्यक्ति का व्यवहार अथवा मानसिक और पेशीय क्रियाएँ निर्देशित व उन्मुख होती हैं।

परामर्शी/उपबोध्य–सेवार्थी अथवा सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति जिसे निर्देशन व परामर्श प्रदान किया जा रहा है।

व्यक्ति–केन्द्रित उपागम–यह उपगम स्वीकार करता है कि व्यक्ति में अपना स्वस्थ एवं सृजनात्मक विकास सम्भव बनाने की सामर्थ्य होती है।

व्यवहारवादी सिद्धान्त–इसके प्रक्रियाओं के बाह्य अध्ययन की महत्ता पर मूल रूप से बल दिया जाता है।

3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

1. निर्देशन एक प्रकार की–

   (क) बाध्यता है।

   (ख) सहायता है।

   (ग) चयन प्रक्रिया है।

   (घ) अध्ययन पद्धति है।

2. निर्देशन का उद्देश्य है–

   (क) व्यक्ति के द्वारा अपनी समस्याओं की पहचान करना।

   (ख) व्यक्ति द्वारा अपनी समस्याओं को समझना।

   (ग) समस्याओं के समाधान करने की प्रक्रिया में व्यक्ति की सहायता करना।

   (घ) उपर्युक्त सभी।

3. निर्देशन का सिद्धान्त आधारित है–

   (क) व्यक्ति के महत्व एवं प्रतिष्ठा की स्वीकृति।

   (ख) स्वयं निर्देशन की योग्यता।

   (ग) जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया।

   (घ) उपरोक्त सभी।

4. निम्न उद्देश्यों में से कौन–सा उद्देश्य परामर्श का अभीष्ट उद्देश्य नहीं है?

   (क) मानवीय स्वास्थ्य का विकास।

   (ख) आत्मसिद्धि।

   (ग) व्यक्ति के संसाधन का संवर्द्धन।

   (घ) व्यवहार परिमार्जन।

5. मानतावादी–अस्तित्ववादी दर्शन की उपज है–

   (क) प्रभाववर्ती सिद्धान्त।

(ख) व्यवहारवादी सिद्धान्त।

(ग) बोधात्मक सिद्धान्त।

(घ) व्यवस्थावादी सिद्धान्त

6. आपातकालीन हस्तक्षेप एवं प्रबन्धन परामर्श का उद्देश्य नहीं है।

(क) हाँ (ख) नहीं

7. परामर्श का उद्देश्य विकासात्मक होता है।

(क) हाँ (ख) नहीं

8. जीवन में सार्थकता का विकास परामर्श का प्रमुख तात्कालिक उद्देश्य होता है।

(क) हाँ (ख) नहीं

उत्तर–(1) ख, (2)घ, (3) घ, (4) घ, (5) क, (6) नहीं, (7) हाँ, (8) नहीं।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण–2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।

2. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल–बनारसीदास, वाराणसी।

3. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013–14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

4. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।

5. एस0एन0 शर्मा एवं एम0के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण–2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए–23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।

6. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्देशन एवं परामर्श की तर्कसंगता का वर्णन कीजिए।
2. निर्देशन एवं परामर्श के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
3. परामर्श के सैद्धान्तिक आधार कौन–कौन से हैं?
4. प्रभाववर्ती सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
5. परामर्श के क्षेत्र में प्रचलित किन्हीं दो सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

❖❖❖

इकाई–4 : निर्देशन एंव परामर्श कार्यक्रम का आयोजन व मूल्यांकन और परामर्श में नैतिकता (Organizing and Evaluation of Guidance & Counseling Programme and Ethics in Counseling)

इकाई की संरचना :

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का संगठन
4.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

निर्देशन एवं परामर्श का मानव जीवन में अपना अलग ही महत्व है। निर्देशन/परामर्श प्रबन्धन कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं है जिसे विद्यालय या महाविद्यालय के किसी कक्ष या संकाय/सम्भाग तक सीमित कर दिया जाय। निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम एक निश्चित नीति के अनुरूप संगठित तथा प्रशासित होता है। इससे व्यक्ति या विद्यार्थी के लक्ष्य प्राप्ति से निर्देश्नकर्त्ता/परामर्शदाता का अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध होता है।

निर्देशन कार्यक्रम का संगठन एवं प्रशासन कुछ मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। जिसका विस्तृत वर्णन इस इकाई में किया जायेगा। अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के स्वरूप को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

निर्देशन/परामर्श का मूल्यांकन भी आवश्यक होता है जिसका सम्पादन कई चरणों में क्रमवार किया जाता है। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के मूल्यांकन में प्रमुख रूप से प्रयोगात्मक विधि, सर्वेक्षण विधि एवं व्यक्ति अध्ययन विधि का उपयोग किया जाता है।

परामर्श कार्यक्रम के कुछ नीति संहिताएँ हैं, जिनका अनुपालन करना आवश्यक होता है। इस सम्बन्ध में द अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन ने वर्तमान सन्दर्भ

में एक नीति संहिता का विकास किया है जिसमें समय–समय पर संशोधन एवं परिवर्द्धन होता रहता है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि–

- निर्देशन / परामर्श कार्यक्रम का संगठन क्या है?
- निर्देशन / परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन का चरण क्या है तथा इनके मूल्यांकन के लिए कौन–सी प्रमुख विधियाँ हैं?
- परामर्श में नैतिकता या नीति संहिता क्या है?

4.2 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का संगठन

मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों के स्वरूप को दो श्रेणियों में विभाजित किया है–

1. प्रथम प्रारूप में प्रशासक / निरीक्षक / अधीक्षक (Superintendent) / नीति निर्धारण का पूरा कार्य करता है, जिसे हम यहाँ 'प्रारूप प्रथम' कहकर संज्ञापित करते हैं।
2. द्वितीय प्रारूप में निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम के निर्धारण का उत्तरदायित्व एक समिति, जिसे 'निर्देशन समिति (Guidance Committee)' के रूप में संज्ञापित करते हैं।

प्रारूप प्रथम–निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम के प्रथम संगठनात्मक प्रारूप में निम्न बिन्दु उल्लेखनीय हैं–

1. संस्थान का प्रशासनिक अधिकारी अधीक्षक या निरीक्षक निर्देशन हेतु नीति निर्धारण का उत्तरदायित्व प्रधानाचार्य को प्रदान करता है।
2. निर्देशक / परामर्शदाता का सम्बन्ध एक ओर प्रशासनिक श्रेणी से होता है तथा दूसरी ओर शिक्षक और निर्देशन / परामर्श नीति के साथ (सहयोगात्मक श्रेणी के साथ) भी रहता है।
3. निर्देशन / परामर्श नीति निर्धारण का उत्तरदायित्व परामर्शदाता का होता है जो सहयोगात्मक रूप से शिक्षक व समिति दोनों से सम्बन्ध भी रखता है।
4. निर्देशन / परामर्श समिति वैकल्पिक रूप से ही सहयोगी होती है। निर्देशन / परामर्श का मुख्य कार्य परामर्शदाता / निर्देशनकर्त्ता का होता है।

प्रथम–संगठनात्मक प्रारूप को निम्न प्रकार से चित्रित किया जाता है–

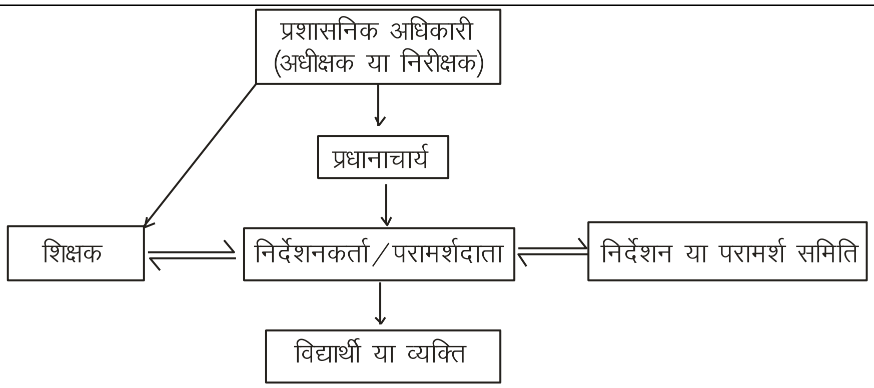

इस संगठनात्मक स्वरूप को प्राथमिक विद्यालय एवं माध्यमिक विद्यालय के सन्दर्भ में अग्र प्रकार चित्रित करते हैं–

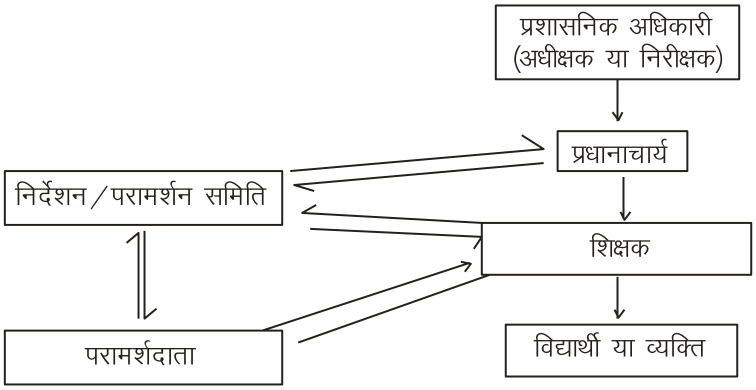

जब प्रथम संगठनात्मक प्रारूप को महाविद्यालय के सन्दर्भ में क्रियान्वित किया जाता है तो उसका चित्र निम्नवत् होगा–

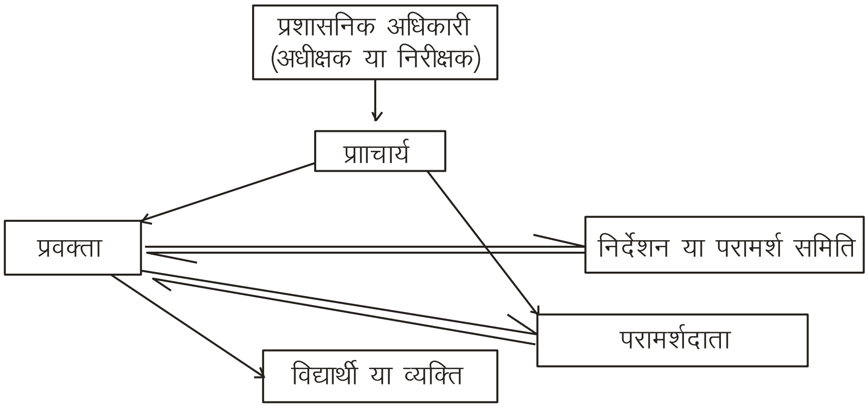

प्रारूप द्वितीय–निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के संगठनात्मक प्रारूप द्वितीय में निम्न बिन्दु उल्लेखनीय हैं–

1. प्रथम तो प्रशासनिक अधिकारी निर्देशन कार्यक्रम का उत्तरदायित्व संस्थान प्रमुख अर्थात् प्राचार्य को ही सौंपता है।
2. प्राचार्य नीति निर्धारण का उत्तरदायित्व एक निर्देशन/परामर्श समिति को सौंपता है तथा यथासम्भव सहयोग भी प्रदान करता है।

3. निर्देशन/परामर्श समिति का सहयोगात्मक सम्बन्ध एक ओर शिक्षक से होता है और दूसरी ओर परामर्शदाता से भी सहयोगात्मक सम्बन्ध रहता है।
4. इस समिति का प्रशासनिक सम्बन्ध प्राचार्य व विद्यार्थी से होता है।
5. निर्देशन/परामर्श क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व शिक्षक व परामर्शदाता दोनों पर रहता है।
6. परामर्शदाता निर्देशन समिति के सदस्यों की अभिवृत्तियों व अभिक्षमताओं के प्रति पूर्ण सक्रिय व संवेदनशील रहता है।

द्वितीय संगठनात्मक प्रारूप को निम्नवत् चित्रित किया जाता है–

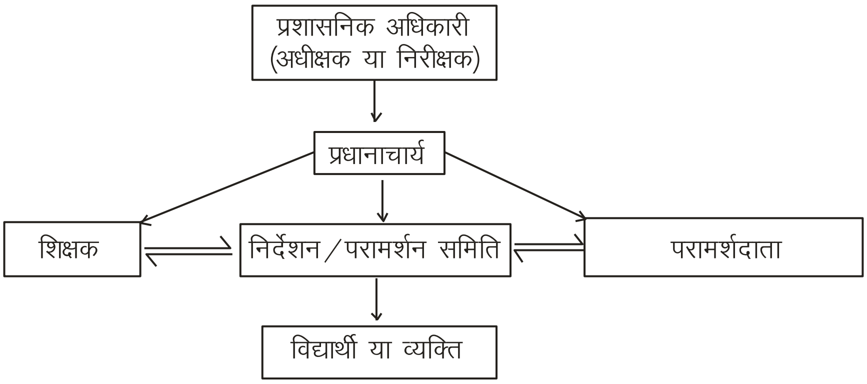

द्वितीय संगठनात्मक प्रारूप को प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के सन्दर्भ में निम्न चित्र के अनुसार प्रशासित किया जाता है–

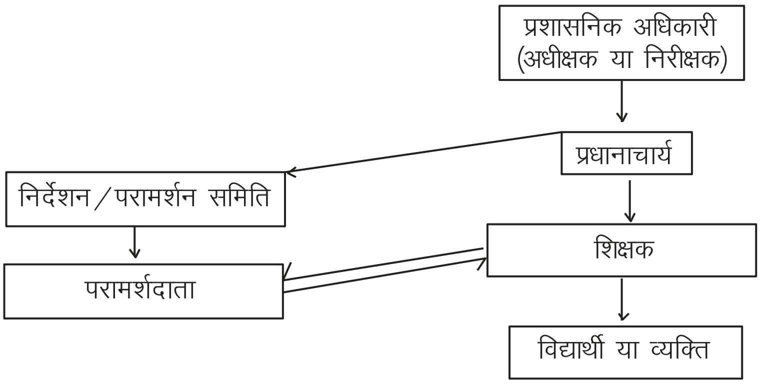

जब द्वितीय संगठनात्मक प्रारूप को महाविद्यालय के सन्दर्भ में निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम नीति में क्रियान्वित किया जाता है तो उसका चित्र निम्नवत् होता है–

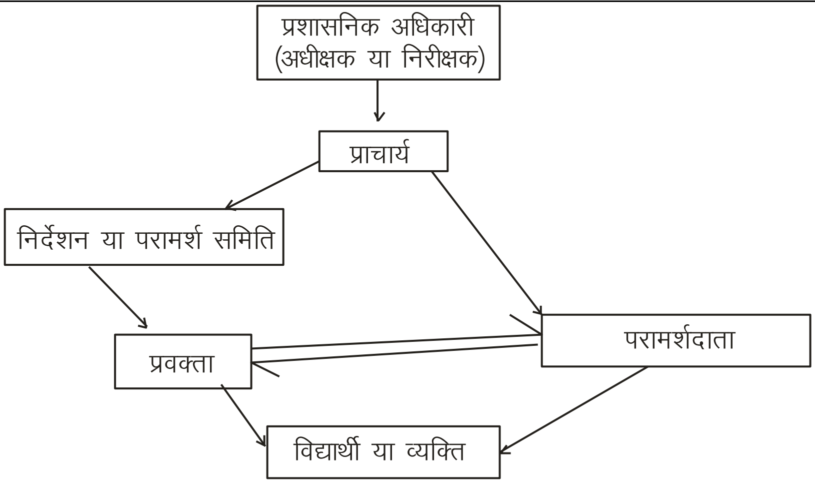

चित्रांकन संकेत–

⟶ का तात्पर्य ''प्रशासनिक सम्बन्ध''

⇌ का तात्पर्य 'सहयोगात्मक सम्बन्ध''

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम में सक्रिय निर्देशन/परामर्श समिति के सन्दर्भ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि निर्देशन/परामर्श समिति में निर्देशन/परामर्श सेवाओं में रुचि व पर्याप्त ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञों से ही बनाई जाती है। कभी–कभी संगठनात्मक प्रारूप द्वितीय में निर्देशन/परामर्श समिति के अतिरिक्त एक निर्देशन/परामर्श परिषद का भी गठन किया जाता है। इस निर्देशन/परामर्श परिषद का मुख्य कार्य शिक्षण संस्थान प्रधान (प्रधानाचार्य/प्राचार्य) और निर्देशन/परामर्श समिति दोनों के साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध में स्थापना करता है।

सामान्यतः प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में पूर्णकालिक परामर्शदाता की सेवाएँ (स्थायी नियुक्ति न होने के कारण) उपलब्ध नहीं हो पाती है। अतः विद्यार्थियों को परामर्श सेवा हेतु कुछ कुशल, योग्य, सक्षम तथा इच्छुक व्यक्तियों की समिति 'निर्देशन समिति' का गठन किया जाता है, जो समय–समय पर विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार उनकी समस्याओं के समाधान हेतु सहयोग प्रदान करती है।

निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन के आधारभूत तथ्य, सिद्धान्त व कार्य–

शिक्षण संस्थानों की सार्थकता होती है जब वह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में प्रयासरत होता है। विद्यालयों या महाविद्यालयों का एकमात्र उद्देश्य मात्र ज्ञान प्रदान करना न होकर निर्देशन/परामर्श जैसी सेवाएँ विद्यार्थियों को उपलब्ध कराना, शिक्षण संस्थानों के मूल उद्देश्यों के अन्तर्गत ही आता है। इसके लिए कुछ ऐसे संगठन का गठन होता है जो निर्देशन/परामर्श जैसे विकास में आवश्यक सेवाएँ देने में समर्थ होता है।

विद्यालय–निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन–विद्यालय में विद्यार्थी कुछ कठिनाइयों व समस्याओं का अनुभव करता है जिसका वह समाधान करना चाहता है और उसके लिए वह सहयोग की भी आशा करता है। विद्यार्थियों की ये समस्याएँ उसकी शैक्षिक

प्रगति को भी प्रभावित करती हैं। इन कठिनाइयों एवं समस्याओं के निराकरण के लिए विद्यालयों में निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन होता है।

संगठन के आधारभूत तथ्य/मुख्य सिद्धान्त–शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य या लक्ष्य व्यक्ति का विद्यार्थी का सर्वांगीण एवं सर्वोत्तम ढंग से विकास करना होता है। अपनी पुस्तक 'गाइडेंस सर्विस' में प्रसिद्ध निर्देशन मनोविज्ञानी हम्फ्री एवं ट्रेक्सलर विद्यालय की निर्देशन/परामर्श सेवा के संगठन के सन्दर्भ में कुछ आधारभूत तथ्य/मुख्य सिद्धान्तों को निम्न रूप में उल्लेख करते हैं।

1. **विद्यालय निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन**–निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण विद्यालयों के स्तर, उनकी आवश्यकताओं तथा शिक्षण संस्थान की मान–मर्यादा व आदर्श को ध्यान में रखकर किया जाता है।
2. **संगठन का स्वरूप**–निर्देशन/परामर्श सेवा में संगठन का स्वरूप संस्थान के उद्देश्यों, आर्थिक संसाधनों, गुण, विशेषताओं, कर्मचारियों की संख्या आदि के साथ–साथ संस्थान के स्तर को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाता है।
3. **संगठन में सरलता**–विद्यालय निर्देशन/परामर्श सेवा का संगठन एवं कार्यक्रम सरल रूप में रखा जाता है। संगठन की जटिलता लक्ष्य प्राप्ति को प्रभावित करती है। यद्यपि यह तो सम्भव है कि किसी कार्यक्रम का जटिल स्वरूप आकर्षित लगे लेकिन उसको क्रियान्वित करना भी एक चुनौती बन जाता है।
4. **कार्य निर्धारण**–निर्देशन/परामर्श सेवा द्वारा जो भी कार्य का लक्ष्य पूर्ण किये जाने होते हैं उनको पहले से ही निर्धारित कर लेते हैं जिससे उनकी पूर्ति हेतु आवश्यक योजना पहले से बनाई जाती है।
5. **सहकर्मियों को निश्चित कार्य सौंपना**–निर्देशन/परामर्श सेवा में लगे सहकर्मियों के निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की भी भूमिका निभानी होती है। उसके बारे में पूरी जानकारी पहले से ही होनी चाहिए। प्रत्येक सहकर्मी की दक्षता व योग्यता को ध्यान में रखते हुए उन्हें कार्य का वितरण कर देना चाहिए।
6. **अधिकार क्षेत्र का निर्धारण**–निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के सहकर्मी को सौंपे गये कार्य योजना के साथ–साथ उनके अधिकार क्षेत्र के बारे में भी उनको जानकारी पहले से ही स्पष्ट रूप से होनी चाहिए, जिससे वे अपनी भूमिका को पूरे कार्यक्रम में भली–भाँति निभा सके। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की सेवा में सहयोगी निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों में दो प्रकार की श्रेणी के सहकर्मी हो सकते हैं, एक पूर्णकालिक तथा दूसरे अंशकालिक सहकर्मी।

निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन के मुख्य कार्य :

संगठन के आधारभूत सिद्धान्तों के आधार पर कहा जाता है कि निर्देशन/परामर्श सेवा के अन्तर्गत आने वाले कार्यों का निश्चय निर्देशन/परामर्श सेवा को संगठित करते समय कर लेना चाहिए। यद्यपि निर्देशन/परामर्श का कार्यक्षेत्र बहुत

व्यापक है, लेकिन शिक्षण संस्थानों से सम्बद्ध जीवन में इसके कुछ विशेष कार्य क्षेत्रों का निम्न प्रकार उल्लेख किया जाता है–

1. निर्देशन/परामर्श सेवा का विशेष कार्य शिक्षण संस्थानों में प्रवेश तथा विद्यालय की जीवनधारा की ओर विद्यार्थियों के साथ–साथ जनसामान्य को भी उन्मुख करना।
2. संस्थान में प्रवेश सम्बन्धी नियम प्रवेश शुल्क परीक्षा आदि को निर्धारित करना भी संगठनों का कार्य होता है।
3. संस्थान के लिए हानिकारक नियम, परम्परा में संशोधन करना।
4. विद्यार्थियों एवं विद्यालयों के अन्य सदस्यों के सन्दर्भ में विस्तृत अभिलेख तैयार करके रखना।
5. विद्यार्थियों का प्रगति विवरण एवं मूल्यांकन सम्बन्धी सूचनाएँ तथा अन्य विवरणों को अभिलेख रूप में सुरक्षित रखना।
6. विद्यार्थियों का स्वास्थ्य सम्बन्धी परीक्षण कराना तथा आवश्यक सुझावों व सावधानियों के बारे में जानकारी उपलब्ध करना, निर्देशन/परामर्श सेवा का ही अंग है। इसका भी शिविर आदि के माध्यम से निर्वहन करना चाहिए।
7. विद्यार्थियों में सामाजिक व पारिवारिक सामंजस्य को विकसित करके उनकी असमायोजन या कुसमायोजन जैसी समस्याओं का निराकरण करना।
8. निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों को विद्यार्थियों के संवेगात्मक पक्ष को भी निर्देशन/परामर्श देते समय पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिए।
9. प्रशासन स्तरीय कठिनाइयों, छात्रावास सम्बन्धी व्यवस्थाओं को भी निर्देशन/परामर्श सेवा में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
10. पाठ्येत्तर क्रियाकलापों में विद्यार्थियों को प्रेरित करना तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं व अभिरुचियों के अनुकूल खेलकूद, भाषण सम्मेलन तथा प्रतियोगिताओं का आयोजन करना भी व्यक्तित्व का विकास का एक आवश्यक पहलू मानकर निर्देशन/परामर्श सेवा में जोड़ना चाहिए।
11. शिक्षण सम्बन्धी होने वाली कमियाँ, दोष तथा उनके कारणों का पता लगाकर उनका निराकरण व विश्लेषण करना।
12. आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों के लिए निदानात्मक शिक्षण–प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करना, निर्देशन सेवा की सार्थकता के लिए आवश्यक हो जाता है।
13. आर्थिक रूप से वंचन झेल रहे विद्यार्थियों के लिए आर्थिक स्रोतों की सूचनाएँ देना तथा उन विद्यार्थियों को अंशकालिक नियोजन तथा सहायता प्रदान करना।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में मुख्य रूप से तीन संगठनों का उपयोग किया जा सकता है। इन तीनों संगठनों में से प्रशासनिक अधिकारी

विद्यार्थियों व संस्थान की आवश्यकता या निर्देशन/परामर्श लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए किसी एक संगठन प्रारूपता चयन करके निर्देशन कार्यक्रम का कार्यान्वयन कर सकते हैं। इन संगठनों के तीन प्रकार निम्नवत् हो सकते हैं–

1. **रेखा संगठन (Line Organization)**–इस संगठन में अधिकार क्रम का स्तरीकरण रहता है जो प्रशासनिक अधिकारी (निरीक्षक या अधीक्षक) से विद्यार्थी (नीचे) की ओर चलता है। अतः इस प्रकार के संगठन में अधिकार की दृष्टि से प्रशासनिक अधिकारी सबसे ऊपर होता है।

2. **कर्मचारी संगठन (Staff Organization)**–इसमें प्रशासनिक अधिकारी सम्बद्ध अधिकारों का कर्मचारियों तथा शीर्ष अधिकारियों को उनके उत्तरदायित्व के रूप में उनको सौंपता है। इस संगठन प्रारूप का एक बड़ा लक्ष्य होता है कि प्रत्येक वर्ग के कर्मचारी अपने–अपने कार्यों में विशेष रूप से कुशलता प्राप्त कर लेते हैं।

3. **सेवा–कर्मचारी मिश्रित (Line & Staff Combined Organization)**–संगठन का यह प्रारूप रेखा संगठन तथा कर्मचारी संगठन का मिश्रित रूप होता है। अतः इसमें दोनों ही संगठनों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं।

4.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। किसी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन निम्न समस्याओं का समाधान या प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए किया जाता है–

1. किसी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का स्वरूप कैसा हो, जिससे कि निर्देशन/परामर्श लक्ष्य सिद्धि अधिकतम हो सके?

2. किसी संस्थान में संचालित निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का वर्तमान स्वरूप क्या पर्याप्त उपयुक्त या उद्देश्य प्राप्ति के अनुकूल है?

3. निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम में क्या संशोधन और परिमार्जन की आवश्यकता है, इत्यादि।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के अन्तर्गत दी जाने वाली सेवाओं को लाभार्थियों तक पहुँचाने के लिए अनेक लक्ष्य व उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। इन निर्देशन सेवाओं को प्रदान करते समय अनेक प्रविधियों का भी उपयोग किया जाता है। उपर्युक्त प्रश्नों का निराकरण अनेक विविधताओं के सन्दर्भ में करना कुछ कठिन होता है।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में स्वीकार्य दो प्रारूप

किसी संस्थान में सक्रिय निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदत्त सेवाओं की गुणवत्ता का मूल्यांकन, इसे तुलनात्मक मूल्यांकन भी कहा जा सकता है। इसमें	मूल्यांकन का दूसरा प्रकार विशिष्ट मूल्यांकन होता है। इसके अन्तर्गत कार्यक्रम विशेष के परामर्शियों पर पड़ने वाले प्रभाव तथा उन्हें प्राप्त होने वाले

विभिन्न कार्यक्रमों की तुलना करते हुए यह जानने का प्रयास करते हैं कि कौन–सा कार्यक्रम अधिक उपयुक्त है।	लाभों के साथ–साथ जीवन लक्ष्यों की सिद्धि मार्ग में प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है।

निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन के प्रमुख सोपान :

निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि जिन लोगों के लिए निर्देशन/परामर्श सेवा कार्यक्रम का आयोजन या क्रियान्वयन किया जा रहा है उनके लिए इन निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम (सेवा) का कितना महत्व है? कितनी उपयोगी सिद्ध हो रही है या कितना मूल्य या कितनी सार्थकता है? अतः किसी विद्यालय/कॉलेज में क्रियान्वित निर्देशन/परामर्श सेवा कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि विद्यार्थियों के लिए इसका क्या महत्व है? तथा उस कार्यक्रम में उनको कितना लाभ प्राप्त हो रहा है? इस निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन की प्रक्रिया में मुख्य रूप से निम्न चरणों का अनुसरण किया जाता है–

1. **सर्वप्रथम कार्यक्रम के उद्देश्यों का वर्णन करना** : इसमें निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाता है। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के सहकर्मियों को भी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के उद्देश्यों को समझना तथा स्वीकार करना चाहिए। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के निर्धारित किये गये लक्ष्य तभी प्राप्त हो सकते हैं।

2. **निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों का मूल्यांकन करना :** निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों की स्थिति का मूल्यांकन किया जाना भी आवश्यक होता है। यथा–निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों की योग्यता, क्षमता, प्रशिक्षण, अनुभव, उनकी संख्या, अभिरुचियाँ, समर्पण तथा व्यक्तित्व की अन्य विशेषताएँ भी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर प्रभाव डालती हैं। अतः इन विशेषताओं या लक्ष्यों का भी मूल्यांकन करना चाहिए।

3. **संसाधनों का अवलोकन/आँकलन :** निर्देशन/परामर्श की लक्ष्य प्राप्ति में उपलब्ध संसाधनों/सुविधाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः भौतिक संसाधन या सुविधाएँ परीक्षण (टेस्ट व उपकरण आदि) कम्प्यूटर जैसे अभिलेख तैयार करने वाले उपकरण आदि की उपलब्धता का मूल्यांकन किया जाता है।

4. **संकलित प्रदत्त का विश्लेषण** : विद्यार्थी या परामर्शी के सन्दर्भ में शिक्षकों, पालकों (माता–पिता), परिजनों, पड़ोसियों (सेवायोजकों व मित्रादि) से प्राप्त होने वाली सूचनाओं या अभिलेखों से प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण किया जाता है।

5. **अभिलेखों की सार्थकता का अवलोकन** : प्रत्येक निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम सम्बन्धित विद्यार्थियों, व्यक्तियों व निर्देशनार्थियों/परामर्शियों के सन्दर्भ में अभिलेख तैयार करता है। अतः कार्यक्रम मूल्यांकन में अभिलेखों की सार्थकता की भी जाँच की जानी चाहिए क्योंकि कभी–कभी ऐसा भी होते देखा गया है कि उपयोगी लगने

वाले अभिलेख निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के क्रियान्वयन में पूर्णतः सार्थक या उपयोगी न हों।

6. **सहयोगात्मक सम्बन्धों का विश्लेषण** : निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की लक्ष्य प्राप्ति के लिए माता–पिता, अनुभवी व्यक्तियों, सेवायोजकों के पारस्परिक सहयोगात्मक सम्बन्धों की विशेष आवश्यकता पड़ती है। अतः निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन करते समय यह भी विचार किया जाता है कि निर्देशनकारियों को विभिन्न स्रोतों द्वारा सहयोगात्मक सम्बन्धों के सन्दर्भ में कैसी व्यवस्था की गई है।

7. **निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की लक्ष्य प्राप्ति का मूल्यांकन**–जिनके लिए निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम आयोजित किया गया है उनके दृष्टिकोण से लक्ष्य प्राप्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक वह है जिसका आँकलन किया जाता है। यथा–शिक्षण संस्थान में अनुशासनहीनता में कमी, अनुपस्थिति में गिरावट, शैक्षिक व प्रशिक्षणात्मक कार्यक्रमों की रुचि में वृद्धि, परिवार–समाज व संगठन में समायोजनात्मक सुधार आदि का मूल्यांकन करना, निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की सार्थकता मूल्यांकन के मुख्य बिन्दु होते हैं।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की विभाएँ :

निर्देशन/परामर्श सेवा कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए अनेक विधियों का उपयोग किया जाता है जिनके आधार पर ही निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का अन्य संस्थाओं में विस्तारण किया जाता है। इसी के आधार पर उसके वर्तमान स्वरूप को बनाये रखने अथवा उसमें कुछ सुधार या बदलाव लाने के लिए विचार किये जाते हैं, निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की विभाओं को निम्न चित्र से प्रकट किया जा रहा है–

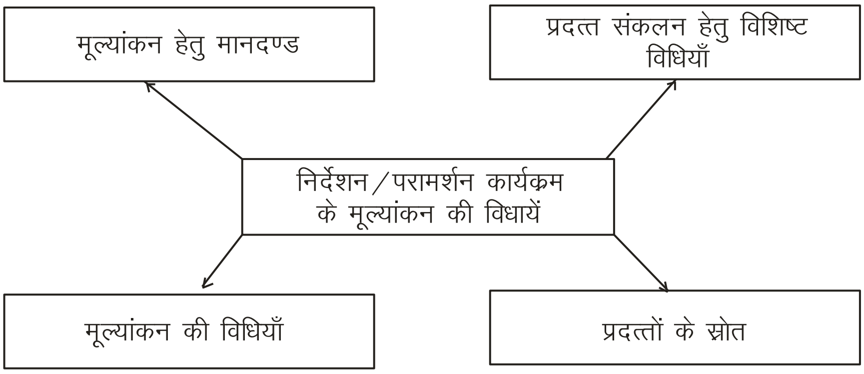

1. **मूल्यांकन हेतु मानदण्ड** : निर्देशन/परामर्श मनोवैज्ञानिकों ने मूल्यांकन कार्य हेतु कुछ मानदण्डों का उपयोग किया है। यदि कोई निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम सेवा तथा सामग्री व उपकरण आदि लम्बे समय से अस्तित्व में है तो निर्देशन कार्यक्रम की सफलता या सार्थकता का प्रतीक माना जाता है। अर्थात् यदि निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम उपयुक्त (आवश्यकतानुसार) तथा लाभकारी नहीं होगा तो उसका अस्तित्व शेष नहीं रह जायेगा। यद्यपि कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं है क्योंकि किसी कार्यक्रम का अस्तित्व उसके महत्वपूर्ण सकारात्मक योगदान के बिना भी बना रह

सकता है। विद्यार्थियों की योग्यताओं में वृद्धि को भी मानदण्ड रूप में स्वीकार किया जाता है।

निर्देशन/परामर्श आन्दोलन के प्रारम्भिक समय में अनेक मानदण्डों को मनोवैज्ञानिकों ने निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों एवं निर्देशन/परामर्श सेवाओं के मूल्यांकन हेतु प्रयुक्त किया है। क्रो एवं क्रो (1960) संचालित निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के आत्म मूल्यांकन हेतु मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं पर विशेष बल देते हैं। यही बिन्दु निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के परिणामों या उनकी सार्थकता पर विशेष बल देते हैं–

(i) विद्यार्थियों की निर्देशन/परामर्श सेवाओं के प्रति अभिवृद्धि।

(ii) उनकी आगामी शिक्षा व्यवस्था या व्यवसाय में सफलता।

(iii) उनकी असफलता तथा विद्यालय/महाविद्यालय छोड़ने के कारण।

(iv) विद्यार्थी–मूल्यांकन कार्यक्रम की उपयुक्तता।

(v) विद्यार्थी की शैक्षिक आवश्यकताओं के साथ पाठ्यक्रम का सम्बन्ध।

(vi) परामर्श की व्यवस्था की पर्याप्तता व उपयुक्तता।

(vii) निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के साथ सामुदायिक सहयोग का स्वरूप एवं मात्रा।

(viii) शिक्षण संस्थान में उपलब्ध निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के प्रति माता–पिता (संरक्षकों) की अभिवृत्तियाँ व सहयोग।

2. **मूल्यांकन की विधियाँ :** मूल्यांकन के लिए मुख्यतः निम्न तीन विधियों का उपयोग किया जाता है–

(i) प्रयोगात्मक विधि

(ii) सर्वेक्षण विधि

(iii) व्यक्ति अध्ययन विधि

(i) **प्रयोगात्मक विधि**–इस विधि से निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए निर्देशन/परामर्श सेवा के लिए आरम्भ से ही योजना बनाई जाती है। इसमें व्यक्तियों के एक या अधिक समूहों पर एक या अनेक चरों के प्रभाव को देखा जाता है या परीक्षण किया जाता है। एक समूह पूर्व पश्चात् अभिकल्प में प्रारम्भिक चरों को नियंत्रित करने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। इन समस्याओं का समाधान काफी हद तक 'द्विसमेलित समूह अभिकल्प' द्वारा किया जाता है। निर्देशन/परामर्श से सम्बन्धित स्वतंत्र चरों के प्रभाव का मूल्यांकन अत्यन्त विश्वासपूर्वक किया जाता है।

(ii) **सर्वेक्षण विधि**—सर्वेक्षण विधि में निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम मूल्यांकन करने के लिए निर्देशार्थियों/परामर्शियों या विद्यार्थियों के व्यवहार तथा समायोजन पर निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के प्रभाव से सम्बन्धित प्रदत्तों का संकलन तथा विश्लेषण किया जाता है। इस विधि का सम्बन्ध समूह की संस्थिति के अध्ययन से होता है। अतः सर्वेक्षण मूल्यांकन द्वारा ''एक बिन्दु पर सर्वेक्षण प्रणाली द्वारा समूह की दशा का अध्ययन'' करके पुनः दूसरे समय पर सर्वेक्षण मूल्यांकन द्वारा समूह की दशा में आने वाले परिवर्तन का आँकलन किया जाता है। इस प्रकार निर्देशन/परामर्श के प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है।

(iii) **व्यक्ति अध्ययन विधि**—निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन की प्रयोगात्मक तथा सर्वेक्षण विधियों की परिसीमाओं को देखते हुए मनोवैज्ञानिकों ने निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन की यह तीसरी विधि 'व्यक्ति अध्ययन विधि' को प्रतिपादित किया। व्यक्ति अध्ययन विधि के अन्तर्गत निर्देशन/परामर्श समिति तथा निर्देशनकर्त्ता/परामर्शदाता निर्देशनार्थी/परामर्शी का लम्बे समय तक विस्तृत अध्ययन करते हैं तथा उसके आधार पर ही निष्पक्ष निर्णय लेते हैं और निर्देशन/परामर्श सेवा के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जाता है। दीर्घकालिक व्यक्ति अध्ययन द्वारा उस व्यक्ति की निर्देशनार्थी के सन्दर्भ में विस्तृत आँकड़े प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की सार्थकता का मूल्यांकन सफलता से किया जाता है।

3. **प्रदत्तों के स्रोत** : निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु अनेक आवश्यक सूचनाओं को संकलित करने की आवश्यकता होती है व्यक्ति या निर्देशनार्थी/परामर्शी से सम्बन्धित से विविध सूचनाएँ निम्न अध्ययनों से प्राप्त की जाती हैं—

(i) माता—पिता (पालक) या संरक्षक से,

(ii) शिक्षकों एवं विद्यालय अभिलेख से,

(iii) मित्र व सहपाठियों से,

(iv) निर्देशनकर्त्ता/परामर्शदाता तथा निर्देशन सहकर्मियों से इत्यादि।

4. **प्रदत्त संकलन हेतु विशिष्ट प्रविधियाँ** : निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए आवश्यक सूचनाओं को संकलित करने के लिए विविध प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है। इन प्रविधियों में प्रश्नावली प्रविधि सर्वाधिक उपयोग होने वाली प्रविधि है। प्रश्नावली प्रविधि का अनुवर्ती अध्ययनों में सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। एरिक्सन व स्मिथ ने साक्षात्कार प्रविधि को प्रदत्त संकलन हेतु (निर्देशन/परामर्श के सन्दर्भ में) सबसे उत्तम माना है। साक्षात्कार प्रविधि का उपयोग प्रश्नावली प्रविधि के अपेक्षा कुछ सुगम होता है। प्रश्नावली प्रविधि के प्रदत्त संकलन करने में साक्षात्कार की अपेक्षा अधिक कठिनाइयाँ/समस्याएँ आती हैं।

4.4 परामर्श में नैतिकता या नीति संहिता

प्रश्न यह है कि परामर्श में नैतिकता का नीति संहिता की आवश्यकता क्यों है? इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं–

1. प्रथम कारण यह है कि नीति संहिता के बना समान रुचियों वाले लोगों के एक समूह को संव्यावसायिक संगठन नहीं माना जा सकता है।
2. Allen (1986) ने कहा, नीतिशास्त्र केवल सामान्य स्तर पर किसी संगठन के संव्यवसायीकरण में ही सहायता नहीं देता है, बल्कि इसे इस प्रकार तैयार किया जाता है कि एक संव्यवसायिक स्तर पर सदस्यों के व्यावसायिक व्यवहार हेतु कुछ दिशा निर्देशों को भी प्रदान किया जाये।

Von Hoose and Kottler (1985) ने नीति संहिता के अस्तित्व के लिए तीन कारण बताये हैं–

1. नैतिक मानक संव्यवसाय की सरकार से रक्षा करते हैं। इससे संव्यवसाय को विधान द्वारा नियंत्रित होने के स्थान पर स्वयं से ही विनियमित होने तथा सफलतातापूर्वक कार्य करने की अनुमति प्राप्त हो जाती है।
2. नैतिक मानक आन्तरिक असहमति तथा कलह को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं, इस प्रकार से संव्यवसाय के अन्दर स्थिरता को प्रोन्नत करते हैं।
3. नैतिक मानक प्रैकटिशनर की जनता से सुरक्षा करते हैं। विशेष रूप से अनाचार से सम्बन्धित वादों में इनके द्वारा बचाव करने में सहायता मिलती है। यदि संव्यवसायिक का व्यवहार नैतिक मार्ग–निर्देशों के अनुसार ही है तो ऐसे व्यवहार को स्वीकृत मानकों के साथ अनुपालन करने वाला माना जाता है।

एक बार यदि हम यह समझ लें कि अनैतिक व्यवहार क्या है तो फिर नीति संहिता के महत्व को समझना सरल हो जाता है। अनैतिक व्यवहार के बहुत रूप हो सकते हैं, परन्तु सर्वाधिक प्रचलित रूप ही यहाँ दिया जा रहा है।

Levenson (1986), Pops and Vetter (1992) तथा Swanson (1983) इसके स्रोत हैं–

1. गोपनीयता का अतिक्रमण।
2. अपनी संव्यवसायिक दक्षता से आगे बढ़ना।
3. उपेक्षित प्रैक्टिस।
4. विशेषता न होने पर भी उसका दावा करना।
5. किसी सेवार्थी पर अपने मूल्यों को अधिरोपित करना।
6. किसी सेवार्थी में निर्भरता उत्पन्न करना।
7. किसी सेवार्थी के साथ लैंगिक क्रियाकलाप।

8. परस्पर विरोधी हित, जैसे दोहरे सम्बन्ध।
9. विवादास्पद वित्तीय प्रबन्ध, जैसे अधिक शुल्क लेना।
10. अनुचित विज्ञापन।

सामान्यतः नैतिक मानक आदर्शात्मक होते हैं तथा इसलिए अधिकतर दशाओं में दिये गये मानकों का पालन करना व्यवहारिक रूप से असम्भव हो जाता है क्योंकि ये मानक विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर नहीं देते हैं।

उदाहरण के लिए, जब एक सेवार्थी एक प्रत्यक्ष प्रश्न पूछता है–''क्या आपके विचार में मैं बहुत बुद्धिमान हूँ?'' इसका उत्तर यह है कि, ''सेवार्थी औसत बुद्धि वाला है।''

इस प्रकार की किसी परिस्थिति में परामर्शदों को एक अपरिहार्य चयन का सामना करना पड़ता है तथा उन्हें सच्चाई बतानी होती है। परन्तु सेवार्थी इस सच्चाई का सामना करने के लिए तैयार नहीं भी हो सकता है। इसीलिए किसी नैतिक मानकों की संहिता में बहुत सी विशिष्ट सीमाएँ हो सकती हैं। Beymer (1971), Talbutt (1988\1) ने कुछ सीमाओं का वर्णन इस प्रकार किया है–

1. कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनका समाधान नीति संहिता के द्वारा नहीं हो सकता है।
2. नीति संहिता में सुधार लाने में कठिनाइयाँ हैं।
3. संहिता द्वारा निरूपित मानकों में द्वन्द्व भी हो सकता है।
4. कुछ ऐसे कानूनी मुद्दे हो सकते हैं जो संहिता में सम्मिलित न हों।
5. नीति संहिताएँ ऐतिहासिक अभिलेख होते हैं। अतः एक समय में जो व्यवहारिक रूप से स्वीकार्य हैं, बाद के समय या आने वाले समय में उसे अनैतिक माना जा सकता है।
6. कभी–कभी नैतिक तथा कानूनी संहिता के मध्य द्वन्द्व की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है।
7. नीति संहिता में अन्तः सांस्कृतिक मुद्दे सम्मिलित नहीं होते हैं।
8. नीति संहिता के अन्दर हर एक सम्भव परिस्थिति सम्मिलित नहीं होती है।
9. किसी नैतिक विवाद में सम्मिलित समस्त पक्षों के हित को एक साथ क्रमबद्ध रूप से लाना बहुधा कठिन होता है।
10. नवीन परिस्थिति में क्या किया जाये? परामर्शद को यह निर्णय लेने में सहायता देने हेतु नीति संहिताएँ अग्रोन्मुखी अभिलेख नहीं होते हैं।

यद्यपि नीति संहिताएँ लाभदायक तथा अनेकों प्रकार से सफल भी हैं, परन्तु निश्चित रूप से उनकी कुछ सीमाएँ भी हैं। परामर्शदों को ज्ञात होना चाहिए कि इन

अभिलेखों पर विचार करते समय वे सदैव उस दिशा–निर्देश को प्राप्त नहीं कर सकेंगे, जिसकी उनको आवश्यकता होती है। परामर्शद सेवार्थियों को परामर्श प्रदान करते समय भ्रमित हो जाते हैं क्योंकि विभिन्न संगठनों ने अलग–अलग नीति संहिताएँ दी हैं। इसलिए परामर्शदों को परामर्श देते समय सही एवं गलत के बारे में स्वयं ही निर्णय लेना चाहिए तथा एक आदर्शक नीति संहिता को भी ध्यान में रखना चाहिए।

क्या नैतिक रूप से कार्य करने हेतु किसी प्रकार के दिशा–निर्देशन हैं? इसका उत्तर हाँ है। परन्तु भारतवर्ष में नहीं है। अतः कोई भी भारतीय विद्वान इसका उत्तर हाँ में नहीं दे सकता है। अलग–अलग मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न दिशा–निर्देश प्रस्तुत किये तथा इनमें से अधिकतर लगभग समान हैं।

Stadler (1986) ने परामर्श की गतिविधियों तथा परामर्शदों द्वारा लिए जाने वाले नैतिक निर्णयों से सम्बन्धित चार नैतिक सिद्धान्त दिये हैं–

1. **परोपकार**–इसका तात्पर्य है, दूसरों की भलाई के लिए कार्य करना तथा उसे हानि से बचाना।
2. **अपकार न करना**–इसका तात्पर्य है दूसरों को कष्ट या दुःख न पहुँचाना।
3. **स्वायत्तता–**इसका तात्पर्य है चयन की स्वतंत्रता तथा आत्मनिर्धारण का सम्मान करना।
4. **न्याय**–निष्पक्षता।

अतः उपर्युक्त सिद्धान्तों में सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया के दौरान परामर्शद को सतर्कता के साथ निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। तत्पश्चात् यह ज्ञात किया जाता है कि परामर्शद ने नैतिक रूप से जिम्मेदारी के साथ कार्य किया है या नहीं।

इसके लिए Swanson (1983) ने चार दिशा–निर्देश बताये हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. व्यक्तिगत संव्यवसायिक ईमानदारी बनाये रखना।
2. सेवार्थियों के सर्वोत्तम हित में कार्य करना।
3. व्यक्तिगत लाभ का विचार लाये बिना कार्य करना।
4. इस कथन को न्यायोचित ठहराना कि किसी कार्य के प्रति दी गयी वर्तमान संव्यवसायिक स्थिति में लिया गया निर्णय ही सबसे उत्तम है।

परन्तु उपर्युक्त कथनों में से अन्तिम कथन समस्या उत्पन्न करने वाला है क्योंकि यदि वर्तमान स्थिति नैतिक नहीं है, तब उसके पश्चात् क्या होगा?

नैतिक व्यवहार उस विन्यास में जिसमें किसी व्यक्ति तथा उसके सहयोगियों द्वारा किया जाता है, के अन्दर प्रचलित मनोविकृतियों द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है। नैतिकता को परामर्शद के निर्णय पर छोड़ देना चाहिए, क्योंकि परामर्शद ही सबसे

अच्छा निर्णायक है। यदि परामर्शद संव्यवसायिक रूप से प्रशिक्षित हो तथा उसके अन्दर परामर्श हेतु आवश्यक समस्त गुण हों तो वह एक अच्छा निर्णायक हो सकता है।

4.5 सारांश

निर्देशन/परामर्श संगठन करते समय कुछ बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान रखते हैं–निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों का मौलिक उत्तरदायित्व निश्चित व्यक्तियों/संस्थाओं पर स्थापित/आधारित हो। निर्देशक, परामर्शी, निरीक्षक, अधीक्षक, प्रधानाचार्य व शिक्षक सभी अपने–अपने कर्त्तव्यों/उत्तरदायित्वों को ठीक से समझें और उनका अनुपालन करें। सबका आपस में सहयोगात्मक सम्बन्ध हो। उद्देश्य पूर्ति हेतु निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम सही ढंग से संगठित तथा प्रशासित हो। निर्देशन/परामर्श सेवा के अपने कुछ सिद्धान्त भी होते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन ऊपर किया गया है तथा उसका मॉडल भी प्रस्तुत किया गया है।

निर्देशन/परामर्श का मूल्यांकन के कुछ चरण होते हैं। इनमें प्रमुख हैं–कार्यक्रम के उद्देश्यों का वर्णन करना, परामर्श/निर्देशन सहकर्मियों का मूल्यांकन करना, संसाधनों का आँकलन, संकलित प्रदत्त का विश्लेषण, अभिलेखों की सार्थकता का अवलोकन, सहयोगात्मक सम्बन्धों का विश्लेषण, निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की लक्ष्य प्राप्ति का मूल्यांकन।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए प्रमुख रूप से प्रयोगात्मक विधि, सर्वेक्षण विधि एवं व्यक्ति अध्ययन विधि का उपयोग करते हैं।

परामर्श एक नैतिक उद्यम है तथा परामर्श का सबसे सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त गोपनीयता को बनाये रखने का है तथा सेवार्थी के हित को ध्यान में रखते हुए कार्य करना है। अतः परामर्श कार्यक्रम के लिए एक नीति संहिता का होना आवश्यक है।

4.6 शब्दावली

निर्देशन परिषद : निर्देशन/परामर्श परिषद का मुख्य कार्य शिक्षण संस्थान प्रधान (प्रधानाचार्य/प्राचार्य) और निर्देशन/परामर्श समिति दोनों के साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध में स्थापना करता है।

रेखा संगठन : इस संगठन में अधिकार क्रम का स्तरीकरण रहता है जो प्रशासनिक अधिकारी से विद्यार्थी की ओर चलता है।

व्यक्ति अध्ययन विधि : इसमें निर्देशन/परामर्श समिति तथा निर्देशनकर्त्ता/परामर्शदाता निर्देशनार्थी/परामर्श प्राप्त करने वाला का लम्बे समय तक विस्तुत अध्ययन करते हैं।

4.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

1. निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के स्वरूप को .... में विभाजित किया जा सकता है।

2. निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में मुख्य रूप से .... का उपयोग किया जाता है।
3. सामान्यतः नैतिक मानक .... होते हैं।

उत्तर–(1) दो श्रेणियों, (2) तीन संगठनों, (3) आदर्शात्मक।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण–2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।
2. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल–बनारसीदास, वाराणसी।
3. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013–14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
5. एस0एन0 शर्मा एवं एम0के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण–2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए–23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।
6. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न :

1. निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम के संगठन का वर्णन कीजिए।
2. निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों का मूल्यांकन कीजिए।
3. परामर्श में नैतिकता या नीति संहिताओं का वर्णन कीजिए।

❖❖❖

इकाई-5 मनोविश्लेषण, मनोगत्यात्मकता, मन: चिकित्सा (Psychoanalysis, Psychodynamics, Psychotherapy)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मनश्चिकित्सा का अर्थ एवम परिभाषा

5.4 मनश्चिकित्सा के उद्देश्य

5.5 मनश्चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ

5.6 मनोविश्लेषण

5.7 मनोविश्लेषण चिकित्सा के उद्देश्य

5.8 मनोविश्लेषण चिकित्सा के चरण

5.8.1 स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था

5.8.2 प्रतिरोध की अवस्था

5.8.3 स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था

5.8.4 मनोविश्लेषण चिकित्सा के गुण

5.8.5 समापन की अवस्था

5.9 मनोविश्लेषण चिकित्सा के गुण

5.10 मनोविश्लेषण चिकित्सा के दोष

5.11 मनोगतिकी (Psychodynamics)

5.12 मनोगतिकी मॉडल के गुण एवं सीमायें

5.13 सारांश

5.14 अभ्यास प्रश्न

5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

5.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.1 प्रस्तावना:

मनोविश्लेषणात्मक या मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा, विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के सिद्धांतों और प्रथाओं पर आधारित है। यह एक चिकित्सीय प्रक्रिया है जो रोगियों को उनकी आंतरिक दुनिया के बारे में जागरूकता बढ़ाने और अतीत और वर्तमान दोनों के रिश्तों पर इसके प्रभाव को समझने में मदद करती है। मनोविश्लेषण का लक्ष्य चेतना में अचेतन या अवचेतन स्तर पर मौजूद है।

5.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- मनोचिकित्सा की प्रकृति को समझ पायेंगे
- मनोचिकित्सा की प्रविधि को समझ पायेंगे ।
- मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के चरण समझ पायेंगे ।
- मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के गुण दोष बता पायेंगे।
- मनोगतिकी को समझ पायेंगे।

5.3 मनश्चिकित्सा का अर्थ एवम परिभाषा

मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करने को मनश्चिकित्सा कहा जाता है। इसे नैदानिक हस्तक्षेप भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपनी व्यवसायी या पेशेवर क्षमता का उपयोग करते हैं और मानसिक या सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति के व्यवहार को बदलने की कोशिश करते है। मनश्चिकित्सा का उपयोग उन मानसिक रोगियों के लिए लाभकारी होता है जो मनः स्नायुविकृति से पीड़ित होते है। इसका उपयोग मनोविक्षिप्ति या मनोविकृति के रोगियों के साथ भी किया जाता है परन्तु ऐसे रोगियों को इसके साथ-साथ औषधि देना भी जरूरी होता है। मनोचिकित्सा जीवन को नियंत्रित करने तथा चुनौती पूर्ण स्थितियों का सामना करने में मदद करती है। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति में अपने कल्याण के प्रति भावना को बढाना होता है। मनोचिकित्सा का उद्देश्य व्यक्तित्व समायोजन प्राप्त करने में रोगी की सहायता करना है। इसमें मनोवैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा व्यक्ति की मानसिक समस्याओं एवं विकृतियों में चिकित्सक तथा रोगी के बीच पारस्परिक क्रिया आयोजित की जाती है जिसमें रोगी अपने विचारों व भावों को व्यक्त करता है। मनोचिकित्सक अनुभवजनित सम्बन्ध निर्माण, संवाद, संचार और व्यवहार पर आधारित तकनीकों की एक विस्तृत श्रंखला का प्रयोग करते हैं, इन तकनीकों की संरचना

ग्राहक या रोगी के मानसिक स्वास्थ अथवा समूह के साथ उसके व्यवहार में सुधार करने वाली होती है, (जैसे परिवार में रोगी का व्यवहार).

रौटर, (1976) के अनुसार, ''मनश्चिकित्सा मनोवैज्ञानिक की एक सुनियोजित क्रिया होती है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की जिन्दगी में ऐसा परिवर्तन लाना होता है जो उसकी जिन्दगी को भीतर से अधिक खुश तथा अधिक संरचनात्मक या दोनों ही बनाता है।

निटजील, वर्नस्टीन एवं मिलिक (1991) के अनुसार, ''मनश्चिकित्सा में कम-से-कम दो व्यक्ति होते है जिसमें एक को मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निबटने की विशेष योग्यता एवं प्रशिक्षण प्राप्त होता है और दूसरा समायोजन मे समस्या का अनुभव करता है और वे दोनों इस समस्या को कम करने के लिए एक विशेष संबंध कायम करने की कोशिश करते है। इस संबंध के अर्न्तगत कई मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है तथा रोगी के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है।''

मनश्चिकित्सा में रोगी तथा चिकित्सक के बीच वार्तालाप होता है जिसके माध्यम से रोगी अपनी सांवेगिक समस्याओं एवं मानसिक चिन्ताओं को अभिव्यक्त करता है। चिकित्सक द्वारा उसे विशेष सहानुभूति, सुझाव एवं सलाह दिया जाता है ताकि उसका आत्म-विश्वास एवं आत्म-सम्मान कायम रह सके। धीरे-धीरे जिससे रोगी की समस्याएँ समाप्त होते चली जाती है और उसमें ठीक ढंग से समायोजन करने की क्षमता फिर से विकसित हो जाती है।

मनश्चिकित्सा निम्न तीन मौलिक तथ्य निहित हैं-

1. सहभागी - मनश्चिकित्सा में दो सहभागी होते है. पहला सहभागी क्लायंट या रोगी होता है। **क्लायंट** वह व्यक्ति होता है जिसमें सांवेगिक या मानसिक अस्थिरता इतनी अधिक बढ जाती है कि उसे अपनी समस्याओ के समाधान के लिये चिकित्सक की मदद लेनी पडती़ है। मनश्चिकित्सा का दूसरा सहभागी **चिकित्सक होता** है। चिकित्सक वह व्यक्ति होता है जो क्लायंट या रोगी को उसकी समस्याओं से निबटने में मदद करता हो।

चिकित्सक के लिए निम्नलिखित व्यवसायिक गुण होने चाहिए-

i. प्रशिक्षित
ii. परानुभूति
iii. ठीक से सुनने की क्षमता
iv. संवेदनशीलता
v. शर्तहीन सम्मान देने की क्षमता
vi. नैतिक वचनबद्धता
vii. गोपनीयता

2. चिकित्सीय संबंध - चिकित्सक तथा क्लायंट के बीच विशेष संबंध होता है, जिसे चिकित्सीय संबंध कहा जाता है। कोरचिन के अनुसार चिकित्सीय संबंध में आसक्ति (लगाव) तथा अनासक्तिक

(अलगाव) का संतुलन होना चाहिए। चिकित्सीय संबंध इस प्रकार के होने चाहिये कि क्लायंट सक्रिय निर्णयकर्ता के रूप में कार्य करता है न कि सहायता पाने वाले निष्क्रिय व्यक्ति के रूप में। एक उत्तम चिकित्सीय संबंध में निम्नलिखित गुण होने चाहिये-

1. चिकित्सक तथा रोगी दोनों ही चिकित्सा को सफल बनाने में व्यक्तिगत प्रयास करना चाहिये।
2. चिकित्सा के दौरान चिकित्सक तथा रोगी दोनों को ही समान दृष्टिकोण रखना चाहिये।
3. चिकित्सक को रोगी के कल्याण को प्राथमिकता देनी चाहिये।

5.4 मनश्चिकित्सा के उद्देश्य

मनोपचार या मनश्चिकित्सा के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है-

1) रोगी के अभिप्रेरण व साहसशक्ति को बढाना, ताकि वो सही व्यवहार कर सके।

2) भावों की अभिव्यक्ति द्वारा सांवेगिक समस्याओं को कम करने में मदद करना।

3) अपनी आदतों को बदलने में मदद करना।

4) रोगी के आन्तरिक संघर्षो को एवं व्यक्तिगत तनाव को कम करना।

5) व्यर्थ के कार्यो एवं लक्ष्यों से उसके मन को हटाकर उसको अपनी सामर्थ्य पहचानने में सहायता करना।

6) रोगी को अपने वातावरण की वास्तविकताओं के साथ अच्छी तरह समायोजन करने में सहयोग प्रदान करना।

7) शारीरिक अवस्थाओं में परिवर्तन करना

8) रोगी में अनुपयुक्त व्यवहार को बढ़ाने वाले कारकों को दूर करना।

9) रोगी के सामाजिक वातावरण को परिवर्तित करना।

10) चेतन की वर्तमान अवस्था को परिवर्तित करना।

वर्तमान में मनश्चिकित्सा का प्रयोग मनोवज्ञानिकों तथा अन्य लोगों द्वारा विभिन्न रूपों में किया जा रहा है। इसका प्रयोग व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों रूपों में किया जा रहा है। मनोचिकित्सा का कई प्रकार हैं – मनोगतिक मनोचिकित्सा, संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा (CBT), समूह चिकित्सा एवम युग्म चिकित्सा । सबसे पहले जिस व्यवस्थित चिकित्सा जिसने मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला वह थी फ्रायड द्वारा विकसित मनोविश्लेषण ।

5.5 मनश्चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ

मनोपचार या मनश्चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ इस प्रकार हैं -

a) सूझ उत्पन्न करना - इस प्रविधि में रोगी में **सूझ उत्पन्न करने के लिये** आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-ज्ञान विकसित करने की कोशिश की जाती है। इसमें अचेतन प्रभावों का मूल रूप से विश्लेषण किया जाता है। चिकित्सक रोगी को ये समझाया जाता है कि वे क्यों इस तरह का व्यवहार करते हैं। यदि वे ऐसा समझ जाते हैं तो इससे नये व्यवहार की उत्पत्ति उसमें होती है जिसे सूझ कहा जाता हैं।

b) **सांवेगिक अशांति को कम करना -** मनश्चिकित्सा में रोगी की संवेगों की अस्थिरता को बहुत कम कर दिया जाता है ताकि वह चिकित्सा में आगे ठीक ढंग से सहयोग कर सके तथा अपने व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करें। जब रोगी यह समझता है कि चिकित्सक उसका एक व्यक्तिगत दोस्त है जिस पर भरोसा किया जा सकता है, तो उसमें स्वयं ही सांवेगिक स्थिरता उत्पन्न होती है।

c) विरेचन को प्रोत्साहित करना -चिकित्सक की उपस्थिति में रोगी को उसके संवेगों, भावों आदि को खुलकर व्यक्त करने के लिए कहा जाता है। इस प्रक्रिया को विरेचन कहा जाता है। इस तरह से विरेचन की प्रक्रिया द्वारा कुछ वैसे दबे हुए संवेग की अभिव्यक्ति होती है जिसे स्वयं रोगी बहुत समय पहले से नहीं जानता था। चिकित्सक ऐसे संवेगों को अभिव्यक्त करने में रोगी को भरपूर प्रोत्साहन देता है।

d) नयी सूचना देना -मनश्चिकित्सा का स्वरूप शैक्षिक होता है। चिकित्सक रोगी को कुछ नयी-नयी सूचनाओं को देता है चिकित्सक कभी कभी रोगी को उसकी समस्या से सम्बंधित कोई विशेष क्षेत्र या विषय पढने को देता है ताकि रोगी के वर्तमान व्यवहार में परिवर्तन किया जा सके।

e) रोगी में उम्मीद एवं विश्वास विकसित करना - अन्त में मनश्चिकित्सा से रोगी में परिवर्तन के लिए विश्वास तथा उम्मीद उत्पन्न हो जाती है। अपने विवेक द्वारा चिकित्सक हर तरह से परिस्थिति को इस ढंग से मोड़ते है कि रोगी में यह विश्वास उत्पन्न हो जाए कि उसे मदद की जा रही है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार में धनात्मक परिवर्तन होने लगते है तथा उनकी सांवेगिक समस्याएँ कम हो जाती है।

5.6 मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का श्रेय सिग्मंड फ्रायड को जाता है जिन्हें मनोविज्ञान के पिता और मनोविश्लेषण का संस्थापक माना जाता है यह मनोविश्लेषण सिद्धांतों पर आधारित उपचार का एक प्रकार है, यह चिकित्सा इस बात की जांच करती है कि कैसे अचेतन दिमाग विचारों और व्यवहार को प्रभावित करता है।

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का प्रयोग प्रारंभिक बचपन के अनुभवों को देखने के लिए किया जाता है कि क्या इन घटनाओं ने व्यक्ति के जीवन को प्रभावित किया है, या संभवतः वर्तमान चिंताओं में योगदान दिया

है। इस प्रकार की चिकित्सा को दीर्घकालिक विकल्प माना जाता है और इस प्रकार की चिकित्सा में चिंता की गहराई के आधार पर सप्ताह, महीनों या साल भी लग सकते हैं।

कई अन्य चिकित्सा प्रकारों से अलग होने पर, मनोविश्लेषक चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्तित्व और भावनात्मक विकास में गहरे बैठे परिवर्तन करना है।

मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा

मनोपचार की सबसे पुरानी चिकित्सा विधि है। फायड को मनश्चिकित्सा का संस्थापक कहा जाता है। फ्रायड ने अपने रोगियों को गहन निरीक्षण किया। इस निरीक्षण के आधार पर उन्होंने मानव संरचना, मनोविकृति के स्वरूप तथा मनोवैज्ञानिक उपचार के बारे में बहुत सी उपकल्पनायें बनाई। उन्होंने अपने इस प्रयास के द्वारा मनोविश्लेषण को मनोपचार की एक महत्त्वपूर्ण प्रविधि के रूप में विकसित किया। इसके सन्दर्भ में 1990 में उसकी पुस्तक ‘‘**दी इन्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम**‘‘ प्रकाशित हुई।

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को अपने आप को उत्तम ढंग से समझने में मदद करने से होता है ताकि वह रोगी पहले से अधिक समायोजी ढंग से सोच सके तथा व्यवहार कर सके। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि जब रोगी यह देख पाता है कि कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करने का क्या वास्तविक कारण है (जो प्रायः अचेतन में होते है) तथा जब वे यह देखते है कि वे कारण बहुत ठोस एवं वैध नहीं है, तो वे अपने आप कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करना बंद कर देते है। इस तरह से रोगी को लक्षण अपने आप दूर हो जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मानव व्यक्तित्व का केन्द्रीय आधार बिन्दु इदम या इड है। इसका मूल स्वभाव **काम (सेक्स)** सम्बन्धी इच्छाओं तथा आवेशों को पूरा करना है। यह सुखवादी सिद्धान्त पर कार्य करता है अर्थात् केवल खुशी चाहता है। यह व्यक्ति के व्यवहार को अचेतन रूप से अभिप्रेरित करता है।

जैसे शिशु बड़ा होता जाता है तो वह अपने जीवन की वास्तविकताओं को समझने लगता है। वह अपने संवेगों व आवेगों पर नियंत्रण करना सीखता है और उसमें अहम या इगो विकसित होता है। इससे वह अपने परिवार तथा समाज के प्रति समायोजन करना सीखता है। आगे चलकर व्यक्ति के पराहम या सुपर इगो का विकास होता है जो व्यक्ति के व्यवहार का नैतिक कसौटी पर मूल्यांकन करता है। यह व्यक्ति को अनैतिक व्यवहार या समाज द्वारा वर्जित व्यवहार करने की अनुमति नहीं देता है। परन्तु व्यक्ति के इन व्यवहारों या आवेगों का मूल स्रोत इदम होता है। इसलिये पराहम चेतन स्तर पर से उसकी इन सभी अनैतिक इच्छाओं या आवेगों को दबा देता है और अचेतन भाग में डाल देता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, अचेतन मन में जाकर भी व्यक्ति की ये अनैतिक इच्छायें या आवेग समाप्त नहीं होते है और विभिन्न तरह से इन्हें व्यक्त करते रहते है। ये इच्छायें पराहम् को चकमा तथा झांसा देने लगती है।

फ्रायड के अनुसार, जब एक सामान्य व्यक्ति की अनैतिक इच्छायें या आवेग इसके अहम तथा पराहम के नियंत्रण में नहीं आते और उन्हें चकमा देने लगते है तो वह पराहम के डर से भी चिन्तित होने लगता है और उसमें समाज के डर के कारण चिन्ता उत्पन्न होने लगती है। यदि किसी व्यक्ति में ऐसा मानसिक संघर्ष (अनैतिक इच्छाओं की तीव्रता तथा पराहम के प्रबल रूप के कारण) लगातार चलता रहता है, तो उसकी चिन्ता धीरे-धीरे दुश्चिता तंत्रिका ताप का रूप ले लेती है।

फ्रायड के अनुसार मनोविश्लेषणात्मक परिस्थिति कुछ ऐसी होती है। रोगी का अहम् उसके आन्तरिक मानसिक संघर्षो या द्वंद्वों से कमजोर पड़ जाता है। इन मानसिक संघर्षो में इदम की नाजायज माँग (मूलप्रवृन्तिक माँग) और पराहम की नैतिकतापूर्ण मॉग का ही जोर रहता है। इन्हीं संघर्षो से निबटने के लिए व्यक्ति को चिकित्सक की आवश्यकता पड़ती है। इसमें चिकित्सक तथा रोगी एक दूसरे को मदद करते है तथा अपना कार्य प्रारम्भ कर देते है। इदम तथा पराहम के संघर्षो के कारण व्यक्ति का अहम बीमार पड़ जाता है। रोगी चिकित्सक के सामने उन सभी सामग्रियों को रख देता है जो उसे परेशान करती है। चिकित्सक उन सभी अचेतन मन की सामग्रियों को रोगी के सामने रखकर उनकी व्याख्या करता है। इससे रोगी की उसकी बातें समझ में आने लगती है और अपनी भूल तथा अज्ञानता का अहसास होने लगता है। अन्त में चिकित्सक की मदद से अन्त में रोगी के अहम् को अपनी खोई हुई मानसिक ऊर्जा पर नियंत्रण करना आ जाता है और उसका व्यवहार सामान्य होने लगता है।

5.7 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के उद्देश्य

a) रोगी के समस्यात्मक व्यवहार को समझकर उसमें बौद्धिक एवं सांवेगिक सूझ विकसित करना।

b) रोगी में सूझ विकसित होने के बाद उस सूझ के कारण के बारे में पता लगाना।

c) धीरे-धीरे रोगी के इदम तथा पराहं की क्रियाओं पर अहं के नियंत्रण को बढ़ाना।

5.8 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के चरण

इस चिकित्सा में ऐसे संघर्ष, इच्छायें, डर आदि जो रोगी के अचेतन मन में होते है उन्हें बाहर निकालकर उसमें सूझ विकसित करने की कोशिश की जाती है ताकि उससे उत्पन्न होने वाले संवेगात्मक एवं समायोजन संबंधी कठिनाइयों को रोगी ठीक ढंग से सुलझा सके। इस प्रविधि में चिकित्सक को मनोविश्लेषक कहा जाता है तथा इस विधि को निर्देशात्मक चिकित्सा भी कहा जाता है। इनमें प्रमुख चरण निम्नांकित है-

5.8.1 स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था

स्वतंत्र साहचर्य फ्रायड की चिकित्सा प्रणाली की सबसे पहली अवस्था है। इसमें रोगी को एक मन्द प्रकाश वाले कक्ष में एक आरामदेह एवं गद्दीदार कोच पर लिटा दिया जाता है तथा चिकित्सक रोगी के पीछे बैठ जाता है। चिकित्सक रोगी से कुछ देर तक सामान्य ढंग से बातचीत करता है और रोगी से यह अनुरोध

करता है कि उसके मन में जो कुछ भी आता जाए, चाहे वे विचार सार्थक हों या निरर्थक हों, नैतिक हों या अनैतिक हों उसे वह बिना किसी संकोच के कहता जाए,। रोगी की बातों को चिकित्सक ध्यानपूर्वक सुनता है। इस प्रविधि कोस्वतंत्र साहचर्य की विधि कहा जाता है जिसका उद्देश्य रोगी के अचेतन में छिपे अनुभवों, मनोलैंगिक इच्छाओं(psychosexual wishes) एवं मानसिक संघर्षों को कुरेदकर चेतन स्तर पर लाना होता है।

5.8.2 प्रतिरोध की अवस्था

प्रतिरोध मनोचिकित्सा के विकास मे बाधा डालता है तथा क्लाईंट को पूर्व कि अचेतन सामग्रियों को उतापादित करने से रोकता है। मुख्यतः प्रतिरोध के द्वारा क्लाईंट अचेतन कि दमित इच्छाओ को सतह पर लाने के प्रति अनिच्छा दिखाता है। प्रतिरोध वह विचार, अभिवृत्ति, भावना या क्रिया है (चेतन या अचेतन) जो यथा-स्थिति को बनाए रखहता है। मुक्त साहचर्य या स्वप्न विश्लेषण मे क्लाईंट कुछ विचारो, भावनाओ व अनुभवो के साथ समबन्धित होने के प्रति अनिच्छुक होता है। फ्राएड ने प्रतिरोध को अचेतन गतिकी बताया है जिसे व्यक्ति असहनीय चिंता से बचने के लिए करता है जो तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति अपनी दमित भावनाओ व आवेगों से अवगत होता है।

प्रतिरोध चिंता के प्रति एक सुरक्षा प्रक्रम होता है तथा यह क्लाईंट व मनोचिकित्सक के सामूहिक प्रयास जिसके द्वारा अचेतन कि गतिकी के प्रति अंतर्दृष्टि को विकसित करने का प्रयास होता है को बाधित करता है। प्रतिरोध के प्रति मनोचिकित्सक संकेत करता है क्योकि यह अचेतन की दमित इच्छाओ को चेतन मे लाने से रोकता है तथा क्लाईंट यदि अपनी संघर्षपूर्ण स्थिति को दूर करना चाहते है तो उन्हे इसका सामना करना होता है। मनोचिकित्सक की व्याख्या का उद्देश्य क्लाईंट की प्रतिरोध के कारणो कारणो को जानने मे मदद करना होता है जिससे वे उसके प्रति संव्यवहार कर सके।

मनोचिकित्सक सर्वप्रथम सबसे स्पष्ट प्रतिरोध कि व्याख्या करता है जिससे क्लाईंट उसे अस्वीकृत न कर सके तथा इससे इस बात की संभावना बढ़ती है कि वह अपने प्रतिरोधी व्यवहार को समझना शुरू करेगा।

प्रतिरोध केवल ऐसी क्रिया नहीं है जिसपे काबू किया जा सके। ये दिन प्रति दिन के जीवन मे सुरक्षात्मक पद्धति का प्रतिनिधि करती है अतः यह ऐसे उपकरण के रूप मे देखी जा सकती है तथा यह व्यक्ति को परिवर्तन स्वीकार करने मे भी हस्तक्षेप करती है। मनोचिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह क्लाईंट के प्रतिरोध का सम्मान करे तथा उनके सुरक्षा प्रक्रम के साथ उपचार के माध्यम से सहायता कर सके। अगर प्रतिरोध को सही तरीके प्रयोग किया जाता है तो यह क्लाईंट को समझने का सबसे उपयोगी साधन हो सकता है।

5.8.3 स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था

रोगी के अचेतन में जो दमित इच्छायें, बाल्यावस्था की मनोलैंगिक इच्छाएँ एवं मानसिक संघर्ष होते हैं विश्लेषक उनका उसके स्वप्न के माध्यम से अध्ययन कर विश्लेषण के द्वारा बाहर लाने का प्रयास करता है।

फ्रायड के अनुसार स्वप्न में व्यक्ति अपने अचेतन की दमित इच्छाओं को पूरा करता है। इसलिए रोगियों के स्वप्नों का विश्लेषण करके चिकित्सक उसके अचेतन के संघर्षों एवं चिन्ताओं के बारे में जान पाते हैं। रोगी के स्वप्नों के अव्यक्त विषयों के अर्थ को विश्लेषक समझता है जिससे रोगी के मानसिक संघर्ष एवं संवेगात्मक कठिनाई के वास्तविक कारण को समझने में मदद मिलती है।

5.8.4 स्थानांतरण की अवस्था

जैसे-जैसे रोगी एवं चिकित्सक के बीच विश्वास एवं लगाव हो जाता है उनके बीच सांवेगिक नये संबंध भी उभर कर सामने आ जाते हैं। रोगी के जैसे संबंध या मनोवृत्ति अपने शिक्षक, माता या पिता के प्रति होती है, वैसी ही मनोवृत्ति या संबंध वह चिकित्सक के प्रति विकसित कर लेता है। इसे ही स्थानान्तरण कहा जाता है। स्थानान्तरण विकसित होने से रोगी शांत मन से एवं पूर्व विश्वास के साथ अपने विचारों की अभिव्यक्त करता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि चिकित्सक एक ऐसा व्यक्ति है जिनके सामने वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एवं मानसिक द्वंदों के बारे में खुलकर बातचीत कर सकता है।

स्थानान्तरण के तीन प्रकार होते हैं।

a) **धनात्मक स्थानान्तरण** -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपने स्नेह एवं प्रेम की प्रतिक्रियाओं को दिखलाता है। इसमें चिकित्सा का वातावरण पहले से और भी अधिक सौहार्द्रपूण बन जाता है और रोगी सुरक्षित अनुभव करता है तथा वह अचेतन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति खुलकर करता है।

b) **ऋणात्मक स्थानान्तरण** -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपनी घृणा एवं संवेगात्मक अलगाव की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है। चिकित्सक रोगी के घृणा एवं आक्रामक व्यवहारों का केन्द्र होता है। इसलिए यहाँ उन्हें काफी सूझ-बूझ से काम लेना पड़ता है तथा वह रोगी का विश्वासपात्र बनकर उसके घृणा भावों को समझता है ताकि चिकित्सा आगे की ओर बनी रहे।

c) **प्रति स्थानान्तरण** -इसमें विश्लेषक ही रोगी के प्रति स्नेह, प्रेम एवं संवेगात्मक लगाव दिखाता है। प्रतिस्थानान्तरण की स्थिति से चिकित्सक की अक्षमता का पता चलता है और ऐसे चिकित्सक के बारे में फ्रायड ने कहा है कि उन्हें पहले अपना मनोविश्लेषण करवा लेना चाहिए। ऐसे विश्लेषक या चिकित्सक को आदर्श नहीं माना जाता है।

5.8.5 समापन की अवस्था

चिकित्सा के अन्त में विश्लेषक के सफल प्रयास के बाद रोगी को अपने संवेगात्मक कठिनाई एवं मानसिक संघर्षों के अचेतन कारणों का एहसास होता है। जिससे रोगी में सूझ का विकास होता है। सूझ का विकास हो जाने से उसके आत्म प्रत्यक्षण तथा सामाजिक प्रत्यक्षण में परिवर्तन आ जाता है। इससे रोगी की मनोवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों में धनात्मक परिवर्तन होता है। जब रोगी में सूझ का विकास हो जाता है, तब चिकित्सक रोगी से धीरे-धीरे संबंध-विच्छेद करने का प्रयास करता है। यहाँ चिकित्सक को सावधानी बरतनी

पड़ती है कि वह संबंध-विच्छेद अचानक न करे क्योंकि ऐसा करने से कभी-कभी रोगी में नये लक्षण प्रकट को जाते हैं।

5.9 मनोविश्लेषण चिकित्सा के गुण

1. मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा द्वारा चिकित्सा अचेतन की दमित इच्छाओं, संघर्षों एवं उलझनों को सुलझाया जाता है, इसलिए इससे जो उपचार होता है, वह अधिक स्थायी होता है। इस विधि में अचेतन की गहराइयों में जाकर उसे कुरेदा जाता है तथा संवेगात्मक कठिनाइयों एवं मानसिक उलझनों के कारण का पता लगाया जाता है, इसलिए इसे गहरी चिकित्सा भी कहा जाता है।
2. इस विधि द्वारा मानसिक रोग के कारण का पहले पता लगा लिया जाता है और बाद में उसका उपचार उसी के अनुसार किया जाता है। इसी कारण यह विधि चिकित्सा की अन्य विधियों से उत्तम मानी जाती है।
3. यह प्रविधि हिस्ट्रीरिया, विषाद, अन्तर्मुखी तथा कम अभिप्रेरित रोगियों के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी माना गया है।

5.10 मनोविश्लेषण चिकित्सा के दोष

1. इस विधि द्वारा उपचार में काफी समय लगता है। समय अधिक लगने के कारण रोगी चिकित्सा से उबने लगता है और उसकी कठिनाइयाँ घटने के बजाय बढ़ने लगती है।
2. इस उपचार विधि में समय अधिक लगने से विश्लेषक अधिक रोगियों का उपचार चाह कर भी नहीं कर पाता है।
3. यह विधि खर्चीली है।
4. इस विधि का उपयोग काफी छोटे बालकों या काफी बूढे लोगों पर सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस तरह के लोग चिकित्सा के दौरान उतना सहयोग नहीं कर पाते है जितनी जरूरत पड़ती है। इन दोनों तरह के व्यक्तियों मे सूझ उत्पन्न करना बहुत मुश्किल होता है। जब सूझ ठीक ढंग से उत्पन्न नहीं हो पाती है तो रोगी की समस्या का समाधान भी ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।
5. इसके लिए विश्लेषक को कुशल एवं प्रशिक्षित होना अनिवार्य है। सभी तरह के चिकित्सक इस विधि का संचालन सही-सही ढंग से नहीं कर पाते है। रोगी के कम शिक्षित होने पर चिकित्सक को उसके साथ उत्तम शब्दिक अंतर्क्रिया करने में असहजता होती है।

5.11 मनोगतिकी (Psychodynamics)

मनोगतिकी के सिद्धान्त का आधार फ्रॉयड का मनोविश्लेषणवाद है। मनोगतिकी को मनोविश्लेषणवाद का उन्नत रूप कह सकते हैं जिनमें मनोविश्लेषणवाद के अलावा अन्य मनोवैज्ञानिकों

यथा अन्ना फ्रॉयड, करेन हार्नि, एडलर एवं कार्ल जुंग आदि मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये संशोधनों को भी शामिल किया गया है। मनोगत्यात्मक मॉडल की पूर्व कल्पनाएँ निम्नांकित हैं:

1. मानव व्यवहार का निर्धारण वैसे आवेगों, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षों से होता है जो व्यक्ति के मन में होते हुए भी उसके चेतन में नहीं बल्कि अचेतन में होते हैं।
2. सामान्य तथा असामान्य दोनों तरह के व्यवहारों की उत्पत्ति अंतर्मानसिक कारकों (आवेगों, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षों) के द्वारा होता है।
3. बाल्यावस्था में मौलिक आवश्यकताओं की तुष्टि या उनका कुंठित होना व्यक्ति के विशेष व्यावहारिक पैटर्न को निर्धारित करता है।
4. मानव व्यवहार को समझने के लिए अंतर्मानसिक कारकों (आवेगों, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षों) के स्पष्ट प्रत्यक्षण की आवश्यकता है तभी असामान्य व्यवहार का उपचार किया जा सकता है।

मनोगात्यात्मक मॉडल का संपूर्ण अध्ययन उसके निम्नांकित अवयवों में बांटकर किया जा सकता हैः

- फ्रॉयड का मनोविश्लेषण
- सम्बन्धित मनोगात्यात्मक उपागम

फ्रॉयड का मनोविश्लेषण

मानसिक नियतिवाद

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक संगत अथवा असंगत दिखने वाले मानव व्यवहार का कोई ना कोई कारण अवश्य होता है,भले ही वह दृश्य हो अथवा अदृश्य, वह व्यक्ति को ज्ञात हो या अज्ञात। फ्रॉयड के अनुसार आकस्मिक व्यवहार भी अर्थपूर्ण होते हैं क्योंकि वे व्यक्ति के छुपे हुए मानसिक संघर्षों एवं अभिप्रेरणों के बारे में बताते हैं। इन्हीं छिपे हुए मानसिक संघर्षों को फ्रॉयड ने अचेतन कहा है। किसी व्यक्ति का नाम भूल जाना, किसी व्यक्ति के यहाँ कुछ छोड़ आना जैसे आकस्मिक व्यवहारों को भी फ्रॉयड ने अर्थपूर्ण एवं अचेतन की किसी इच्छा से निर्देशित बताया है।

मानसिक संरचना

फ्रॉयड का मत है कि मानव व्यवहार, मानसिक संरचना के तीन पहलुओं इदं, अहम एवं पराहम की अन्तः क्रिया का परिणाम होता है। फ्रॉयड के अनुसार मन के गत्यात्मक पहलू से तात्पर्य उन साधनों से है जिसके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। मूल प्रवृत्तियों से फ्रॉयड का तात्पर्य वैसी जन्मजात शारीरिक उत्तेजनाओं से है जो व्यक्ति के सभी व्यवहारों का निर्धारक है। फ्रॉयड ने जन्मजात प्रवृत्तियों को दो भागों में बांटा हैः जीवन सम्बंधी मूल प्रवृत्ति और मृत्यु सम्बंधी मूल प्रवृत्ति। फ्रॉयड का यह भी मानना था कि जीवन सम्बन्धी मूल प्रवृत्तियों के द्वारा उसके विध्वंसात्मक व्यवहारों का निर्धारण होता है। इन दोनों प्रकार के व्यवहारों में संतुलन के कारण एक संतुलित व्यक्तित्व विकसित होता है, जबकि

इन परस्पर विरोधी मूल प्रवृत्तियों में संघर्ष का समाधान करने के लिए व्यक्ति तीन प्रतिनिधियों का प्रयोग करता है-

इदं, अहम एवं पराहम

- **इदं**

इदं व्यक्तित्व का जैविक पक्ष है जो असंगठित, कामुक, नियमों को ना मानने वाला होता है। एक नवजात शिशु प्रायः इदं से संचालित होता है। यह आनंद के सिद्धान्त पर काम करता है और इन्हें उचित अनुचित, समय असमय, स्थान आदि से कोई मतलब नहीं होता है। फ्रॉयड का मनोविश्लेषणवाद असामान्य व्यवहार की व्याख्या में मूलतः इदं की इच्छाओं एवं आवेगों एवं उनकी अभिव्यक्ति पर बल डालता है परन्तु बाद के सिद्धान्तवादियों ने अहम को अधिक महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि अहम व्यक्तित्व का कार्यपालक होता है और उसके कार्य करने के तरीके पर व्यक्ति का व्यवहार (संयोजी या कुसमायोजी) निर्भर करता है। इदं व्यक्तित्व में उत्पन्न तनावों एवं संघर्षों को दूर करने के दो तरीके अपनाता है एक सहज प्रक्रिया एवं दूसरा प्राथमिक प्रक्रिया सहज प्रक्रिया में इदं तनाव उत्पन्न करने वाली स्त्रोत के प्रति अपने आप अनुक्रिया कर तनाव दूर करता है खांसना, छींकना आदि सहज प्रक्रिया का उदाहरण हैं। प्राथमिक प्रक्रिया में व्यक्ति वैसे उद्दीपकों जिनसे पहले इच्छा की संतुष्टि होती थी के बारे मात्र एक कल्पना कर अपना संघर्ष या तनाव दूर करता है।

इदं की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं:

- इदं में जीवन मूल प्रवृत्तियों एवं मृत्यु मूल प्रवृत्तियों का समावेश होता है।
- इदं जीवन की वास्तविकताओं से दूर रहता है।
- इदं आनंद के सिद्धान्त से निर्देशित होता है।
- इदं अतार्किक एवं वास्तविकता से परे होता है।
- इदं पूर्णतया अचेतन होता है।

अहम

मन के गत्यात्मक पहलू का दूसरा प्रमुख भाग अहम है। जन्म के बाद के कुछ दिनों तक बच्चा पूर्णतया इदं के द्वारा निर्देशित होता है परन्तु सामाजिक नियमों एवं नैतिक मूल्यों के कारण उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है तब उसे निराशा का अनुभव होता है और उसका सम्बन्ध वास्तविकता से होता है। धीरे-धीरे इसी प्रक्रिया में उसके अंदर अहम का विकास होता है। यह व्यक्तित्व की कार्यकारी शाखा है अहम अंशतः अर्ध चेतन और अंशतः अचेतन होता है अतः अहम द्वारा इन तीनों स्तरों पर निर्णय लिया जाता है।

अहम की विशेषताएं

- अहम का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है।

- यह चेतन, अचेतन एवं अर्ध चेतन तीनों से प्रभावित होता है परन्तु चेतन का प्रभाव अधिक होता है।
- यह समाज के सिद्धान्तों से निर्देशित होता है।

पराहम्

पराहम् व्यक्तित्व का नैतिक तंत्र है। यह आदर्शों के अनुरूप कार्य करता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, सामाजीकरण की प्रक्रिया में माता-पिता के साथ तादात्मीकरण स्थापित करता है और बालक अपने माता-पिता से सामाजिक दृष्टि से सही व गलत व्यवहार के बारे में जानते हैं तथा माता-पिता व समाज के नियमों व शिक्षाओं के अनुसार कार्य करने पर बालक को धनात्मक पुनर्बलन अर्थात् प्यार प्रशंसा मिलती है। नियमों के उल्लघंन से सजा मिलती है, जिससे बालक में 'अपराध-बोध' उत्पन्न होता है। इस प्रकार धीरे-धीरे बालक में पराअहं का विकास होता है। 'पराहम्' भी 'इदं' की तरह अवास्तविक होता है। यह वास्तविकता का ख्याल नहीं रखता है। 'पराहम्', 'अहं' को नैतिक कार्यों को पूर्ण करने के लिए बाध्य करता है। 'पराहम्' इस बात का ख्याल नहीं करता कि इससे 'अहं' को वातावरण में उपस्थित किन-किन परेशानियों को सामना करना पड़ेगा।

- 'पराहम्' भी इदं की तरह अवास्तविक होता है।
- यह नैतिक सिद्धान्तों से निर्देशित होता है।
- यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक नियमों का पालन करता है।

मनोगतिकी सिद्धान्त ने सर्वप्रथम यह व्याख्या की कि मानसिक प्रक्रियाओं में क्षुब्धता मानसिक विकृतियों के कारण है। मनोगतिकी मॉडल की यह मान्यता भी है कि अतिरंजित एवं नकारात्मक सुरक्षा युक्तियां असामान्य व्यवहार का कारक होती हैं। असामान्य व्यवहार के कारणों में अचेतन अभिप्रेरण एवं सुरक्षा युक्तियों की गत्यात्मक भूमिका होती है। व्यक्तित्व के समायोजन एवं कुसमायोजन में आरंभिक बाल्यावस्था की अनुभूतियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि ऐसी अनुभूतियाँ अनुकूल हुई तो बाद का व्यक्तित्व समायोजित एवं संतुलित होता है, जबकि यदि ऐसी अनुभूतियाँ प्रतिकूल हुई तो व्यक्तित्व असंतुलित एवं कुसमायोजित होता है। विचलित मानव व्यवहार एवं मानसिक विकृतियों के लिए अचेतन में दमित यौन इच्छाएं काफी हद तक जिम्मदार होती हैं। कई बार जब व्यक्ति अत्यन्त कठिन समस्याओं के समाधान करने के क्रम में अतिरंजित सुरक्षा युक्तियों का प्रयोग करता है, जिसकी वजह से कुछ विशिष्ट मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं।

दुश्चिंता एवं रक्षा प्रक्रम

मनोगात्यात्मक मॉडल में दुश्चिंता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संप्रत्यय है जिससे उनका तात्पर्य डर एवं आशंका के एक सामान्यीकृत भाव से है। दुश्चिंताओं को फ्रॉयड ने तीन भागों में विभाजित किया हैः वास्तविक या वस्तुनिष्ठ दुश्चिंता, न्यूरोटिक दुश्चिंता एवं नैतिक दुश्चिंता वास्तविक या वस्तुनिष्ठ दुश्चिंता की उत्पत्ति वातावरणीय कारकों के कारण होती है जबकि न्यूरोटिक दुश्चिंता इदं एवं अहम के संघर्षों के कारण

उत्पन्न होती है। नैतिक दुश्चिंता की उत्पत्ति का कारक मानव व्यवहार एवं उसके पराहम् के संघर्षों का परिणाम होता है। अतः व्यक्ति का अहम इस दुश्चिंता से स्वयं को बचने के लिए कुछ समाधान की खोज करता है जिसे फ्रॉयड ने रक्षा प्रक्रम की संज्ञा दी है। संबंधित मनोगात्यात्मक उपागम- फ्रॉयड द्वारा प्रतिपादित मौलिक विचारों का बाद में तेजी से संशोधन किया गया। ऐसे मनोवैज्ञानिक जिन्होंने उनके मौलिक विचारों को संशोधित किया, उनमें इरिक्सन (Erikson), एल्डर (Adler), ओटो रैंक (Otto Rank), युंग (Jung), हार्नी (Horney), फ्रोम (Formm), अन्ना फ्रॉयड (Anna Freud)] तथा कोहट (Kohut) आदि प्रमुख हैं। इन लोगों द्वारा प्रस्तावित संशोधन निम्नांकित हैं।

- अभिप्रेरण में अचेतन एवं मूल प्रवृत्ति की महत्वपूर्ण भूमिका के प्रति असंतोष तथा फ्रॉयड के विचारों से असहमति
- मानव व्यवहार सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के प्रभावों पर अधिक जोर।
- व्यक्तित्व के चेतन पहलुओं पर अधिक बल दिया जाना।
- यह मानना कि व्यक्तित्व विकास बाल्यावस्था में ही पूरा नहीं होता है बल्कि वयस्कावस्था में भी इसका कार्य चलता रहता है।

कैरेन हार्नी (Horney)] इरिक इरिक्सन (Erikson), ने फ्रॉयड द्वारा व्यक्तित्व विकास में सिर्फ जैविक चरों को महत्वपूर्ण बतलाना एक आंशिक दृष्टिकोण कहा। इन लोगों का मत है कि व्यक्तित्व विकास में सामाजिक सांस्कृतिक कारकों की अनदेखी करना अनुचित होगा। इस सिलसिले में विशेषकर इरिक्सन द्वारा किया गया योगदान काफी प्रशंसनीय हैं। इन्होंने व्यक्तित्व विकास के लिए आठ मनोसामाजिक अवस्था का वर्णन किया है जो फ्रॉयड के पांच मनोलैंगिंक अवस्थाओं से अधिक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण हैं। इन आठ अवस्थाओं में व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्तियों के प्रति की गयी अन्तः क्रिया की उन्मुखता को महत्वपूर्ण बतलाया गया है। इरिक्सन का मत है कि मनोसामाजिक विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति में एक सामाजिक संकट की उत्पत्ति होती है जिसका यह वह सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तो व्यक्ति में धनात्मक परिणाम होते हैं और वह अगली अवस्था के सामाजिक संकट के साथ ठीक ढंग से निबट पाता है। यदि वह इस संकट से ठीक ढंग से निबट नहीं पाता है तो इससे उसके व्यक्तित्व का विकास अवरूद्व हो जाता है। एडलर फ्रॉयड के शिष्य थे परन्तु फिर बाद में उन्होंने फ्रॉयड से अपना संबन्ध विच्छेद करके एक नया दृष्टिकोण विकसित किया जिसे वैयक्तिक विश्लेषण कहा गया। एडलर ने व्यक्तित्व विकास में सामाजिक सांस्कृतिक तथा लक्ष्य उन्मुखी गत्यात्मकता पर अधिक बल डाला है। उन्होंने पूरे परिवार को व्यक्तित्व विकास के लिए महत्वपूर्ण बतलाया और कहा कि परिवार में व्यक्ति के जन्म क्रम का प्रभाव उसके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। उनका मत था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिदंगी की शुरूआत एक लाचार एवं हीन स्थिति में करता है। वह अपनी इस हीनता के भाव को दूर करने के लिए कुछ पूरक व्यवहार करता है, जिसमें वह श्रेष्ठता प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करता है और स्वस्थ्य जीवनशैली की उत्पत्ति होती है। जीवन शैली समायोजी होने पर व्यक्ति में सामाजिक अभिरूचि सहयोग, साहस आदि का विकास होता है। इसमें से सामाजिक अभिरूचि के विकास को एडलर

ने काफी महत्वपूर्ण बतलाया है। अगर जीवन शैली कुसमायोजी हुई तो इससे व्यक्ति में निर्भरता, दूसरों के प्रति अनादर तथा वास्तविकता के प्रति विकृत दृष्टिकोण आदि विकसित हो जाते हैं।

एडलर के समान ऑटो रैक ने भी फ्रॉयड द्वारा यौन एवं आक्रमकता को मानव व्यवहार का प्रमुख आधार मानने की बात को अस्वीकृत कर दिया और इसके बदले में बच्चों के मौलिक निर्भरता एवं उसमें धनात्मक वृद्धि के जन्मजात अन्तः शक्ति को महत्वपूर्ण माना। उन्होंने जन्म आधार को एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय बतलाया, उनके अनुसार भ्रूण अपने निष्क्रिय एवं पूर्णतः निर्भर वातावरण को छोड़कर अचानक एक ऐसे वातावरण में आता है जिसमें काफी अस्त व्यस्तता होती है तथा जिसमें स्वतन्त्रता अधिक एवं निर्भरता कम होती है। सचमुच में जन्म व्यक्ति में एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें आश्रित रहने की इच्छा एवं पूर्ण स्वतन्त्रता की ओर दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से बढ़ने की जन्मजात मानवीय प्रवृत्ति के बीच एक तरह का संघर्ष विकसित होता है। ऑटो रैक का विचार था कि यदि व्यक्ति इस संघर्ष को ठीक ढंग से दूर नहीं कर पाता है तो उसके व्यवहार में असमान्यता एवं विकृत्ति हो जाती है।

5.12 मनोगतिकी मॉडल के गुण एवं सीमायें:

मनोगतिकी मॉडल के गुण

- मनोगतिकी में सामान्य एवं असामान्य व्यवहार की व्याख्या के लिए समान मानसिक नियमों का उल्लेख किया है। चिंता, अचेतन प्रक्रियाएं, मानसिक संघर्ष तथा रक्षात्मक प्रक्रम का सामान्य या असामान्य होना सामान्य अथवा असामान्य व्यवहार का निर्धारक है।
- मनोगतिकी सिद्धान्त असामान्य व्यवहार की व्याख्या के साथ ही व्यक्तित्व की एक विस्तृत व्याख्या भी प्रस्तुत करता है तो असामान्य व्यवहार को समझने में मददगार है।
- मनोगतिकी के सिद्धान्त में मनोगतिकी प्रक्रियाओं एवम मानसिक परेशानियों का अध्ययन करने के लिए विशिष्ट विधियों का उपयोग करता है।

मनोगतिकी की सीमायें

- मनोगतिकी का सिद्धान्त अत्यन्त जटिल एवं कठिन है।
- मनोविश्लेषण के समान ही मनोगतिकी के सिद्धान्तों की विधा को ना तो साबित किया जा सकता है ना ही उन्हें पूरी तरह से नकारा जा सकता है।
- मनोगतिकी सिद्धान्त के बहुत सारे संप्रत्ययों का आज तक प्रायोगिक सत्यापन नहीं किया जा सका है।
- मनोविकारों एवं असामान्य व्यवहार की व्याख्या में मनोगतिकी कि सिद्धान्त ने सामाजिक एवं परिस्थिति जन्य कारकों की उपेक्षा की है।

- मनोगतिकी के सिद्धान्त ने व्यक्ति के असामान्य व्यवहार की व्याख्या के क्रम में आत्म विकास एवं मूल्य विकास की भी उपेक्षा की है।
- मनोविश्लेषण के समान ही मनोगतिकी ने भी यौन प्रणोद पर आवश्यकता से अधिक जोर डाला है और अचेतन की प्रक्रियाओं को बिना किसी साक्ष्य के अतिरंजित करके दिखाया है।

5.13 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पाये कि मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करने को मनश्चिकित्सा कहा जाता है। मनोचिकित्सा जीवन को नियंत्रित करने तथा चुनौती पूर्ण स्थितियों का सामना करने में मदद करती है। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति में अपने कल्याण के प्रति भावना को बढाना होता है। मनश्चिकित्सा में रोगी तथा चिकित्सक के बीच वार्तालाप होता है जिसके माध्यम से रोगी अपनी सांवेगिक समस्याओं एवं मानसिक चिन्ताओं को अभिव्यक्त करता है। चिकित्सक द्वारा उसे विशेष सहानुभूति, सुझाव एवं सलाह दिया जाता है ताकि उसका आत्म-विश्वास एवं आत्म-सम्मान कायम रह सके। धीरे-धीरे रोगी की समस्याएँ समाप्त होते चली जाती हैं और उसमें ठीक ढंग से समायोजन करने की क्षमता फिर से विकसित हो जाती है। मनश्चिकित्सा के मुख्य उद्देश्य हैं -रोगी की अभिप्रेरण व साहसशक्ति को बढाना, ताकि वो सही व्यवहार कर सके,भावों की अभिव्यक्ति द्वारा सांवेगिक समस्याओं को कम करने में मदद करना, रोगी के आन्तरिक संघर्षों एवं व्यक्तिगत तनाव को कम करना, व्यर्थ के कार्यों एवं लक्ष्यों से उसके मन को हटाकर उसको अपनी सामर्थ्य पहचानने में सहायता करना, रोगी को अपने वातावरण की वास्तविकताओं के साथ अच्छी तरह समायोजन करने में सहयोग प्रदान करना, रोगी में अनुपयुक्त व्यवहार को बढ़ाने वाले कारकों को दूर करना, चेतन की वर्तमान अवस्था को परिवर्तित करना। मनश्चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ इस प्रकार हैं- सूझ उत्पन्न करना, सांवेगिक अशांति को कम करना, विरेचन को प्रोत्साहित करना, नयी सूचना देना, रोगी में उम्मीद एवं विश्वास विकसित करना

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का श्रेय सिग्मंड फ्रायड को जाता है जिन्हें मनोविज्ञान के पिता और मनोविश्लेषण का संस्थापक माना जाता है। यह मनोविश्लेषण सिद्धांतों पर आधारित उपचार का एक प्रकार है, यह चिकित्सा इस बात की जांच करती है कि कैसे अचेतन दिमाग विचारों और व्यवहार को प्रभावित करता है। मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का प्रयोग प्रारंभिक बचपन के अनुभवों को देखने के लिए किया जाता है कि क्या इन घटनाओं ने व्यक्ति के जीवन को प्रभावित किया है। इस प्रकार की चिकित्सा में चिंता की गहराई के आधार पर सप्ताह, महीनों या साल भी लग सकते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य रोगी के समस्यात्मक व्यवहार को समझकर उसमें बौद्धिक एवं सांवेगिक सूझ विकसित करना है। इसके चरण निम्नांकित है- स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था, प्रतिरोध की अवस्था, स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था, स्थानांतरण की अवस्था तथा समापन की अवस्था। यह प्रविधि हिस्ट्रीरिया, विषाद, अन्तर्मुखी तथा कम अभिप्रेरित रोगियों के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी माना गई है।

इस विधि का दोष यह है कि इस विधि द्वारा उपचार में काफी समय लगता है। समय अधिक लगने के कारण रोगी चिकित्सा से उबने लगता है और उसकी कठिनाइयाँ घटने के बजाय बढ़ने लगती हैं इसके अतिरिक्त यह बहुत खर्चीली है। इस विधि का उपयोग काफी छोटे बालकों या काफी बूढे लोगों पर सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विश्लेषक को कुशल एवं प्रशिक्षित होना अनिवार्य है।

मनोगतिकी के सिद्धान्त का आधार फ्रॉयड का मनोविश्लेषणवाद है। मनोगतिकी को मनोविश्लेषणवाद का उन्नत रूप कह सकते हैं जिनमें मनोविश्लेषणवाद के अलावा अन्य मनोवैज्ञानिकों यथा अन्ना फ्रॉयड, करेन हार्नी, एडलर एवं कार्ल जुंग आदि मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये संशोधनों को भी शामिल किया गया है। मनोगत्यात्मक मॉडल की पूर्व कल्पनाएँ हैं: मानव व्यवहार का निर्धारण वैसे आवेगों, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षों से होता है जो व्यक्ति के मन में होते हुए भी उसके चेतन में नहीं बल्कि अचेतन में होते हैं। सामान्य तथा असामान्य दोनों तरह के व्यवहारों की उत्पत्ति अंतर्मानसिक कारकों (आवेगों, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षों) के द्वारा होता है। बाल्यावस्था में मौलिक आवश्यकताओं की तुष्टि या उनका कुंठित होना व्यक्ति के विशेष व्यावहारिक पैटर्न को निर्धारित करता है। मानव व्यवहार को समझने के लिए इन अंतर्मानसिक कारकों के स्पष्ट प्रत्यक्षण की आवश्यकता है तभी असामान्य व्यवहार का उपचार किया जा सकता है।

5.14 अभ्यास प्रश्न

सत्य एवम असत्य का चिह्न लगायें-

1. मुक्त साहचर्य विधि द्वारा अचेतन की इच्छाओं, अभिप्रेरणाओ तथा अंतर्द्वंदों को जाना जा सकता है।(सत्य/ असत्य)
2. फ्रॉयड का मत है कि मानव व्यवहार, मानसिक संरचना के तीन पहलुओं इदं, अहम एवं पराहम की अन्तः क्रिया का परिणाम नहीं होता है।(सत्य/ असत्य)
3. मनोविश्लेषण चिकित्सा का उपयोग काफी छोटे बालकों या काफी बूढे लोगों पर सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। (सत्य/ असत्य)
4. इदं अतार्किक एवं वास्तविकता से परे होता है।(सत्य/ असत्य)
5. पराहम्‘ यह नैतिक सिद्धान्तों से निर्देशित होता है।(सत्य/ असत्य)

5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोचिकित्सा से क्या समझते है? इसके उद्देश्यों एवं चरणों का वर्णन कीजिये।
2. मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का अर्थ बताइये। इस चिकित्सा के चरणों एवं गुण दोषों की व्याख्या कीजिये।
3. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिये।
4. मनोगतिकी की सीमायें स्पष्ट कीजिये।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

5.16 संदर्भ

1. Rotter: Clinical psychology, 1971, P-71
2. Nietzel. Bernstein& Milich: Introduction to clinical psychology, 1991, p- 251
3. अरुण कुमार सिंह: उच्चत्तर नैदानिक मनोविज्ञान षष्ठम संस्करण, 2012
1. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव
4. www.counselling-directory.org.uk

इकाई -6 व्यवहार व संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा और परामर्श हेतु दृष्टिकोण (Behavioral and Cognitive Behavior Therapy, Approaches to Counseling)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 व्यवहार चिकित्सा की परिभाषा

6.4 व्यवहार चिकित्सा की प्रविधियां

6.4.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण

6.4.2 विरूचि चिकित्सा

6.4.3 संकेत व्यवस्था

6.4.4 फ्लडिंग

6.4.5 दृढ़कथन प्रशिक्षण

6.4.6 व्यवहार प्रतिरूपण

6.4.7 बायोफीडबैक प्रविधि

6.4.8 संभाव्यता प्रबन्धन

6.5 व्यवहार चिकित्सा का मूल्यांकन

6.6 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा

6.7 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकार

6.7.1 रेशनलइमोटिव चिकित्सा-

6.7.2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा

6.7.3 तनाव टीका चिकित्सा

6.7.4 बहुआयामी चिकित्सा

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

6. 11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6. 12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने परामर्श के उपागमों के अंतर्गत मनोविश्लेषण उपागम का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में हम व्यवहार चिकित्सा एवं संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे। व्यवहार चिकित्सा नैदानिक मनोविज्ञान में प्रयोग की जाने वाली एक लोकप्रिय पद्धति है। ये रूसी मनोवैज्ञानिक पैवलोव के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति की आधारभूत मान्यता है कि असामान्य व्यवहार का कारण व्यक्ति के द्वारा अपेक्षित समायोजनपूर्ण प्रतिक्रियाओं को न सीख पाना है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगी को सही प्रकार की प्रतिक्रियाओं को सिखाया जाता है। इसमें रोगी के उपचार के लिये उसके लक्षणों को दूर करने का सीधा प्रयास किया जाता है। इसके द्वारा असमायोजित आदतों को कमजोर किया जाता है और उनको त्याग दिया जाता है। इसमें समायोजित आदतों की शुरूआत की जाती है तथा उन्हें मजबूत किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया के पीछे अनुबन्धन की विधि को अपनाया जाता है।

संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर उसे चिकित्सा दी जाती है। रोगी के गलत संज्ञान या चिंतन को दूर करके उसकी जगह पर सही चिंतन को विकसित किया जाता है ताकि वो समायोजी व्यवहार कर सके।

6.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

व्यवहार चिकित्सा के बारे में समझ पैदा कर पायेंगे।

व्यवहार चिकित्सा की मान्यताओं को समझ पायेंगे।

व्यवहार चिकित्सा की प्रविधियों को समझ पायेंगे।

6.3 व्यवहार चिकित्सा की परिभाषा

व्यवहार चिकित्सा के जाने माने समर्थक ओलप(Wolpe1969)ने व्यवहार चिकित्सा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "अपअनुकूलित व्यवहार को परिवर्तित करने के उद्देश्य से प्रयोगात्मक रूप से स्थापित अधिगम के नियमों का उपयोग व्यवहार चिकित्सा है। अपअनुकूलित आदतों को कमजोर तथा समाप्त किया जाता है, अनुकूलित आदतों की शुरूआत कर उन्हें मजबूत किया है।"

अपनुकूलित व्यक्ति के बारे में निम्न दो उपकल्पनाएं की जाती हैं – अपनुकूलित या कुसमायोजित व्यक्ति उसे कहा जाता है जो जिंदगी की समस्याओं से निपटने के लिए किसी कारणवश पर्याप्त सामर्थ्य विकसित नहीं कर पाये या सीख पाये । ऐसे व्यक्ति कुछ दोषपूर्ण समायोजन के पैटर्न सीख लेते हैं जो किसी न किसी स्रोत से पुनर्बलित होकर अपने आप संपोषित होते रहते हैं । सारासन तथा सारासन (1998) के

अनुसार *''व्यवहार चिकित्सा के अन्तर्गत व्यवहार परिमार्जन की कई प्रविधियाँ शामिल हैं, जो प्रयोगशाला परिणामों से प्राप्त अधिगम तथा अनुबंधन के सिद्धान्तों पर आधारित है। व्यवहार चिकित्सा में आंतरिक संदर्भ के बिना ही बाह्य व्यवहार को परिमार्जित किया जाता है।''*

6.4 व्यवहार चिकित्सा की प्रविधियां

रोगी के कुसमायेजित व्यवहार प्रतिरूपों में परिमार्जन लाकर उसे रोगमुक्त करने के लिए निम्नलिखित प्रविधियों का उपयोग किया जाता है जो इस प्रकार हैं -

6.4.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण

क्रमबद्ध असंवेदीकरण व्यवहार चिकित्सा की एक प्रविधि है, जिसको ओल्प (1958) ने विकसित किया। इसे प्रतिअनुकूलन तथा पारस्परिक अवरोध भी कहते हैं। असंवेदीकरण वह नैदानिक प्रविधि है, जिसके द्वारा चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति रोगी की संवेदनशीलता को क्रमश: कम करने का प्रयास किया जाता है। इसमें रोगी आराम या विश्राम की अवस्था में चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला की कल्पना करता है।

इस प्रविधि के द्वारा व्यवहार-परिमार्जन करने तथा रोगी को चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के प्रति असंवेदनशील बना कर चिन्ता को कम करने के लिए निमनलिखित चरणों का उपयोग किया जाता हैः-

1. **आराम करने का प्रशिक्षण** इस अवस्था में रोगी को विश्राम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। मानसिक एवं शारीरिक से आराम करने का यह प्रशिक्षण पहले 5-6 सत्रो में पूरा किया जाता है। इन सत्रों में रोगी को अपनी मांस पेशियों को संकुचित करने और अचानक ढीला करने का प्रशिक्षण तब तक दिया जाता है जब तक कि रोगी पूर्ण रूप से विश्राम की अवस्था प्राप्त करने में सफल नहीं हो जाता।
2. **चिन्ता के पदानुक्रमिक का निर्माण-** दूसरे चरण में चिकित्सक उन उद्दीपकों की एक सूची तैयार करता है, जिनसे रोगी में चिन्ता उत्पन्न होती है। इस सूची की विशेषता यह होती है कि ऐसे उद्दीपकों या परिस्थितियों को एक आरोही क्रम में रखा जाता है, इसमें सबसे कम चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को सबसे नीचे उससे अधिक चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को उससे ऊपर और इसी प्रकार क्रमिक रूप से एक के बाद एक करते हुए सबसे अधिक चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों या परिस्थिति को सबसे ऊपर रखा जाता है।
3. **असंवेदीकरण की कार्य विधि**

   तीसरे चरण में रोगी को आरामदायक स्थिति में बैठने के लिए कहा जाता है। चिकित्सक चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या दृश्य का वर्णन कर देता है और रोगी से कहा जाता है कि वह अपने-आप को उस परिस्थिति में उपस्थित होने की कल्पना दस से पन्द्रह सेकण्ड तक करें और अपने आपको आराम दायक स्थिति में भी रखे। रोगी द्वारा बताए गए चिंता परिस्थितियों को कम से

ज्यादा के क्रम में वर्णन किया जाता है रोगी से कह दिया जाता है कि यदि कल्पना करते समय चिन्ता बढ़ जाये या भय का अनुभव होने लगे तो अपना दाहिना हाथ उठाये। ऐसी स्थिति में चिकित्सक उसे आदेश देता है कि वह कल्पना करना छोड़ दे तथा शारीरिक शिथिलता की ओर ध्यान को केन्द्रित कर दे। शिथिलता के बाद फिर उसे उस चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में स्वयं के होने की कल्पना करने का निर्देश दिया जाता है। इस तरह कई दिनों तक रोगी को चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति की कल्पना करने और उसकी उपस्थिति में शांत रहने का प्रशिक्षण दिया जाता है। कई सत्रों के बाद रोगी इस हद तक असंवेदनशील बन जाता है कि वह चिन्ता उत्पन्न करने वाली उत्तेजना की उच्चतम स्तर की कल्पना करने में बिना किसी चिन्ता तथा भय के सफल हो जाता है।

गुणः-

1. दुर्भीति के रोगियों के उपचार के लिए यह चिकित्सा विधि काफी उपयोगी है। ओल्प (1961) ने 91% रोगियों को इस प्रविधि के द्वारा रोगमुक्त किया।

2. व्यामोह, मघपानता, औषध-दुरूप्रयोग आदि के उपचार में इस प्रविधि से काफी लाभ होता है।

दोषः-

1. यह प्रविधि ऐसे रोगी के लिए उपर्युक्त नहीं है, जो विश्राम की अवस्था में आने से डरते हैं 2. जो चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या उत्तेजना के सम्बन्ध में भ्रामक सूचना देता है, और जिनमें कल्पना-शक्ति कमजोर होती है।

2. जिन चिन्ता आधारित समस्याओं की उत्पत्ति एक उद्दीपक से न होकर अनेक उद्दीपकों से होती है उनका भी उपचार क्रमबद्ध असंवेदीकरण से ठीक ढंग से नहीं होता है, जैसे - मनोग्रसित - बाध्यता, स्नायुविकृति, दर्दनाक आघात आदि के उपचार में यह प्रविधि अधिक सफल नही पायी गयी है।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद क्रमबद्ध असंवेदीकरण आज भी एक वैध नैदानिक उपचार प्रविधि है।

6.4.2 विरूचि चिकित्सा

व्यवहार चिकित्सा की यह भी एक महत्वपूर्ण प्रविधि है। इसमें किसी दण्ड के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार में सुधार किया जाता है। इसमें व्यक्ति का व्यवहार किसी पुरस्कार से नहीं बल्कि दण्ड या कष्ट से सम्बन्धित हो जाता है।

जैसे, मद्यपान के रोगी उपचार हेतु अल्कोहल में मितली उत्पन्न करने वाला औषध मिला दिया जाता है। जब-जब वह अल्कोहल का सेवन करता है, तब-तब वह उल्टी करता है तथा बीमार पड़ जाता है। कई बार ऐसा करने पर अलकोहल देख कर ही उसे मतली आ जाती है। इस प्रकार अलकोहल के प्रति उसमें अरूचि या विमुखता उत्पन्न हो जाती है और मघपान से उसे मुक्ति मिल जाती है। आवश्यकता के अनुसार

विद्युत-आघात, अन्य प्रतिक्रियाओं के विभेदी प्रबलन आदि का उपयोग करके रोगी में आवंछित व्यवहार के प्रति अरूचि पैदा की जाती है, जिससे वह रोगमुक्त हो जाता है।

यदि किसी बच्चे को मिट्टी खाने की आदत पड़ जाती है तो उसकी मिट्टी में मिर्च या कोई कड़वी वस्तु मिला दी जाती है। जिससे वह धीरेधीरे अपनी मि-ट्टी खाने की आदत छोड़ देता है।

गुणः-

1. मघपान के रोगियों के उपचार में यह एक सफल विधि है।

2. लैगिंक विकृतियों के उपचार के लिए विमुखता चिकित्सा काफी सफल है।

3. इस प्रविधि का व्यवहार बुरी आदतों या अवांछित व्यवहारो के निराकरण में माता पिता तथा शिक्षक बड़े पैमाने पर करते हैं। बच्चे-माता-पिता के द्वारा शारीरिक अथवा षाब्दिक दण्ड के भय से बुरी आदतो को छोड़ देते हैं। इसी प्रकार विद्यालय में शिक्षकों से मिलने वाले दण्ड के भय से विद्यार्थी गलत व्यवहारो को करना छोड़ देते हैं।

4. औषध-व्यसन, धूम्रपान तथा जुआ के उपचार के लिए यह चिकित्सा विधि सफल है।

सीमायें-

1. दण्ड के आधार पर किसी अवांछित व्यवहार का स्थायी निराकरण नही हो पाता है। केवल कुछ समय के लिए उनका दमन या अवरोधन हो जाता है। फलतः बाद में वह व्यवहार फिर विकसित हो जाता है।

2. दण्ड देने से रोगी में दण्ड देने वाले के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति विकसित हो पाती है। बच्चे की मनोवृत्ति माता-पिता या शिक्षक के प्रति तथा रोगी की मनोवृति चिकित्सक के प्रति नकारात्मक बन जाती है और चिकित्सा का उदेश्य पूरा नही हो पाता है।

3. कभी-कभी दण्ड के कारण बालक या रोगी प्रतिक्रियात्मक बन जाता है और आक्रामणकारी तथा हिंसक व्यवहार करने लगता है।

4. यह एक अमानवीय प्रविधि है। अतः उपयोग तभी करना चाहिए जबकि दूसरी प्रविधि उपलब्ध या उपर्युक्त न हो।

इन सीमाओं के बावजूद कुछ विशेष परिस्थितियों में इस विधि का उपरोग करना आवश्यक होता है। जैसे, यदि कोई रोगी आत्मविमोही बच्चा हो जो अपने मांस को ही नोचता हो और उपचार की दूसरी विधियाँ विफल हो गयी हों, तो उसके इस अवांछित व्यवहार को रोकने के लिए विद्युत-आघात नैतिक दृष्टिकोण से भी सही है। ऐसी परिस्थितयों में रोगी के कल्याण के लिऐ विमुखता-चिकित्सा एक वरदान है। लेकिन, साधारण रूप से विक्षुब्ध रोगियों के उपचार के लिए इस चिकित्सा का उपयोग वांछित नहीं है, क्योंकि उनके लिए अन्य चिकित्सा विधियाँ उपलब्ध हैं।

6.4.3 संकेत व्यवस्था

नैमितिक अनुबंधन पर आधारित इस प्रविधि को संकेत-व्यवस्था कहते हैं, इसका उपयोग रोगी के व्यवहार-परिमार्जन के लिए वर्तमान समय में अधिक किया जाता है। मनोविकृति के रोगियों के व्यवहार को परिमार्जित करने के लिए इस विधि का उपयोग एलौन तथा अजरीन (1968) ने सर्वप्रथम में किया।

इस प्रविधि में व्यवस्था ऐसी की जाती है कि जब रोगी अवांछित व्यवहार को छोड़कर वांछित व्यवहार करता है तो उसे छोटा कार्ड, नकली सिक्का या इसी तरह की कोई वस्तु दी जाती है। इसी वस्तु को संकेत या टोकेन कहते है। रोगी इस संकेत की सहायता से अस्पताल में उपलब्ध अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी चीज जैसे विषिश्ट भोजन, सिगरेट, समाचार पत्र, मैगजीन, आदि कुछ भी खरीद सकता है।

स्पष्ट तः यह संकेत या टोकेन घनात्मक प्रबलक का काम करता है। इस प्रबलक या पुरूस्कार को प्राप्त करने के लिए रोगी वांछित व्यवहार करने के लिए वाध्य होता है। अवांछित व्यवहार धीरे-धीरे कमजोर होकर समाप्त हो जाता है और वांछित व्यवहार सबल हो जाता है और रोगी इसी वांछित समापत कर लेता है। इस धनात्मक प्रबलक का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से उन रोगियों पर भी पड़ता है, जिन्होंने अब तक संकेत या टोकेन अर्जित करने का प्रयास नहीं किया है। वे भी पुरूस्कार के प्रभाव-प्रसार के कारण अवांछित व्यवहार को छोड़ने तथा तथा वांछित व्यवहार करके टोकेन हासिल करने पर बाध्य होते हैं और अन्त में अपने अवांछित व्यवहार से मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रविधि में सांयोगिक प्रबलन कार्यक्रम को विकसित करने के लिये तीन बातो पर ध्यान देना होता है।

I. पहली अवस्था में रोगी के लिये वांछित व्यवहारो को नामित किया जाता है।
II. दूसरी अवस्था में विनिमय के माध्यम को निर्धारित किया जाता है।
III. तीसरी अवस्था में संकेत या टोकन के मूल्य को निर्धारित किया जाता है।

गुणः-

1. इस प्रविधि का उपयोग करके मानसिक रोगियों को अपने व्यवसाय उत्तरदायित्व को निभाना, समय पर नित्यक्रम को पूरा करना, आदि वांछित व्यवहार सिखाये जा सकते हैं।

2. संकेत व्यवस्था प्रविधि से रोगी में व्यवसाय तथा सामाजिक जीवन से सम्बन्धित वांछित व्यवहारों को विकसित करने में मदद मिलती है।

3. व्यवहार परिमार्जन की यह प्रविधि अपराधियों तथा बिक्षुब्ध एवं समस्यात्मक स्कूली बालकों के उपचार के लिए भी काफी सफल है।

4. यह प्रविधि मनोविकृति के रोगियों के उपचार के लिए उपर्युक्त तथा सफल पाया।

सीमायें

1. इस प्रविधि के द्वारा सभी तरह के रोगियों के व्यवहारो को परिमार्जित करना सम्भव नही होता है। विशेष रूप से गंभीर मानसिक विकृतियों का उपचार इस विधि से संभव नहीं होता है।

2. इसके स्थायी उपचार बहुत कम होता है। अस्पताल से निकलने के बाद जब रोगी वास्तविक जीवन में पहुँचता है और धनात्मक प्रबलन बन्द हो जाता है तो रोगी के विलोपित अवांछित व्यवहार पुनः लौट आते हैं।

3. रोगी में एक अवांछित व्यवहार समाप्त होता है तो दूसरा अवांछित व्यवहार ''कुछ पाने की आदत के रूप में विकसित हो जाता है। वास्तविक जीवन में समायोजित होने के मार्ग में यह बुरी आदत बाधित होती है।

इन सीमाओ के बावजूद व्यवहार परिमार्जन की इस प्रविधि का उपयोग वर्तमान समय में व्यापक रूप से किया जाता है। इससे रोगियो के प्रति कर्मचारियों की रूचि तथा उमंग बढ़ती है।

6.4.4 फ्लडिंग

व्यवहार चिकित्सा की इस प्रविधि को अनावरण विधि भी कहते हैं। फ्लडिंग विधि में रोगी को तुरन्त अत्यधिक चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में डालकर उसका उपचार किया जाता है। यह विधि इस अभिधारणा पर आधारित है कि जब व्यक्ति को तनावपूर्ण परिस्थिति या चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में डाल दिया जाए तो वह चिन्ता के प्रति अन्ततः समायोजित हो जायेगा और चिन्ता घट जायेगी। जब रोगी को चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के सम्बन्ध में केवल सोचने के लिए कहा जाता है तो इसे संज्ञानात्मक फ्लडिंग कहा जाता है।

उदाहरण - जो रोगी अन्धकार से डरता है उसे अत्यधिक अन्धकार स्थान में जाने तथा वहाँ तब तक ठहरने का निर्देषन किया जाता है जब तक कि उसकी चिन्ता घटने नहीं लगता है। रोगी को चिकित्सक हिम्मत दिलाता है कि उसे चाहे जितना भी चिन्ता या भय महसूस हो, वह उस स्थान पर डटा रहे। रोगी को आदेश दिया जाता है कि वह भय से बचने का प्रयास न करें, बल्कि साहस के साथ उसका सामना करें। ऐसा करने पर चिन्ता की तीव्रता घटने लगती है। कई सत्रों के बाद अन्धकार के प्रति उसकी चिन्ता दूर हो जाती है।

फ्लडिंग प्रविधि तथा असंवेदीकरण प्रविधि में इतनी समानता है कि दोनो में रोगी को चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति असंवेदीकरण बनाने का प्रयास किया जाता है, लेकिन अन्तर यह है कि क्रमबद्ध असंवेदीकरण में चिन्ता के स्तर को क्रमश: बढ़ाया जाता है और रोगी को उसका सामना करने के लिए कहा जाता है। फ्लडिंग में ऐसी व्यवस्था नहीं रहती है यहाँ रोगी को एकाएक चिन्ता के उच्चतम स्तर का सामना करने के लिए बाध्य किया जाता है। दूसरा अन्तर यह है कि असंवेदीकरण में रोगी चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रहने की मात्र कल्पना करता है जबकि फ्लडिंग में रोगी शारीरिक रूप से उपस्थित होकर उस चिन्ता का सामना करता है। कभी-कभी आडियो टेप या वीडियो टेप के द्वारा इस कार्य को संचालित किया जाता है। इस आधार पर यह विधि अन्तः स्फोटात्मक विधिः से भी भिन्न है, जिसमें रोगी अत्यधिक चिन्ता वाली परिस्थिति में होने की मात्र कल्पना करता है।

गुणः-

1. फ्लडिंग का एक गुण यह भी है कि यहाँ रोगी का उपचार वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है इसलिए उपचार अधिक स्थायी होता है। यह गुण असंवेदीकरण में नहीं है।

2) फ्लडिंग इस अर्थ में असंवेदीकरण से बेहतर है कि जिन रोगियो में कल्पना शक्ति कमजोर होती है, उनके उपचार के लिए यह विधि अधिक उपयुक्त, सफल तथा प्रमाणित होती है।

3. इस प्रविधि का एक गुण यह है कि उपचार कोई प्रतिकूल प्रभाव बाद में रोगी के समायोजन पर नहीं पड़ता है, क्योंकि यहाँ रोगी का उपचार वास्तविक परिस्थिति में ही किया जाता है।

सीमायें

1. मनोविकृति के रोगियो के उपचार के लिए यह चिकित्सा विधि उपयुक्त तथा सफल नहीं है।

2. मनोग्रसित बाध्यता, रूपान्तरण उन्माद आदि के रोगियो को इस विधि से लाभ नही होता है।

3. इस चिकित्सा प्रविधि का एक गम्भीर दोश यह है कि जब रोगी को एकाएक चिन्ता या भय उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में डाल दिया जाता है तो कभी-कभी उसकी चिन्ता और भी तीव्र बन जाती है और कभी-कभी तीव्र भय के कारण रोगी को प्राण जा सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि फ्लडिंग प्रविधि के कई गुण तथा दोश हैं। अतः आवश्यतानुसार इस प्रविधि का उपयोग किया जाना चाहिए।

6.4.5 दृढ़कथन प्रशिक्षण

यह चिकित्सा-प्रविधि ओल्प द्वारा प्रतिपादित अवरोध सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें चिकित्सक रोगी को चिन्ता या द्वन्द उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में दृढ़ व्यवहार करने का निर्देश देता है। वह रोगी को सलाह देता है कि वह अपनी सामर्थ्य को समझे, अपने अधिकार पर दृढ़ रहे तथा निष्चयपूर्वक दूसरों के साथ व्यवहार करे। ऐसा लगातार करते रहने पर रोगी का आत्मविश्वास प्रबल बन जाता है, और उसकी समस्या का समाधान हो जाता है।

इस प्रविधि में इस प्रविधि में रोगी की अपने विचारों, विष्वासों तथा अपनी नाराजगी के भावों को अधिक सहज रुप से व्यक्त करने में सहायता की जाती है। दृढ़कथन प्रशिक्षण की कार्यविधि में विडियो टेप अथवा वास्तविक सत्र रोगी के सामने प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें कोई निपुण व्यक्ति रोगी के लिए चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति निश्चयात्मक रूप से व्यवहार करता है। बाद में रोगी को उस परिस्थिति के प्रति उसी तरह के निश्चयात्मक रूप से व्यवहार को दोहराने का निर्देषन दिया जाता है। इस कार्यविधि को तब तक दोहराया जाता है। जब तक कि रोगी निश्चयात्मक व्यवहार करने में सक्षम नही हो जाता है।

गुण

1) यह चिकित्सा प्रविधि ऐसे रोगियों के लिए काफी लाभदायक है जो संकोची तथा अंतर्मुखी होते हैं। साथ ही यह प्रविधि ऐसे लोगो के उपचार में भी कारगर है जो अपने विचारो को व्यक्त नहीं कर पाते है तथा चिन्ता, हीन भावना और तनाव से पीड़ित रहते हैं।

2) दृढ़कथन प्रशिक्षण द्वारा वैवाहिक समस्याओं से पीड़ित पति-पत्नी, अन्तवैयक्तिक समस्याओं से ग्रसित किषोर एवं व्यस्क, औषध व्यसनी तथा आक्रमक प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों का उपचार आसानी से किया जा सकता है।

सीमायें

1. इस प्रविधि से ऐसे रोगियों को लाभ नहीं होता जो सत्तावादी स्वभाव के होते हैं।

2. यह विधि ऐसे रोगियों के लिए उपयुक्त नहीं है जो बर्हिमुखी होते हैं।

3. सभी मानसिक रोगों के उपचार में यह चिकित्सा विधि उपयुक्त तथा लाभकारी नहीं होती है।

स्पष्टतः दृढ़कथन प्रशिक्षण एक उपयोगी व्यवहार चिकित्सा प्रविधि है तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में तो इस प्रविधि का उपयोग आवश्यक बन जाता है।

6.4.6 व्यवहार प्रतिरूपण

बन्डूरा (1969, 1971) ने इस प्रविधि को विकसित किया है इसे व्यवहार प्रतिरूपण या मॉडलिंग कहते हैं। इस चिकित्सा प्रविधि में चिकित्सक मॉडल के रूप में कोई वांछित व्यवहार को रोगी के सामने प्रदर्शित करता है और रोगी उसका प्रेक्षण करता है, जिससे उसे उसी तरह के व्यवहार को करने की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार उसके अवांछित व्यवहार परिमार्जित हो जाते है और वह वांछित व्यवहार करना सीख लेता है। कभी-कभी रोगी को फिल्म के माध्यम से उसमें अपने व्यवहार को देखने का अवसर दिया जाता है और उसे अपने व्यवहार में आवश्यक परिवर्तन लाने का सुझाव दिया जाता है ताकि उसका व्यक्ति उन्नत बन सके।

उदाहरण-बन्डूरा (1969 ने अपने अध्ययन में देखा कि जो बच्चे अपने माता-पिता को आक्रमणकारी व्यवहार को लगातार करते देखते है वे आगे चलकर आक्रमणकारी व्यवहारो का प्रदर्षन अधिक करते हैं। जिन बच्चो को टी0वी0 पर आक्रमणकारी व्यवहार अधिक देखने का अवसर अधिक दिया गया, आगे चलकर उनमें आक्रमणकारी व्यवहार अधिक देखे गये। जब उन बच्चों को गैर-आक्रमणकारी व्यवहार को देखने का अवसर बार-बार दिया गया तो धीरे-धीरे उन्होंने आक्रमणकारी व्यवहारो के स्थान पर गैर-आक्रमणकारी व्यवहारों को अर्जित कर लिया। इस प्रकार दूसरों के व्यवहारो के प्रेक्षण तथा अनुकरण के आधार पर व्यवहार-परिमार्जन सम्भव होता है।

बन्डूरा आदि (1967) ने एक अन्य अध्ययन में स्कूली बच्चों के एक समूह (प्रयोगात्मक समूह) को चार साल के एक बच्चे को एक कुत्ते के साथ बिना किसी भय के खेलते हुए कई बार दिखलाया। बच्चों के दूसरे समूह (नियन्त्रित समूह) को यह अवसर नहीं दिया गया। देखा गया कि प्रयोगात्मक समूह के 67% तथा नियन्त्रित समूह के केवल 33% बच्चों ने कुत्ते के साथ अकेले रहना पसन्द किया।

गुण-

1. व्यवहार प्रतिरूपण से नये कौशलों तथा व्यवहारो को सीखने का अवसर मिलता है।

2. प्रतिरूपण से भय तथा अवरोध को दूर करने में मदद मिलती है।

3. यह प्रविधि प्रेक्षण तथा अनुकरण के आधार पर व्यवहार परिमार्जन पर बल देती है। इससे व्यवहार में हुआ परिवर्तन तुलनात्मक रूप से अधिक स्थायी होता है।

4. आक्रमणकारी प्रतिक्रियाओं को दूर करने में भी प्रतिरूपण एक सफल प्रविधि प्रमाणित होती है।

5. समायोजनात्मक सामाजिक व्यवहार के प्रसार को बढ़ाने में भी यह चिकित्सा प्रविधि काफी सफल है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यवहार चिकित्सा प्रविधि के रूप में प्रतिरूपण काफी सफल है। व्यवहार परिवर्तन के लिए इस चिकित्सा प्रविधि का उपयोग सफलतापूर्वक किया जाता है क्योंकि लोग दूसरे लोगों के व्यवहारों का अवलोकन करके सीखने की अधिक प्रवृति रखते हैं।

6.4.7 बायोफीडबैक प्रविधि

व्यक्ति जब अपनी स्वायत्त अनुक्रियाओं का नियन्त्रण व्यवहारपक पुर्नबलक के माध्यम से करता है तो उसे बायोफीडबैक कहते हैं। इसमें विशेष विद्युत उपकरण के माध्ययम से रोगी को उसकी शारीरिक क्रियाओं के बारे में सचूना तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित अनैच्छिक क्रियाएँ जैसे मस्तिश्क तरंग, हृदय गति, रक्त चाप, त्वचा का तापमान आदि आती है। इन अनैच्छिक क्रियाओ में परिवर्तिन लाने का प्रशिक्षण देकर रोगी को कुसमायोचित व्यवहार के स्थान पर समायोजित व्यवहार सिखाया जाता है। इस प्रकार रोगी स्वायत तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित मनोशारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण अर्जित करना सीख जाता है।

इस प्रविधि में एक विशेष विद्युत व्यवस्था या उपकरण रोगी को किसी शारीरिक क्रिया द्वारा के सम्बन्ध में सूचना वापस ढंग से मिल जाती है कि उस क्रिया को मॉनीटर करना सम्भव हो जाता है। कई बार दोहराने के बाद रोगी उस मनोशारीरिक क्रिया को नियन्त्रित करना सीख लेता है जिससे उसकी समस्या का समाधान हो जाता है।

जैसे मान लें कि एक व्यक्ति तेज हृदय क्रिया की समस्या से पीड़ित है। बायोफीडबैक के माध्यम से उसका उपचार करने के लिए एक विशेष व्यवस्था के तहत रोगी के हृदय की क्रिया का ग्राफीय रिकार्ड तैयार किया जाता है, जिसको रोगी देखता रहता है। उसे निर्देश दिया जाता है कि वह इसकी गति कम करने का प्रयास करे। श्रवण पुनबर्लक द्वारा वह अपने हृदय की धड़कन को सुनता है और उसे हृदयगति की बारम्बता को कम करने के लिये निर्देशन दिया जाता है। कई बार इस कार्यविधि को दोहराने पर वह अपने हृदय को नियन्त्रित करना सीख लेता है और तेज हृदयगति को कम करना सम्भव हो जाता है।

गुण

1. यह चिकित्सा विधि विशेष रूप से उच्च रक्तचाप के रोगियों के उपचार के लिए उपयुक्त तथा सफल है।

2. इस चिकित्सा विधि से मनोदैहिक विकृतियों का उपचार करना अधिक सरल होता है।

3. तनाव-सिरदर्द के उपचार के लिए यह चिकित्सा विधि बहुत उपयोगी है।

4. मिरगी के दौरों को नियन्त्रित करने में भी यह चिकित्सा प्रविधि सफल है।

5. यह प्रविधि अधिक वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय है।

सीमायें

1. यह चिकित्सा प्रविधि ऐसे रोगियों के लिए उपयुक्त नहीं है जो अपनी चिकित्सा के प्रति प्रेरित नही होते हैं।

2. इस चिकित्सा विधि से मनोविकृति के रोगियों को कोई लाभ नहीं होता है।

3. इस प्रविधि का उपयोग करना कठिन होता है। इसके लिए निपुण तथा प्रशिक्षित चिकित्सक की आवश्यकता होती है। ऐसे चिकित्सक के अभाव में इसका समुचित उपयोग सम्भव नहीं होता है।

4. बायोफीडबैक उपकरण काफी महंगे होते हैं।

इन सीमाओं के बावजूद बायो फीडबैक व्यवहार चिकित्सा प्रविधि बहुत हद तक सफल तथा प्रभावी है।

6.4.8 संभाव्यता प्रबन्धन

संभाव्यता प्रबंधन प्रविधि में संक्रियात्मक अनुबंधन के आधार पर व्यवहार परिमार्जन किया जाता है। इसमें व्यवहार का परिणाम (पुरूस्कार या दंड आदि) रोगी के व्यवहार के स्वरूप पर (उचित या अनुचित पर) निर्भर करता है। व्यवहार का परिणाम व्यक्ति के सामने तभी प्रस्तुत किया जाता है जब उसके द्वारा सिर्फ उस व्यवहार को किया जाता है जिसे मजबूत करना है अथवा जिसे कमजोर करना है। सरल शब्दो में कहा जा सकता है कि किसी अनुक्रिया या व्यवहार की आवृति को परिवर्तित करने के उददेश्य से उस अनुक्रिया में किये गये परिवर्तन को संभाव्यता प्रबंधन कहते हैं। इनके निम्नलिखित रूप हैं-

I. **शेपिंग**-व्यवहार चिकित्सा में शेपिंग एक सफल विधि है। इसे कभी-कभी आनुक्रमिक सन्निकटन की प्रविधि भी कहा जाता है। इसका आशय है रोगी के उसे व्यवहार को प्रबलित करना जो अपेक्षित व्यवहार के अधिक से अधिक सन्निकट या समान हो यह प्रविधि वैसे व्यवहारो की उत्पत्ति में लाभप्रद है जो रोगी की वर्तमान क्षमता से थोड़ा ऊपर होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रविधि मानसिक रूप से मंदित बच्चो को नए कौशल सीखाने एवं सामान्य बच्चों को ठीक से बोलना तथा संगत सोच आदतो को सीखने में भी उपयोगी हैं।

II. **समय बहिर्गामी**-यह विलोपन पर आधारित प्रविधि है। इसमें कुसमायोजित व्यवहार की आवृति पर व्यक्ति को उस परिस्थिति से दृढ़ कर दिया जाता है, जिसमें उस व्यवहार को करने के व्यापक पुनर्बलक होते हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा का एक बालक शोर मचाकर अध्यापक तथा साथी बालकों का ध्यान अपनी तरफ खींचकर पुनर्बलन प्राप्त करने का आदी है, तो उसे कुछ समय के

लिए कक्षा से हटाकर अन्य कक्ष में एकान्त में बैठा दिया जाये तो धीरे-धीरे उसके शोर मचाने का व्यवहार स्वयं ही विलोपित हो जायेगा।

III. **अनुक्रिया लागत**-यह प्रविधि दण्ड संभाव्यता पर आधारित हैं। इसमें व्यक्ति द्वारा अवांछित व्यवहार करने पर पुरस्कार से हाथ धोना पड़ता है या देय सुविधा को हटा लिया जाता है। जैसे, धूम्रपान करने वाले पर आर्थिक दण्ड लगाना, इससे आक्रामकता तथा नियमों के उल्लंघन आदि व्यवहार को सफलतापूर्वक परिमार्जित किया जा सकता है।

IV. **संभाव्यता अनुबन्ध**-इस व्यवहार प्रविधि में रोगी तपा चिकित्सक के बीच एक औपचारिक अनुबन्ध होता है। इसमें दोनों के लिए कुछ विशिष्ट तरह के व्यवहार की शर्तें होती है। इस अनुबन्ध में रोगी एवं चिकित्सक दोनों की जवाबदेहियाँ, पुरस्कार, मॉनीटर करने का तंत्र, विशेष कार्यों के लिए विशेष लाभ तथा षर्तों को तोड़ने पर दंड़ का उल्लेख होता है। यह प्रविधि औषध व्यसन, मोटापा कम करने तथा वैवाहिक एवं पारिवारिक समस्याओं को कम करने में उपयोगी है।

V. **प्रीमैक नियम**-इसके अन्तर्गत दो व्यवहारों में वरीयता के आधार पर व्यवहार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जैसे, किसी बच्चे को खेलने की इच्छा है, तो उससे कहा जा सकता है, कि पहले पढ़ाई का कार्य पूर्ण कर ले उसके बाद वह खेलने जा सकता है। इससे बालक अपना पढ़ाई का काम शीघ्रता से कर लेगा।

6.5 व्यवहार चिकित्सा का मूल्यांकन

व्यवहार चिकित्सा में अनुबंधन, अधिगम जैसे क्लासिकी अनुबंधन, नैमितिक या क्रियाप्रसूत अनुबंधन, प्रेक्षणात्मक अधिगम पर आधारित विभिन्न प्रविधियों के माध्यम से रोगी के व्यवहार में परिवर्तन लाकर उसे रोगमुक्त किया जाता है। व्यवहार चिकित्सा के प्रमुख **गुण** निम्न हैं-

(1) व्यवहार चिकित्सा अधिगम के स्पष्ट नियमों पर आधारित होती है। अतः इसमें चिकित्सक की योग्यता एवं दक्षता आदि अन्तवैयक्तिक कारको का कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता है।

(2) व्यवहार चिकित्सा वस्तुनिश्ठ, संक्षिप्त एवं यथार्थ विधि है अतः इस विधि से प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय होते हैं तथा वैज्ञानिक एवं यथार्थपूर्ण तरीके से उसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

(3) इस विधि का क्षेत्र व्यापक है। इसका उपयोग व्यावसायिक चिकित्सको के अतिरिक्त नर्सों, सहायकों, तथा अन्य स्टाफ सदस्यों को भी सिखाया जा सकता है।

(4) इस विधि द्वारा उपचार करने में कम समय एवं कम खर्च लगता है।

(5) व्यवहार चिकित्सा शिक्षित तथा अषिक्षित सभी तरह के रोगियों के लिए उपर्युक्त है। यह परम्परावादी अन्य चिकित्सा विधियों की उपेक्षा जनसंख्या के अधिक बड़े भाग को लाभ पहुंचाती है।

सीमाएँ

1) व्यवहार चिकित्सा में रोगी के व्यवहार के कारकों को दूर नहीं किया जाता है, बल्कि केवल लक्षणो को दूर किया जाता है, इसलिए पुनर्बलक का हटा देने पर व्यवहार के पुनः उभरने की संभावना बन जाती है।

2) व्यवहार चिकित्सा आत्मबोध के विकास पर कोई बल नहीं देती, बलिक यह मात्र लक्षणों के उपचार पर बल देती हैं, इसलिए अनेक नैदानिक मनौवैज्ञानिक इस चिकित्सा विधि को सतही मानते हैं।

3) व्यवहार चिकित्सा अस्तित्ववादी स्नायुविकृति, व्यापक चिन्ताओं आदि अस्पष्ट प्रकृति वाली समस्याओं के उपचार में अधिक सफल नहीं हैं।

इन सीमाओं के बाबजूद भी व्यवहार चिकित्सा का उपयोग आज भी बड़े पैमाने पर किया जाता है।

6.6 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में रोगी की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर उपचार किया जाता है । इस पद्धति में मानसिक रोगों का कारण चिंतन या संज्ञान को माना जाता है। निटीजिल, वर्नस्टीन तथा मिलिक, (1994) ने संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा पद्धति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि " इस पद्धति को ऐसी उपचार उपागम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो रोगी के संज्ञान (विश्वास, स्कीमा, आत्मकथन और समस्या समाधान उपाय) को प्रभावित करके रोगी के कुसमायोजित व्यवहार को परिवर्तित करने का प्रयास करता है ।

स्वरूप -

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में असामान्य या कुसमायोजित व्यवहार का कारण गलत संज्ञान या चिंतन माना जाता है।

इस चिकित्सा में रोगी के इस गलत संज्ञान या चितन को दूर करके उसके जगह पर सही संज्ञान या चिंतन विकसित करने की कोशिश की जाती है। जिसे संज्ञानात्मक पुनर्सरचना कहा जाता है।

लक्ष्य

1. रोगी के लक्षणों को दूर करके उन्हें समस्या समाधान में मदद करना।
2. रोगी में कुछ इस ढंग की युक्तियाँ विकसित की जाती है, जिसके सहारे वह अपने भविष्य की समस्याओं से निबट सके।
3. रोगी को इस ढंग से मदद करना ताकि वह अपने अतार्किक तथा आत्महीनता की सोच से हटकर - तार्किक तथा धनात्मक विचारों पर अपना ध्यान लगा सके।

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा विशिष्ट समस्याओं वाले लोगों के लिए विशेष रूप से सहायक होती है ऐसा इसलिए क्योंकि यह बहुत व्यावहारिक होती है तथा अंतर्दृष्टि के समस्या को सुलझाने पर असर दिखाई देता है। निम्न प्रकार के लोग संज्ञानात्मक व्यवहार थेरेपी से लाभ उठा सकते हैं:

- जो लोग अवसाद या चिंता से ग्रस्त हैं।
- जो लोग पोस्ट-ट्रामाटिक तनाव विकार)PTSD) से पीड़ित हैं।
- जिनको खाना खाने सम्बंधी विकार है।
- जिनको कोई लत है।
- जो लोग नींद की समस्याओं का सामना कर रहे हैं, जैसे कि अनिद्रा।
- जिनको कोई डर या भय है।
- जो मनोग्रस्तता बाध्यता (OCD)विकार से ग्रस्त हैं।
- जो लोग अपने व्यवहार को बदलना चाहते हैं।

इसके अतिरिक्त यह उन लोगों के लिये भी फायदेमंद है जो किसी स्वास्थ्य सम्बंधी लम्बी बीमारी से ग्रसित हैं और लम्बे समय से चिडेचिडेपन के शिकार हैं। यह उनकी बीमारी का इलाज नहीं करती परंतु उनको तनाव प्रबंधन में भावनात्मक रूप से मदद करती है।

6.7 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकार

.1 रेशनल इमोटिव चिकित्सा

2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा
3. तनाव टीका चिकित्सा-
4. बहुआयामी चिकित्सा

6.7 .1 रेशनलइमोटिव चिकित्सा-

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन एल्वर्ट इल्लिस (1958, 1975) द्वारा किया गया। इसे संक्षेप में RET कहा जाता है। इस चिकित्सा विधि की पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी का सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण आंतरिक एवं अतर्कसंगत विचार एवं विश्वास होते हैं। यह विश्वास तथा विचार व्यक्ति में होता है तथा जो उन्हें यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि उनकी खुशी के लिए उनकी इच्छाओं को पूरा करना जरूरी है। यहाँ चिकित्सक रोगी के ऐसे अविवेकपूर्ण व्यवहार तथा विश्वासों की खोजबीन करता है, चिकित्सक रोगी के मन में ऐसे विश्वासों को हटाकर उनमें नया विश्वास तथा आशा विकसित करता है ताकि वह फिर से समायोजित या अनुकूलित व्यवहार करने लगे। इस तरह से चिकित्सक रोगी के विश्वास तथा आत्म कथनों को बदलकर फिर से बनाने का प्रयास करता है।

.1 पहली विधि तो यह है जिसमें रोगी के सामने विवेकपूर्ण तथ्य लाये जाते है और उसके गलत विश्वासों और नकारात्मक सोच को बदला जाता है

2. दूसरी विधि वह है कि जिसमें चिकित्सक रोगी को कुछ सजृनात्मक कार्य करने को देता है जिससे उसके व्यवहार एवं चिन्तन में परिवर्तन आता है। जैसेकार्य के रूप में कुछ कार्य या -चिकित्सक रोगी को गृह-अभ्यास करने को दे देता है। अपने गलत विश्वास के विरूद्धकार्य करते समय रोगी को मनही--मन यह सोचने के लिए कहा जाता है, मैं सचमुच में एक अच्छा काम कर रहा हूँ।''

गुणः-

I. RET अत्यधिक क्रोध, विषाद तथा समाज विरोधी व्यवहार को कम करने का प्रयास किया जाता है ।

II. RET द्वारा उन लोगों की भी मदद की जाती है जो सांवेगिक रूप से बीमार न होकर स्वस्थ है परन्तु दिन प्रतिदिन की समायोजन में कुछ सामान्य कठिनाई होती है।

दोषः -

सामाजिक चिन्ता को कम करने में RET अन्य दूसरी प्रविधि जैसेक्रमबद्ध असंवेदीकरण की तुलना - में कम लाभदायक है।

6.7. 2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन ए0टी0 बेक)1979) द्वारा विषादी रोगियों के चिन्ता विकृतियों तथा दुर्भीति के उपचार के लिए किया गया था। बेक की इस चिकित्सा पद्धति की पूर्वकल्पना यह है कि जब रोगी का स्वयं अपने बारे में, अपने वातावरण के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में अतार्किक चिन्तन होता है तो विषाद जैसी समस्या उत्पन्न होती है। इस तरह की अतार्किक चिन्तन रोगी को अपने बारे में, अपनी दुनिया के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में निराशवादी ढंग से सोचने के लिए मजबूर करता है। बेक ने इन तीन तरह के अतार्किक एव गलत चिन्तन को **'संज्ञानात्मक त्रिक'** कहा है।

विषादी रोगियों में विकृत चिन्तन के कई प्रकारों का वर्णन किया है, जिनमें निम्नांकित प्रमुख है।

1. **मनचाहा अनुमान-** इसमें रोगी अपर्याप्त या अतर्कसंगत सूचनाओं के आधार पर अपने बारे में अनुमान लगाता है। जैसेयदि किसी व्यक्ति को यह विचार आता है कि वह बेकार है क्योंकि उसे - किसी शादी में नहीं बुलाया गया तो यह मनचाहा अनुमान का उदाहरण होगा।
2. **आवर्धन-** इसमें रोगी किसी छोटी घटना को बढ़ायदि -चढ़ा कर सोचता है और बताता है। जैसे- कोई व्यक्ति यह सोचता है कि उसके द्वारा बनाया गया मकान बेकार हो गया क्योंकि उसमें पूजाघर के लिए कोई जगह नहीं बच सका, तो इस तरह का चिंतन आवर्धन का उदाहरण होगा।

3. **न्यूनीकरण-** इसमें रोगी बडी घटना को बहुत छोटा कर उसके बारे में विकृत ढंग से सोचता है। यह आवर्धन के विपरीत है। जैसेयदि कोई छात्र यह सोचता है कि वह केवल भाग्य के भरोसे परीक्षा में - सफल हो पाया है जबकि वह मूर्ख एवं बुद्धिहीन है, तो यह न्यूनीकरण का उदाहरण होगा।

इस चिकित्सा में रोगी को कुछ ऐसे व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिसमें वे अपने बारे में कुछ ऐसी सूचना इकट्ठा कर सके जिससे वे स्वयं ही अपने गलत विश्वास को हटा सके। संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के निम्न उपायों पर बल डाला जाता है।

1. संज्ञान, संवेग तथा व्यवहार के बीच संबंधों की पहचान करना।
2. गलत विश्वासों एवं विकृतियों मे परख करना।
3. कुछ 'गृह-कार्यों ' को करना जिससे रोगी में निराशावादी सोच नही आ पाती और वह नये चिंतन उपायों का रिहर्सल करता है।

6.7.3 तनाव टीका चिकित्सा

यह चिकित्सा विधि एक तरह का आत्मनिर्देशन विधि- है। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी की समस्या का मूल कारण उसके व्यर्थ या बेकार के विश्वास होते है जो व्यक्ति में नकारात्मक सांवेगिक अवस्था एवं कुसमायोजित व्यवहार उत्पन्न करते है। इस चिकित्सा विधि में यह निश्चित किया जाता है कि रोगी किन किन-तरह के तनावों से ग्रस्त रहा है। उसके संज्ञान में किस तरह से परिवर्तन लाया जा सकता है ताकि वह इन तनावों के साथ ठीक ढंग से समायोजन करके चिन्तामुक्त हो सके।

चरणः इस चिकित्सा विधि के निम्नलिखित चरण हैः -

1. **तैयारी की अवस्था -** इस अवस्था में चिकित्सक तथा रोगी एक साथ मिलकर समस्या या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों या परिस्थितियों का पता लगाते है चिकित्सक एवं रोगी दोनों मिलकर कुछ ऐसे नये आत्मकथन तैयार करते है जो रोगी के लिए अधिक समायोजी साबित होता है-।
2. **अभ्यास की अवस्था -** इस अवस्था में रोगी समायोजित आत्मकथनों को सीखता है तथा तनाव - उत्पन्न करने वाली काल्पनिक परिस्थिति मे ही अभ्यास करता है।
3. **उपयोग एवं अभ्यास की अवस्था -**इस अवस्था को इस ढंग से व्यवस्थित किया जाता है कि रोगी को पहले हल्का फुल्की तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है और जैसे- जैसे उसमें आत्मविश्वास आता जाता है उसे गंभीर रूप से तनाव उत्पन्न करने वाले परिस्थिति में रखकर उसमें आत्म -विश्वास उत्पन्न करने की कोशिस की जाती है। तनाव टीका चिकित्सा का सफलतापूर्वक उपयोग कई तरह की नैदानिक समस्याओं के उपचार में किया गया है। जैसे ;मैकेनवाम 1975) ने इस विधि का उपयोग चिंता के उपचार में सफलतापूर्वक किया है।

6.7.4 बहुआयामी चिकित्सा: इस चिकित्सा पद्धति का विकास **लेजारस (1973, 1989)** द्वारा किया गया है। इस चिकित्सा पद्धति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक कई तरह की चिकित्सीय पद्धतियों को एक

साथ मिलाकर रोगी का उपचार करते हैं। लेजारस के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में निम्नलिखित सात विमायें होती हैं।

1. व्यवहार
2. भावनात्मक प्रक्रियाएँ
3. संवेदन
4. प्रतिमा
5. संज्ञान
6. अन्तर्वैयक्तिक संबंध
7. औषध

इन सातों का संक्षेप में लेजारस ने **BASIC ID** के रूप में बताया है। लेजारस के इस चिकित्सा पद्धति की मान्यता यह है कि एक चिकित्सक को इन सातों या उनमें से कुछ क्षेत्रों की समस्याओं की पहचान करके उसी के अनुसार चिकित्सा पद्धति का उपयोग करना चाहिए। सबसे पहले चिकित्सक इस समस्याओं की पहचान करता है और उन्हें एक क्रम में व्यवस्थित करता है। उसके बाद इनके समाधान के लिये चिकित्सा विधि को अपनाता है।

लाभ-

a) बहुआयामी चिकित्सा का एक प्रमुख लाभ यह है कि इसमें रोगी की समस्याओं की पहचान अलगअलग विमाओं के आधार पर की जाती है और उसी के अनुरूप चिकित्सा की जाती है। इसलिये - इससे रोगी की समस्याओं का उपचार पूरी तरह से सम्भव हो पाता है।

b) इससे रोगी पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और उसमें समायोजी लक्षण तेजी से विकसित होते हैं।

6.8 सारांश

व्यवहार चिकित्सा नैदानिक मनोविज्ञान में प्रयोग की जाने वाली एक लोकप्रिय पद्धति है। ये रूसी मनोवैज्ञानिक पैवलोव के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति की आधारभूत मान्यता है कि असामान्य व्यवहार का कारण व्यक्ति के द्वारा अपेक्षित समायोजनपूर्ण प्रतिक्रियाओं को न सीख पाना है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगी को सही प्रकार की प्रतिक्रियाओं को सिखाया जाता है। इसमें रोगी के उपचार के लिये उसके लक्षणों को दूर करने का सीधा प्रयास किया जाता है। इसके द्वारा असमायोजित आदतों को कमजोर किया जाता है और उनको त्याग दिया जाता है। इसमें समायोजित आदतों की शुरूआत की जाती है तथा उन्हें मजबूत किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया के पीछे अनुबन्धन की विधि को अपनाया जाता है।

व्यवहार चिकित्सा के अंतर्गत कई प्रविधियों का उपयोग किया जाता है- क्रमबद्ध असंवेदीकरण, विरूचि चिकित्सा, संकेत व्यवस्था, फ्लडिंग, दृढ़कथन प्रशिक्षण, व्यवहार प्रतिरूपण, बायोफीडबैक प्रविधि

एवम संभाव्यता प्रबन्धन यह एक ऐसी व्यवहार चिकित्सा है जिसमें मानसिक रोग का कारण संज्ञान या चिन्तन माना जाता है। इसमें रोगी गलत चिन्तन तथा विश्वास का त्याग करके उसकी जगह पर उपयुक्त चिन्तन एवं विश्वास अपनाता है और समायोजी व्यवहार करने में सफल हो पाता है। संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के अंतर्गत इन विधियों द्वारा चिकित्सा की जाती है- रेशनलइमोटिव चिकित्सा-, बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा, तनावटीका चिकित्सा- एवम बहुआयामी चिकित्सा आदि।

6.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

1. क्रमबद्व असंवेदीकरण व्यवहार चिकित्सा में किसी दण्ड के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार में सुधार किया जाता है। सत्य /असत्य

2. रेशनल इमोटिव चिकित्सा विधि का प्रतिपादन एल्वर्ट इल्लिस (1958, 1975) द्वारा किया गया। सत्य /असत्य

3. तनाव टीका चिकित्सा की पूर्वकल्पना है कि रोगी की समस्या का मूल कारण उसके व्यर्थ या बेकार के विश्वास होते है। सत्य /असत्य

4. बहुआयामी का प्रतिपादन चिकित्सा लेजारस द्वारा किया गया। सत्य /असत्य

5. क्रमबद्व असंवेदीकरण दुर्भीति के रोगियों के बहुत लाभदायक है । सत्य /असत्य

6.लेजारस के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में पांच विमायें होती है। सत्य /असत्य

उत्तर : 1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. सत्य, 6. असत्य

6. 10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कपिल0 एच0 के0 (1991), असामान्य मनोविज्ञान, हरप्रसाद भार्गव, आगरा।
2. मखीजा0 गो0 कृ0 (2003), असामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
3. Judith S. Beck (1995). Cognitive Therapy: basics and beyond. New York, Guilford
4. David W., Helen K., Joan K. (2007): An Introduction to Cognitive Behaviour
5ए Therapy: Skills and Applications. SAGE Publishers

6. 11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यवहार चिकित्सा का अर्थ एवं प्रकारों का वर्णन कीजिये।
2. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
3. टिप्पणी लिखिये-

    1. फ्लडिंग
    2. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकार

इकाई –7 परामर्श में नाटक, कला एवं अन्य चिकित्सा:- व्यक्ति और समाधान केंद्रित परामर्श (Drama, Art and other Therapy in Counseling:- Person and Solution Centered Counseling)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 कला चिकित्सा
7.4 कला चिकित्सा की परिभाषा
7.5 कला चिकित्सा के उपागम
7.6 कला चिकित्सा के चरण
7.7 कला चिकित्सा की तकनीकि
7.8 कला चिकित्सा के उपयोग
7.9 कला चिकित्सा के खतरे
7.10 कला चिकित्सा के संभावित फायदे
7.11 नाट्य चिकित्सा
7.12 पाँच चरण सिद्वांत
7.13 नाट्य चिकित्सा की तकनीकियां
7.14 अन्य कलाओं का समावेशन
7.15 नाट्य चिकित्सा के उद्देश्य
7.16 नाट्य चिकित्सा की प्रभावशीलता
7.17 नाट्य चिकित्सा के उपयोग
7.18 नाट्य चिकित्सा का इतिहास
7.19 नाट्य चिकित्सा की सीमायें
7.20 उपाय केंद्रित चिकित्सा
7.21 उपाय केंद्रित चिकित्सा का इतिहास
7.22 साधारण परिचय

7.23 मूलभूत अभिग्रह

7.24 चिकित्सकीय प्रक्रिया

7.25 चिकित्सकीय लक्ष्य

7.26 चिकित्सक का कार्य तथा भूमिका

7.27 चिकित्सकीय संबंध

7.28 चिकित्सकीय तकनीकि तथा प्रक्रिया

7.29 उपयोगिता

7.30 शक्तियां

7.31कमियां

7.32 निष्कर्ष

7.33 व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा

7.34 मुख्य प्रत्यय

7.35 व्यक्तित्व विकास के बारे में साधारण विचार

7.36 चिकित्सा के लक्ष्य

7.37 उपयोगितायें

7.38 शक्तियां व कमजोरियां

7.39 निष्कर्ष

7.40 सारांश

7.41 शब्दावली

7.42 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.43 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.44 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप कला चिकित्सा , नाट्य चिकित्सा , उपाय या समाधान केंद्रित चिकित्सा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें ।

ये चिकित्सा विधियां क्लाइंट को समाधान खोजने में बहुत मदद करती है क्योंकि इससे क्लांइट की सृजनात्मक शक्ति को बढावा मिलता है । क्लाइट अनेक प्रकार से अपनी समस्या का समाधान करते है। वर्तमान में इन चिकित्सा विधियों के उपयोग में लगातार वृद्वि हो रही है ।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप –

- कला चिकित्सा की परिभाषा , उद्देश्य , तकनीकि , लाभ तथा हानि को समझ पायेगें ।
- नाट्य चिकित्सा की परिभाषायें , उद्देश्य , तकनीकि , लाभ तथा हानि को समझ पायेगें
- व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा के प्रत्यय , विधियों ,लाभ तथा हानि को समझ पायेगें ।
- समाधान केंद्रित चिकित्सा का साधारण परिचय , अभिग्रह, चिकित्सकीय प्रक्रिया , लाभ , हानि व उपयोगिता को समझ सकेगें ।

7.3 कला चिकित्सा

कला चिकित्सा की वर्तमान में अनेक परिभाषायें प्रचलित है जो आपस में विरोधी हैं। इसकी शुरूआत सर्वप्रथम 1940 में वालर व गिलोरी ने 1978 में की थी। ब्रिटेन में सर्वप्रथम एड्रियन हिल ने ' कला चिकित्सा ' शब्द का प्रयोग किया था। उन्होने इस चिकित्सा का प्रयोग टी0बी0 की बीमारी से ग्रस्त रोगियों के स्वास्थ्य लाभ के लिये रेखांकन व चित्रकारी के रूप में किया।

7.4 कला चिकित्सा की परिभाषा

कला चिकित्सा की परिभाषा अधिक स्थिर है। समसामयिक परिदृश्यों के अनुसार, कला चिकित्सा चिकित्सा का एक ऐसा रूप है जिसमें आकृतियाँ व वस्तुओं की रचना तथा मनोचिकित्सकीय संबंध जो कला व चिकित्सक व क्लाइंट कें बीच बनता है, की केंद्रीय भूमिका होती है।

ब्रिटिश एसोसियेशन ऑफ आर्ट थेरेपिस्ट के अनुसार, कला चिकित्सा की परिभाषा – "Art therapy is the art materials of self - expression and reflection in the presence of a trained art therapist. Clints who are referred to an art therapist need not have previos experience or skill in art, the art therapist is not primarily concerned with making aesthetic or diagnostic assessment of the client's image. The overall aim of its practitioner is to enable a client to effeet change and growth on personal level through the use of materials in a safe environment" (BBAT, 2003).

कला चिकित्सा आत्म – अभिव्यक्ति के लिये प्रशिक्षित कला चिकित्सक की उपस्थिति में कलात्मक सामग्रियों का प्रयोग है। वे क्लाइंट जो कला चिकित्सक के पास भेजे जाते हैं, उनके लिये यह आवश्यक नहीं कि उन्हें कला को अनुभव हो या अच्छी कलात्मक योग्यता हो । कला चिकित्सक का उद्देश्य सौंदर्यानुभूति या क्लाइंट की छवि का नैदानिक मूल्यांकन नहीं होता है। इस चिकित्सा का उपयोग करने वाले चिकित्सक का उद्देश्य सुरक्षित तथा सहज वातावरण में कलात्मक सामग्रियों का उपयोग करके क्लाइंट का व्यक्तिगत स्तर पर विकास करना है।

The therapeutic use of art making within a professional relationship, by people who experience illness, trauma or challenges in living and by people who seek personal devlopment through creating art and reflecting on the art products and process, people can increase aweneners of self and others, cope with symptoms of stress and traumatic experience, enhance cognitive ablities and enjoy the life - alarming pleasures of making art.

(The American Art Association, 2003)

कलात्मक प्रक्रियाओं तथा कलात्मक उपकरणों के उपयोग से, कला के सृजन से, व्यक्ति अपने बारे में जागरूकता बढ़ा सकता है, त्रासदी पूर्ण अनुभव तथा तनाव के लक्षणों का सामना कर सकता है, संज्ञानात्मक योग्यता को बढ़ा सकता है तथा जीवन

के जटिल पहलुओं को कला के रूप में परिवर्तित करके सुखद आनंद का अनुभव कर सकता है। कला चिकित्सा का महत्व कला तथा चिकित्सा के मध्य संबंध पर आधारित होता है।

संक्षेप में कहा जाये तो कला चिकित्सा के द्वारा कलात्मक अभिव्यक्ति का ज्ञान होता है जो भाषा की बाध्यता को समाप्त कर देती है अर्थात् यदि कोई बात जो बहुत कठिन, संभ्रांति पूर्ण तथा कष्टदायक होती है, जिसकी अभिव्यक्ति लिखकर या इशारे से नहीं की जा सकती तो उसे रेखाचित्रण द्वारा, चित्रकला के द्वारा, मूर्तिकला आदि के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तथा इनके द्वारा भाषा की अवरूद्धता को समाप्त किया जा सकता है।

कला चिकित्सा कला, चिकित्सा तथा मनोचिकित्सा के मध्य के त्रिकोणात्मक संबंध को दर्शाता है। कला चिकित्सा एक मानसिक स्वास्थ्य व्यवसाय है जिसमें प्रत्येक आयु के लोगों के शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक स्वास्थ्य में सुधार करने के लिये कला तथा सृजनात्मक प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। यह इस तथ्य पर आधारित है कि कलात्मक आत्म – अभिव्यक्ति के द्वारा व्यक्ति अंतर्द्वन्दों व समस्याओं को सुलझा सकता है, अंतरवैयक्तिक योग्यताओं को बढ़ाता है, व्यवहार को व्सवस्थित करता है, तनाव को कम करता है तथा आत्म – सम्मान व आत्म जागरूकता को बढ़ाता है।

कला चिकित्सा के अंतर्गत मानव विकास, दृश्य कला ;रेखाचित्रण, चित्रकला, मूर्तिकला तथा अन्य कला के प्रकार तथा सृजनात्मक प्रक्रियाओं को परामर्श व मनोचिकित्सा के प्रतिरूपों को समाहित किया जाता है।

इसका उपयोग बच्चों, किशोरों, व्यस्कों, समूहों तथा परिवारों पर किया जाता है जिससे चिंता, अवसाद तथा अन्य मानसिक व सांवेगिक समस्याओं तथा शारीरिक, संज्ञानात्मक तथा तंत्रिका संबंधी समस्याओं तथा मानसिक रोगों से संबंधित मनोसामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। कला चिकित्सा का उपयोग अस्पतालों, क्लीनिक में , सार्वजनिक तथा सामुदायिक संस्थाओं में , शैक्षिक संस्थाओं में तथा व्यापारिक व निजी संस्थानों में किया जाता है। कला चिकित्सक के पास कला चिकित्सा या उससे संबंधित क्षेत्र के लिये डिग्री होती है।

7.5 कला चिकित्सा के उपागम

कला चिकित्सा का उपयोग करने वाला चिकित्सक दो उपागमों का प्रयोग कर सकता है। प्रथम उपागम में चिकित्सक प्रक्रिया पर अधिक ध्यान देता है तथा इसका उपयोग वह अपने क्लाइंट को स्वयं के बारे में जानने में मदद करने के लिये करता है। कला का उपयोग रेचन विधि (Catharsis) के रूप में किया जाता है।

चिकित्सक इसका उपयोग एक संवेगात्मक यात्रा के रूप में करता है जिसका अंतिम लक्ष्य आत्म– सिद्धिकरण (Self Actualization) को प्राप्त करना है। इडिश क्रेमर (Edith Kramer) पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने इस विचार को जन्म दिया है।

दूसरे उपागम में कला बनाने की प्रक्रिया पर ध्यान नहीं दिया जाता है बल्कि इस पर ध्यान दिया जाता है कि वह चेतन तथा अचेतन रूप से कला के द्वारा क्या प्रस्तुत कर रहा है। मार्गेट नोमबर्ग के अनुसार यह तरीका कला चिकित्सा का उपयोग करने का सर्वोत्तम तरीका है। इस तरह से कला चिकित्सक कला का उपयोग व्यक्ति के अचेतन मन को जानने की एक खिड़की के रूप में करता है। इसके द्वारा व्यक्ति के अंदर छिपी हुयी समस्याओं को पहचानने में सहायता मिलती है। बच्चों के लिये जिनके पास अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के शब्द नहीं होते उनके लिये कला चिकित्सा का उपयोग एक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में किया जा सकता है।

7.6 कला चिकित्सा के चरण

मापन (Assessment) – मूल्यांकन प्रायः कला चिकित्सा के प्रारंभ में होता है तथा यह क्लाइंट के साथ प्रथम सत्र से ही प्रारंभ हो जाता है। मूल्यांकन से यह पता चल सकता है कि क्लाइंट किस समस्या से गुजर रहे हैं। इसके अतिरिक्त चिकित्सक को क्लाइंट से सबंधित अन्य जानकारियाँ प्राप्त होती है। चिकित्सा के प्रारंभ में मूल्यांकन प्रथम महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि इस चरण में चिकित्सक को यह पता चलता है कि कला चिकित्सा रोगी के लिये उपयुक्त है अथवा यह समय की बर्बादी होगी।

प्रारंभिक उपचार (Treatment in The Beginning) – सत्र के आरंभ में, चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि वह क्लाइंट के साथ सौहाद्रपूर्ण संबंध बनाये क्योंकि यह संबंध में विश्वास को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त चिकित्सक के लिये यह भी आवश्यक है कि वह क्लाइंट के विश्वास तंत्र को समझ सके। रोगी के साथ सौहाद्रपूर्ण संबंध स्थापित करने के पश्चात तथा क्लाइंट के परिदृश्य को समझने के पश्चात कला चिकित्सक क्लाइंट को कला चिकित्सा की पृष्ठभूमि को समझाता है तथा अगर क्लाइंट के मन में कोई प्रश्न उठता है तो वह उसका उत्तर देता है। इस बिंदु पर चिकित्सक कुछ कलाकृतियों का सुझाव देता है।

कला का प्रारंभिक भाग बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अन्य सत्रों के लिये भूमिका तैयार करता है। इसका कारण यह है कि चिकित्सक क्लाइंट कला से संबंधित चिंता को इसी सत्र में दूर करता है तथा यह क्लाइंट को सहज बनाता है। इसका अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इस पर चिकित्सक का प्रतिबिंब बनता है।

इस सत्र के पश्चात कला चिकित्सक के लिये यह महत्वपूर्ण है कि वह चिकित्सकीय लक्ष्य का विकास करें। इसमें चिकित्सक क्लाइंट को यह कहता है कि वह कला के स्थान पर आत्म – अभिव्यक्ति पर महत्व दे ।

मध्य – अवस्था उपचार (Mid Phase Treatment) – चिकित्सक के लिये यह जटिल कार्य होता है कि वह यह कैसे निर्धारित करे कि उपचार अब प्रारंभिक अवस्था से मध्यावस्था में आ गया है । यह ज्ञात करना चिकित्सक के लिये जटिल कार्य होता है। फिर भी वह निम्न दो बातों के आधार पर ज्ञात कर सकता है कि चिकित्सा मध्यावस्था में आ गयी है –

1) जब क्लाइंट व चिकित्सक के मध्य विश्वास स्थापित हो जाता है।

2) जब सत्र अधिक लक्ष्योन्मुखी हो जाता है ।

उपचार की मध्यावस्था में चिकित्सक पहले दिशा निर्देश तथा सीमा रेखा का निर्धारण व्यक्तिगत तथा व्यवसायिक दोनों रूपों में करता है । कला चिकित्सा की अनेक विधियां प्रयुक्त होती है तथा यह जानकारी रखना की कौन सी चिकित्सा कहा प्रयुक्त होगी यह चिकित्सक के लिये एक जटिल कार्य है । चूकि प्रत्येक केस अपने आप में अद्वितीय होता है अतः कला चिकित्सक को प्रत्येक क्लाइट के अनुरूप कला चिकित्सा विधि का प्रयोग करना चाहिये ।

समापन (Termination)

कला चिकित्सा का समापन स्पष्ट तरीके से करना चाहिये या तो कला चिकित्सक अथवा क्लाइंट कला चिकित्सा के समापन का आरम्भ कर सकता है। समापन उस अवस्था में होता है जब चिकित्सक अथवा क्लाइंट को यह लगने लगता है कि चिकित्सा अब संपूर्ण हो चुकी है। यह चिकित्सा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग है। चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि वह क्लाइंट को पहले से ही तैयार करे। इसके लिये चिकित्सक क्लाइंट को समापन ही महत्ता बताता है।

जब चिकित्सा का समापन होना होता है, तब क्लाइंट तथा चिकित्सक पुनः प्रत्येक सेशन में बनायी कलाकृतियों को देखते हैं तथा क्लाइंट ने इस संदर्भ में क्या प्रगति की है, इसके बारे मे चर्चा करते हैं।

समापन के सत्र में एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्लाइंट द्वारा बनायी गयी कलाकृति का क्या किया जाये इसका उत्तर भी क्लाइंट के द्वारा ही दिया जाता है या तो इसे वे अपने पास अपनी चिकित्सा यात्रा के स्मरण के रूप में इसे रख सकते हैं अथवा वे इसे चिकित्सक व अपने चिकित्सकीय संबंध को प्रदर्शित करने के लिये दे सकते हैं।

7.7 कला चिकित्सा की तकनीकि

कला चिकित्सा की प्रमुख तकनीकि निम्न है –

(1) अन्वेषण कार्य – इस तरह की तकनीकि का उदृेश्य क्लाइंट को अपने सभी चेतन विचारों को स्वतः व स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त करने के लिये प्रेरित करना होता है। इस

तरह से यह कार्य शाब्दिक मुक्त साहचर्य के समान होता है। इस तकनीकि का प्रयोग कला चिकित्सा के प्रारभिक सत्र में किया जाता है। प्रमुख अन्वेषण कार्य निम्न है–

(अ) स्वचालित रेखाचित्रण – इस तकनीकि में सर्वप्रथम क्लाइंट को विश्रामपूर्वक बैठाया जाता है इसके पश्चात क्लाइंट को कुछ लाइन खींचने को कहा जाता है। कुछ केसों में क्लाइंट को यह निर्देश दिया जाता है कि अभ्यास के खत्म होने तक वह अपनी पैन न उठाये। स्वतः चाालित रेखाचित्रण से चिकित्सा की शुरूआत श्रेष्ठ तरीके से होती है क्योंकि इसके द्वारा क्लाइंट अपनी सुरक्षात्मक प्रवृत्तियों को त्याग देता है। किंगोट नें इस उपागम का प्रयोग चिकित्सकीय उदृेश्यों के लिये किया था।

(ब) मुक्त चित्रण – मुक्त चित्रण में क्लाइंट की पसंद पर ही सब निर्भर होता है। क्लाइंट से यह कहा जाता है कि वह अपने आपको स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त करे तथा चित्रण की योजना के बारे में चिंता न करें। यह तकनीकि इस लिये उपयोगी है कि क्लाइंट जो छवि बनाते हैं वह अधिकतर क्लाइंट की समस्याओं तथा शक्ति का दर्पण होती है। मुक्त चित्रण के पश्चात प्रायः क्लाइंट को अपने द्वारा बनाये गये रेखांकित चित्र के बारे में बताने के लिये कहा जाता है।

(स) रेखांकित पूर्णता– इस तकनीकि में क्लाइंट को एक या एक से अधिक कागज के टुकड़े दिये जाते हैं जिन पर कुछ पंक्तिया या आकृतियाँ बनी होती हैं। ये आकृतियाँ या पंक्तियाँ क्लाइंट के लिये शुरूआती बिन्दु के समान होती है। इसमें चूँकि एक ही उदृीपक के प्रति भिन्न–भिन्न प्रतिक्रिया मिलती है। अतः यह समूह में विचार–विमर्श करने के लिये अद्‌भुत तकनीकि होती है।

(2) सौहार्द्र–पूर्ण संबंध बनाना – सौहाद्रपूर्ण संबंध से संबंधित अभ्यास को अकेले व समूह में किया जाता है। सौहाद्रपूर्ण संबंध के अभ्यास के पीछे का यह उदे्श्य होता है कि वे कला के सृजन के समय क्लाइंट द्वारा महसूस किये जाने वाले अकेलेपन को दूर कर सके। सौहादृपूर्ण संबंध निर्माण के प्रमुख अभ्यास निम्न है–

(a) संवादी रेखाचित्रण – संवादी रेखाचित्रण में समूह को दो जोड़ों में बाँट दिया जाता है। दो लोग जिन्हें साथ में काम करना होता है, उन्हें एक दूसरे के साथ बैठाया जाता है। आकृति तथा पंक्तियाँ ही संवाद का माध्यम बनी है। इस तरह जोड़े आपस में न केवल संवाद स्थापित करते है बल्कि वे आपस में चीजों को बाँटते भी हैं। इसके द्वारा क्लाइंट एक दूसरे को ज्यादा अच्छे तरीके से समझ पाते हैं।

(b) समूह के द्वारा चित्रकारी– इस तरह के समूह में, समूह के प्रत्येक सदस्य को कहा जाता है कि यह किसी वस्तु, भावना या घटना का नाम बताये और फिर उसे चित्रित करें। इसके पश्चात समूह के एक या एक दो से अधिक सदस्य उसमें सुधार करते हैं। इसके द्वारा लोगों को यह ज्ञात होता है कि जब वो कुछ बनाना चाह रहे थे और उस पर अन्य लोग अपनी इच्छा की थोप रहे हैं तो उन्हे कैसा लगता है ।

(c) विश्राम चित्रण – अधिकांश लोगों के लिये चित्रकला विश्राम करने की एक विधि होती है। इसमें बिना किसी कारण या उद्देश्य के चित्रण करने को कहा जाता है। परामर्शन में व्यक्ति या क्लाइंट को ऐसा समय देता है जिसमें वह मुक्त रूप से चित्रण कर सके। वैसे क्लाइंट जो अपने जीवन में बहुत अधिक तनाव या दबाव महसूस करते हैं उनके लिये यह एक विश्राम प्रदाता विधि है।

(d) निरीक्षक के साथ चित्रकारी– इसमें जोड़े का एक सदस्य इसमें व्यक्ति की चित्रकारी करते हुये देखकर जो कुछ उसके दिमाग में आता है उसे बताना होता है। इसके पश्चात् जो व्यक्ति चित्रण कर रहा है यह बताता है कि यह चित्रण पर लागू हो रहा है या नहीं। इस अभ्यास के द्वारा निर्भरता तथा स्वीकार्यता का पता चलता है।

(3) आंतरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति – इस तकनीक का प्रयोग इस उद्देश्य से किया जाता है कि क्लाइट इसके द्वारा अपनी आंतरिक भावनाओं , इच्छाओं तथा कल्पनाओं को समझ सके तथा उनका दृश्य प्रतिनिधित्व कर सके । यह इस आशा के साथ किया जाता है कि इसके द्वारा क्लाइट अपने बारे अच्छी तरह समझ विकसित कर सके । इस तरह से चिकित्सक , क्लाइट की इस तरह सहायता करता है कि वह इन भावनाओं की दिशा में आगे जा सके तथा अपनी समस्या का हल खोज सकें । इसका उदाहरण तीन अभिलाषाओं वाली एक तकनीक है –

तीन अभिलाषायें (Three Wishes) –

इस तकनीक में क्लाइट को कहा जाता है कि वह अपनी तीन या तीन से अधिक इच्छाओं को चित्रित करें । इसके द्वारा क्लाइट को परिपक्वता का स्तर तथा स्वकेन्द्रिता की मात्रा आदि का पता चलता है । इसके द्वारा चिकित्सक क्लाइट को इन भावनाओं का सामना करने में मदद करता है । इसके पश्चात विचार विमर्श द्वारा इन अभिलाषाओं की शक्ति का गहन अध्ययन किया जाता है ।

(4) आत्म प्रत्यक्षीकरण – आत्म प्रत्यक्षीकरण की तकनीकि के द्वारा क्लाइट स्वयं के बारे में जान सकता है । इसके कुछ उदाहरण निम्न है –

(1)तात्कालिक अवस्था – इसमें क्लाइंट ' मैं हूँ (I am), मुझे महसूस होता है (I feel), मेरे पास (I have) जैसे कथनों का प्रयोग अधिक करता है।

(2) आत्म–चित्र– आत्म–चित्र वास्तविक से अलग हो सकता है। इस तकनीकि में थोड़ी तब्दीली करके कलाकार को समय सीमा दी जा सकती है, जैसे एक मिनट को समय। इसमें क्लाइंट को यह कहा जाता है कि वह जल्दी ही यह निर्णय ले कि वह अपने बारे में कौन सी महत्वपूर्ण विशेषता को चित्रित करना चाहता है।

(3) स्वयं को जानवर के रूप में चित्रित करना – इसमें क्लाइंट के यह कहा जाता है कि वह स्वयं को किसी प्रकार के जानवर या वे जानवर जो उन्हें अपने समान लगते हैं।

(5) **अंतर्वैयक्तिक संबंध**– अंतर्वैयक्तिक संबंध का निर्माण इस उद्देश्य से किया जाता है कि क्लाइंट अन्य लोगों के बारे में समझ विकसित कर सके तथा उसे यह पता चल सके कि अन्य लोग उसे वैसे देखते हैं।

इस तकनीकि के प्रमुख उदाहरण निम्न है–

(1) समूह के सदस्यों का चित्र– उसमें समूह के सदस्यों की एक दूसरे का चित्रण करने को कहा जाता है।यह अभ्यास समूह के सदस्यों को अन्य लोगों के प्रति अपनी भावनायें बताने में सुविधा बतायें।

(2)समूह भित्ति– इसमें समूह बड़ी परियोजना पर सहयोग करते हुये एक साथ काम करते हैं। विषयवस्तु व सामग्रियों का चुनाव या तो समूह पर छोड़ दिया जाता है या फिर चिकित्सक इसका निर्धारण करता है। इस अभ्यास से समूह में सहयोग, एकता तथा समूह में आत्म–अभिव्यक्ति को बढ़ावा मिलता है।

(3) संसार में व्यक्ति का स्थान– इस तकनीकि को इस तरह से डिजाइन किया गया जाता है जिसकी सहायता से क्लाइंट की यह पता चलता है कि वह विश्व में कहाँ फिट होता है तथा वह वास्तविकता की स्वीकृत कर लेता है। इसके प्रमुख उदाहरण निम्न है–

(a) घर–वृक्ष–व्यक्ति – इसमें क्लाइंट को एक घर, वृक्ष तथा एक व्यक्ति को एक में ही चित्रित करने को कहा जाता है। इसके द्वारा क्लाइंट को यह कार्य दिया जाता है कि वह किसी तरह मानव आकृति को अन्य सामान वातावरणीय वस्तुओं से सम्बधित करें ।

(b) कोलाज तथा संयोजन– इसमें क्लाइंट को कहा जाता है कि व्यक्तिगत दुनिया का सृजन करें। उसमें चिकित्सक परिदृश्य को निर्धारित कर सकता हैं या इसमें क्लाइंट तब तक कार्य करता रहता है जब तक उन्हें परिदृश्य खुद स्पष्ट नही दिखने लगता है।

7.8 कला चिकित्सा का उपयोग

मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सा के रूप में कला चिकित्सा का उपयोग अनेक नैदानिक परिस्थितियों तथा विभिन्न प्रकार की जनसंख्या पर किया जा सकता है । कला चिकित्सा का उपयोग अनैदानिक परिस्थितियों जैसे कला स्टूडियो तथा सृजन विकास कार्यशाला में भी किया जा सकता है । इस चिकित्सा विधि का उपयोग विवाह तथा परिवार चिकित्सा, मानसिक स्वास्थ्य परामर्शदाता तथा अन्य मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सकों द्वारा किया जाता है। कला चिकित्सक सभी उम्र के लोगों के साथ काम करते है। कला चिकित्सक बच्चों , किशोरों, व्यस्कों तथा अकेले एक व्यक्ति की , जोडों की , परिवारों की तथा समूहों की सेवा करते है ।

कला चिकित्सक ऐसे उपकरणों या विधियों का प्रयोग करता है जो क्लाइट की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त हो तथा चिकित्सकीय सत्रों को ऐसे डिजाइन करता है जिससे चिकित्सकीय लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। कला चिकित्सक सृजनात्मक प्रक्रियाओं का प्रयोग इस तरह से करता है जिससे क्लाइट की अंतदृष्टि का विकास हो सके , तनाव का सामना कर सके ,आघात जन्म अनुभवों का मुकाबला कर सके तथा तंत्रिका संवेदी योग्यताओं में वृद्वि हो सके , अतःवैयतिक संबंधों को बढावा मिल सके । कला चिकित्सक जिन क्रियाओं को चुनता है वह बहुत से कारकों पर निर्भर करता है , जैसे – उनकी मानसिक अवस्था परामर्शदाता जैसे सामाजिक कार्यकर्ता , मनोवैज्ञानिक तथा क्रीडा चिकित्सक कला चिकित्सकीय विधियों को आधारभूत मनोचिकित्सकीय प्रक्रम से मिलकर प्रयुक्त करते है ।

प्रायः लोग बीमारियों से खुद को बचाना चाहते है तथा यह प्राप्त हुआ है कि कला तथा सृजनात्मक प्रक्रिया अनेक बीमारियों में सहायता पहुचा सकता है (कैंसर , दिल की बीमारी , इनफलुएंजा आदि) । व्यक्ति बीमारी के संवेगात्मक प्रक्रियाओं का प्रयोग करते है । कभी कभी व्यक्ति जैसा महसूस करते है ,वैसा बोल नहीं पाते , उस समय कला के द्वारा वे अपने अनुभवों को बता सकते है । कला चिकित्सा में व्यक्ति भूत, भविष्य व वर्तमान की अनुभूतियों को खोज सकता है क्योंकि वह कला का उपयोग एक प्रतिरोधक के समान करता है ।

वर्तमान में अनेक अस्पतालों में कला के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है तथा यह प्राप्त हुआ है कि ऐसे रोगी जिन्होने कला चिकित्सा का प्रयोग किया था । वे अच्छी नीद लेते थे । (स्टकरी 2010)

कैंसर का निदान (Cancer Diagnosis)

कला चिकित्सकों ने उन कैसर रोगियों पर अध्ययन किया तथा यह जानने का प्रयास किया कि क्यों कुछ कैंसर रोगियों ने कला का उपयोग एक प्रतिरक्षा तंत्र के रूप में था । इस अध्ययन में ऐसी महिलाये सम्मिलित हुयी थी जो विभिन्न प्रकार के कला कार्यक्रमों जैसे मिट्टी से बर्तन बनाने की कला , कार्ड निर्माण कला तथा रेखाचित्रण व चित्रकला में भागीदारी कर रही थी । इस कार्यक्रम से उन्हे कैंसर होने के बावजूद कैंसर से लडने पर उत्पन्न होने वाले सांवेगिक दर्द में कमी पायी गयी । इससे उन्हें कैंसर का रोगी होने के अतिरिक्त अन्य पहचान भी मिली । इसके अतिरिक्त उन्हे भविष्य के प्रति कुछ उम्मीद भी दिखाई दी है ।

एक अन्य अध्ययन में यह देखा गया है कि जिन रोगियों ने ऐसे कार्यों में भाग लिया था वे उन रोगियों की अपेक्षा जिन्होने ऐसे कार्यों में भाग नहीं लिया था , अस्पताल से जल्दी छोड दिये गये । (स्टकी व नोबेल , 2010)

वुड , मोलाअसीमोटस तथा पियाने ने कैंसर रोगियों के सांवेगिक , सामाजिक , भौतिक , वैश्विक प्रकार्य तथा उनके आधात्मिक नियंत्रण का अध्ययन किया । उन्होने अपने अध्ययन में यह प्राप्त किया कि कला चिकित्सा के द्वारा परिवर्तन के लिये आवश्यक

मनोवैज्ञानिक पुर्नसमायोजन में सहायता मिलती है । इसके अतिरिक्त अध्ययन से यह प्राप्त हुआ कि कला चिकित्सा के द्वारा कैंसर रोगियों को जीवन का एक अर्थ प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त कला चिकित्सा ने रोगियों में अभिप्रेरणा के स्तर को बढाया तथा सांवेगिक व शारीरिक स्वास्थय के बारे में विचार विमर्श करने की योग्यता को बढाया ।

आपदा से राहत (Disater Relif)

कला चिकित्सा का उपयोग अनेक प्रकार के आघातजन्म अनुभव जिसमें आपदा से राहत भी शामिल है में भी किया जाता है । कला चिकित्सक बच्चों , किशोरो तथा व्यस्कों पर अध्ययन प्राकृतिक या मानवनिर्मित आघातों के पश्चात करते है । जिसमें वे उन्हे प्रोत्साहित करते है कि वे अपने प्रतिक्रिया को कला के रूप मे प्रयुक्त करे व ऐसे रोगियों के लिये कला चिकित्सक की मुख्य रणनीतियां होती है – उत्तर प्रतिघात , . प्रतिबल या तनाव को मापना । नीद को समान्य करना , शिथलीकरण (Relaxation) सीखना , सामाजिक संबल प्रदान करने वाले समूह का निर्माण तथा सुरक्षा व स्थिरता की भावना का विकास करना ।

इनके अतिरिक्त स्वलीनता (Autism) तथा मनोविदलता (Schizophernia) में इसके कुछ अस्पष्ट प्रभाव प्राप्त हुये है परन्तु अभी इसके लिये अन्य अध्ययनों की आवश्यकता है ।

7.9 कला चिकित्सा के खतरे

चिकित्सा के इस चरण में कुछ लोग ऐसे सांवेगिक प्रतिक्रिया व्यक्त करते है । जो अपरिचित होती है तथा अनुभव करने में जटिल होती है । चिकित्सा के कारण उत्पन्न सांवेगिक असुविधा क्षणिक ही होती है तथा समय के साथ खत्म हो जाती है हालाकि इस चिकित्सा के परिणाम की कोई गांरटी नहीं है तथा कभी कभी क्लाइट में कोई सुधार नहीं दिखता है तथा स्थिति और भी बुरी बन जाती है ।

7.10 कला चिकित्सा के संभावित फायदे

लोगों के जीवन में संतुलन तथा प्रसन्नता लाना स्वय के बारे में समझ को बढाना तथा अपने जीवन में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन को लाना अन्य लोगों के साथ स्वस्थ अंर्तसम्बध बनाना तथा अधिक संतोषप्रद संबंध को महसूस करना , व्यक्तिगत संबंधों में अंर्तद्वन्दों को खत्म करना अवसाद चिंता तथा तनाव से दूर रहने का मार्ग खोजना , बेहतर संवाद कौशल को बढाना ,बेहतर माता पिता बनने की योग्यता को बढाना , अपने संवेगों को व्यवथित करना , गुस्से दुख तथा चिंता पर नियंत्रण रखकर स्वयं के बारे में तथा अपनी उपलब्धियों के बारे में अच्छा सोचना

जीवन की संक्रामक अवस्था में अच्छी तरह से सांमजस्य बिठाना, सम्पूर्ण जीवन को उत्साह से बीताना ।

7.10 नाट्य चिकित्सा

राष्ट्रीय नाट्य चिकित्सा संस्थान में नाट्य चिकित्सा को परिभाषित करते हुये कहा है कि 'नाट्य चिकित्सा नाट्य/रंगमचीय प्रक्रियाओं व उत्पादों का क्रमबद्ध उपयोग करते हुये उसे लक्षणों से मुक्ति, सांवेगिक तथा भौतिकीय एकीकरण तथा व्यक्तिगत विकास के लक्ष्यों से संबंधित करती है।

शब्द Drama प्राचीन ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है जो कार्य हो चुका है। (टैरिसन 1913)।

नाट्य चिकित्सा में कार्यात्मक तकनीकियों जैसे रोल प्ले, नाट्य खेल, कठपुतली का खेल, मुखौटा तथा रंगमंचीय प्रदर्शन आदि का प्रयोग व्यवहार परिवर्तन तथा व्यक्तिगत विकास के लिये किया जाता है।

यह एक सक्रिय उपागम है जिसके द्वारा क्लाइंट अपनी कथनी खुद सुनाता है व समस्या का समाधान करता है इसके द्वारा क्लाइंट **विरोचन** को प्राप्त करता है अपने आंतरिक अनुभवों को विस्तारित करता है छवि का अर्थ समझता है अपनी भूमिका को सही तरह से निरीक्षित करता है। इसका परिणाम एक सक्रिय तथा प्रयोगात्मक प्रक्रियाओं के रूप में व्यक्त होता है। नाट्य चिकित्सा की जड़ रंगमंच, शिक्षा सामाजिक कार्यो तथा मानसिक चिकित्सा में है।

प्रारंभिक मानव ने जिन कलाओं को उपयोग किया वे थे चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य तथा नाट्य कला। कला तथा धर्म का उद्भव एक साथ प्रतीत होता है ऐसा इसलिये हुआ होगा क्योंकि कला प्राकृतिक रूप से प्रभावशाली प्रतीकों को प्रदान करती है जिसके द्वारा अमूर्त धार्मिक विचारों को व्यक्त किया जा सकता है। नृत्य तथा नाट्य विशेष रूप से संक्रामक होते हैं जिससे कर्माकांड का प्रदर्शन होता है।

नाट्य चिकित्सा के बारे में सर्वप्रथम लिखित उल्लेख ग्रीक थियेटर के साथ मिलता है जिसमें अपनी कविताओं में अरस्तू ने कहा कि शोकपूर्ण घटना के द्वारा व्यक्ति अपनी गहन भावनाओं का प्रदर्शित करता है।

नाट्य चिकित्सक की भूमिका यह होती है कि वह क्लाइंट के अनुभव को इस तरह बढ़ाये कि क्लाइंट संवेगात्मक तथा दैनिक रूप से सुरक्षित रहे। चिकित्सा के लक्ष्य तथा उदृेश्य को ध्यान में रखते हुये चिकित्सक एक जैसी परियोजना तैयार करता है जिससे वह वांछित परिणाम प्राप्त कर सके जिसमें समझ, संवेगात्मक प्रकटीकरण तथा नये व्यवहार का अधिगम समाहित हैं।

कुछ तकनीकें जैसे पार्श्व रंगमंच, पीड़ित लोगों की नाट्यशाला आदि अधिक औपचारिक हैं जिसमें दर्शक भी सम्मिलित होते हैं। कठपुतलियों, मुखौटे तथा कर्मकांड

आदि चिकित्सकीय सत्र में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। कुछ तकनीकें जैसे नाट्य खेल, भूमिका निर्वहन आदि काल्पनिक कार्यों को समाहित करती है। अन्य तकनीकें जैसे मनोनाट्य पार्श्व रंग, आत्मकथात्मक प्रदर्शन आदि से क्लाइंट को अपने जीवन के अन्वेषण करने मे मदद मिलती है।

अरस्तू के अनुसार नाट्य का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं बल्कि व्यक्ति के अंदर एकत्रित हानिप्रद संवेग को प्रदर्शित करना होता है, जिससे बाद मे व्यक्ति को समुदाय में संतुलन बनाने में संतुलन बनाने में सहायता मिलती है।

1970 के पश्चात यह एक स्वतंत्र क्षेत्र के रूप प्रस्तुत होने लगा। प्रारंभ में इसका प्रयोग अस्पताल तथा सामुदायिक कार्यक्रमों में किया जाता था।

नाट्य चिकित्सा में इस तरह से व्यक्ति की नयी भूमिका का अभ्यास करने को कहा जाता था जिससे की व्यक्ति का विकास हो सके। बाह्य चिकित्सकों ने नैदांनिक संदर्भ के अतिरिक्त समस्या को दूर करने के लिए तथा स्वस्थ व्यक्तियों के कल्याण के लिए इसका प्रयोग किया। इस प्रकार के विस्तारीकरण के लिये यह आवश्यक है कि चिकित्सक को मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण के साथ–साथ रंगमंच में भी मजबूत आधार हो। ऐसे मनोचिकित्सक उन व्यक्तियों के साथ कार्य करते हैं जिनके साथ विचार, संवेग तथा व्यवहार से संबंधित समस्यायें होती हैं।

नाट्य चिकित्सकीय को चार क्षेत्रों मे विशेषज्ञ होना चाहिये–

नाटक/रंगमंच

सामान्य तथा असामान्य मनोविज्ञान

मनोचिकित्सा

नाट्य चिकित्सा

7.11 पाँच चरण सिद्धांत

रीनी इमुयाह (Renee Emunah,_1994) ने पाँच चरण को चिहिन्त किया जिससे अधिकतर नाट्य चिकित्सकीय समूह का विकास होता है। इसके प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं–

पहला चरण – नाट्य खेल होता है जिसमें समूह एक दूसरे का समझ पाते हैं। इसमें एक दूसरे के साथ खेलकर विश्वास को बढ़ावा मिलता है।

दूसरा चरण –कार्य चरण होता है जिसमें वे खेलना जारी रखते हैं। दूसरे चरण में मुख्य नाट्य योग्यता के विकास होता है जिसकी आवश्यकता होती है।

तीसरा चरण – भूमिका निर्वहन पर ध्यान केंद्रित करता है। समूह एक सामान्य पारिवारिक अंतर्हद पर ध्यान केंद्रित करता है या फिर किसी कहानी, परिचित चरित्र

या फिर समूह के सदस्यों द्वारा चुनौतियों पर बात करता है। जब समूह में सहमति बन जाती है तब वे अगले चरण में प्रवेश कर पाते हैं।

चौथा चरण – संचयी नियम, जिसमें व्यक्तिगत मुद्दों पर मनोनाट्य या आत्म चरित्र कार्य के द्वारा प्रदर्शन किया जाता है।

अंतिम चरण – कर्मकांड होता है, जिसमें समूह कार्यों की समाप्ति होती है। इसमें सार्वजनिक या व्यक्तिगत कर्मकांड का समूह में प्रदर्शन होता है।

चिकित्सक के लिये आवश्यक है कि क्लाइंट का अह्म मजबूत कर सके जिससे वह इस प्रकार का कार्य कर सके क्योंकि इसके लिये ईमानदार तरीके से अपने को समझने की आवश्यकता होती है।

7.12 नाट्य चिकित्सा की तकनीकियाँ

प्रत्येक चिकित्सक द्वारा नाट्य चिकित्सा की भिन्न–भिन्न तकनीकियों का प्रयोग किया जाता है। इसकी प्रमुख तकनीकियां निम्न है –

रूपक का उपयोग - प्रथम तकनीकि है कार्य के द्वारा रूपक का प्रयोग। व्यवहार, समस्या तथा संवेग रूपक के रूपों में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संवेग को किसी रूपक के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे गुस्से की ज्वालामुखी के रूप में, विस्फोटक बम, दहकती आग के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इन छवियों को थोड़ा नाट्कीय बनाया जा सकता है जिसमें क्लाइंट को संवेग के बारे में और अधिक जानकारी मिल सके और यह समझ सके कि वह जीवन में कैसे नकारात्मक या सकारात्मक भूमिका निभाते हैं।

मूर्त अभिव्यक्ति– इस तकनीकि में अमूर्त को मूर्त बनाया जाता है जिसके लिये क्लाइंट के शरीर की सहायता ली जाती है। अभिव्यक्ति के द्वारा क्लाइंट नये व्यवहार का अनुभव करता है या फिर पुराने व्यवहार में कैसे परिवर्तन किया जाये यह सीखता है। अपने से भिन्न भूमिका का निवर्हन आसान होता है जबकि अपनी भूमिका का निवर्हन कठिन होता है।

नाट्कीय प्रक्षेपण –यह तकनीकि मूर्त अभिव्यक्ति के समान है तथा रूपक का प्रयोग करता है। इसके द्वारा क्लाइंट के अंदर के संवेग या विचार को जाना जा सकता है तथा इसे नाट्य चिकिंत्सा के द्वारा प्रक्षेपित किया जा सकता है। क्लाइंट को यदि सहायता माँगने में दिक्कत होती है तो इसे नाट्कीय अंदाज देकर समूह के अन्य सदस्यों, कठपुतलियों के साथ या मुखौटे के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। इस तरह से अब क्लाइंट की समस्या को देखा जा सकता है तथा चिकित्सक व समूह के समय बाँटा जा सकता है।

7.13 अन्य कलाओं का समावेशन

नाट्य चिकित्सा एक प्रकार का चौराहा है, जहाँ सभी प्रकार की कलायें एक साथ समाहित होती हैं। नाट्य चिकित्सक संगीत, गति, गीत, नृत्य, कविता, लेखन, चित्रकला, मूर्तिकला, मुखौटा निर्माण पुटली कला आदि का उपयोग करते हैं। नाट्य चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि वह अन्य कला चिकित्सा में प्रशिक्षित हो।

पारगमन स्थान का सृजन–

पारगमन अवस्था सभी चिकित्सकीय अवस्था के लिये महत्वपूर्ण तत्व है लेकिन यह नाट्य चिकित्सा के लिये आवश्यक है। पारगमन अवस्था एक काल्पनिक संसार होता है जिसका निर्माण तब होता है जब हम सुरक्षित व विश्वसनीय परिस्थिति में इसे कल्पित कर सकते हैं। यह बिना किसी समयावधि का स्थान होता है जिसमें प्रत्येक चीज जो कल्पित की जा सकती है स्थित होती है । इसका निर्माण चिकित्सक क्लाइंट दोनों एक साथ मिलकर करते हैं तथा उनका में विश्वास होता है कि कुछ भी घटित हो सकता है।

7.14 नाट्य चिकित्सा के उद्देश्य

नाट्य चिकित्सा का मुख्य उदृेश्य है व्यक्ति को सुरक्षित अनुभव प्रदान करना होता है जिसमें वह अपनी संवेगात्मक आवाज को नाट्य क्रियाओं के रूप में प्रदर्शित करता है। नाट्य चिकित्सा का परिणाम सभी प्रतिभागियों के लिये अलग–अलग होता है । इसका मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य तथा विकास की प्राप्ति होता है जिसे निजी भूमिका निर्वहन तथा नाट्य अंतक्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है।

नाट्य चिकित्सा के उदृेश्य हैं–

आत्म विश्वास का निर्माण करना

अन्य लोगों के साथ विश्वास तथा संबंध का विकास करना

संवेगों की खोज व व्याख्या

काल्पनिकता का विकास

सांवेगिक अन्वेषण

स्वतंत्रता का विकास

शरीर तथा आवाज में संबंध

7.15 नाट्य चिकित्सा की प्रभावशीलता

यद्यपि नाट्य चिकित्सा नया उपागम है परन्तु अनेक शोधों से ज्ञात होता है कि यह अत्यंत उपयोंगी विधि है। नाट्य चिकित्सा के प्रमुख उदाहरण निम्न है–

NADTA के जर्नल, Drama Therapy Review में प्रकाशित अध्ययन के अनुसार स्वलीनता से ग्रसित बच्चों के लिये यह प्रभावशाली है। इससे सामाजिक अंतःक्रिया में सुधार मिलता है तथा इनसे अतिस्वलीनता से संबंधित लक्षणों जैसे अतिसक्रियशीलता तथा ध्यानभंगता में कमी पायी जाती है।

European Psychiatry जो European psychiatrc Associtiion (EPA) ने 2009 में प्रकाशित किया था के अध्ययन के अनुसार नाट्य चिकित्सा से सामाजिक चिंता के लक्षणों में कमी आती है।

Drama Therapy Review में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार युगल परामर्शन (Couple Counselling) में नाट्य चिकित्सा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

7.16 नाट्य चिकित्सा के उपयोग

नाट्य चिकित्सा का उपयोग निम्न रोगों के इलाज के लिये किया जा सकता है –

उत्तर प्रतिघात प्रतिबल

चिंता

अवसाद

अंतवैयक्तिक संबंध

स्वलीनता

पुनर्वास

मनोविदलता

मादक द्रव्य से संबधित विकृतियाँ

चित्त –विक्षेप

भोजन से संबंधित विकृतियाँ

अधिगम से संबंधित विकृतियाँ

शोक से हानि

7.17 नाट्य चिकित्सा का इतिहास

नाट्य चिकित्सा का जन्म उन जीवन घटनाओं से हुआ है जो इतने दुःखदायक होते हैं जिन्हें शाब्दिक रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता। नाटक प्रायः संवेगों को अभिव्यक्त करने के लिये रूपक का प्रयोग करते हैं अतः ये चिकित्सकीय प्रतिरूप में प्राकृतिक रूप से फिट होते हैं। नाट्य चिकित्सा के उद्भवकर्ताओं ने

नाटक के द्वारा प्रदान की जाने वाली मनोवैज्ञानिक सुरक्षा तथा दूरी का फायदा उठाया। इस सुरक्षित चिकित्सकीय संबंध के संदर्भ में नाट्य चिकित्सा के द्वारा व्यक्ति शारीरिक तथा शाब्दिक अभिव्यक्ति करता है। इससे जटिल संवेगात्मक मुद्दों को सुलझाने में आसानी होती है।

नाट्य चिकित्सा का विकास जेकब एल मोरेना (Jecob L. Mureno) के मनोचिकित्सकीय उपागम जिसे मनोनाट्य (Psyopodrama) कहते हैं से हुआ था। इसके द्वारा नाटकीय कार्यप्रणाली अपनायी जाती है। प्रारंभिक नाट्य चिकित्सकों में NikolaiEvreinov, Vladimir, LLjne, Bertholt Brecht, sandor Ferenczi
आदि आते हैं।

अन्य योगदानकर्ताओं में भूमिका सिद्वांत, विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान तथा अन्य सृजनात्मक कला कलाओं का उपयोग किया है। इन लोगों में Peten Slade, Carl Jung, T.D. Nohle, Wintred ward, Maxwell Jones, Gertrud Schattnen and Sue Jennugs आदि हैं।

1979 में उत्तरी अमेरिका नाट्य चिकित्सा एसोसिशयन (North American Drama Therapy Assocition) (NDTA) की स्थापना हुयी।

7.18 नाट्य चिकित्सा की सीमायें

नाट्य चिकित्सा संबंधित साहित्य कुछ सीमाओं का उल्लेख करते हैं। अन्य तकनीकियों के समान ही नाट्य चिकित्सा के लिये भी कुशल प्रशिक्षण की आवश्यकता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के लिये नाट्य तकनीकियों थियेटर या रंगमंच का प्रयोग आकर्षक लग सकता है परंतु वास्तव में बिना किसी कुशल प्रशिक्षण के चिकित्सा जोखिम में आ सकती है।

नाट्य चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि उसके पास नाट्य चिकित्सक का प्रमाणपत्र हो। नाट्य चिकित्सा की उपयोगिता के संदर्भ में और अधिक शोध की आवश्यकता है हालाँकि नाट्य चिकित्सा का और अधिक विस्तार हो रहा है तथा NDTA के जरनल Drama Therapy Review से और अधिक सूचना की प्राप्ति हो रही है।

7.19 समाधान केंद्रित चिकित्सा

समाधान केंद्रित संक्षिप्त चिकित्सा (SFBT) अथवा उपाय केंद्रित चिकित्सा का विकास Steve De Shazer (1940-2008) स्टीप डी शेजर तथा Insuo Kim Birg (1934-2007) द्वारा किया गया। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है उपाय केंद्रित

चिकित्सा भविष्यमुखी, लक्ष्य–निर्देशित होती है तथा यह समस्या के स्थान पर समाधान पर ध्यान केंद्रित करती है।

समस्त समाधान केंद्रित चिकित्सा का विकास बर्हिरोगियों के मानसिक स्थास्थ्य सेवा में किया जाता है जिसमें क्लाइंट को बिना किसी जाँच (Screening) के ही स्वीकार कर लिया जाता है। इस चिकित्सा का विकास करने वाले मनोवैज्ञानिकों ने अनेक वर्षों तक चिकित्सा सत्रों का सूक्ष्म निरीक्षण किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रत्येक सत्र में पूछे जाने वाले प्रश्न, व्यवहार संवेग आदि को नोट किया।

7.21 समाधान केंद्रित चिकित्सा का इतिहास

समाधान केंद्रित चिकित्सा का इतिहास 50 वर्ष पुराना है। इसका विकास सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ तत्पश्चात संपूर्ण विश्व में हुआ । आधुनिक उपाय केंद्रित चिकित्सा का विकास पति पत्नी स्टीव डी शेजर (Steve De Shazer) तथा इनसु किम बर्ग (Insero kim Berg) जो अमेरिकी समाजिक कार्यकर्ता थे ने किया। उनके साथ जिन अन्य व्यक्तियों ने सहयोग दिया था वे ये हैं Evi lipchik, Wallace Gingerch,Elam Munnally, Alex Moalnar, Michele Weiner-Davis. तथा इनके अतिरिक्त Milton Erickson, Paul Watzlawiek, John Weakland, Virginia Satir, Jay Haly के नाम भी महत्वपूर्ण है। इस चिकित्सा विधि के अनेक संप्रत्यय अनेक चिकित्सको द्वारा स्वतन्त्रता पूर्वक खोजे गये है ।

समाधान केंद्रित चिकित्सा विधि की अनेक शाखायें है ।इस चिकित्सा विधि का उपयोग व्यसन से सम्बन्धित समस्याओं के परामर्शन के लिये किया जाता है ।

7.22 साधारण परिचय

समाधान केंद्रित चिकित्सा प्राचीन चिकित्सा से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें भूतकाल को वर्तमान तथा भविष्य दोनों के पक्ष में किया जाता है। चिकित्सक की रूचि प्रायः यह देखने में होती है कि क्या संभव है तथा उनकी रूचि समस्या की जानकारी लेने में बिल्कुल नहीं रहती है ।डी शेजर (1998, 1991) के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि समस्या के कारण को समझा जा सके तथा समस्या के कारण व उसके समाधान के बीच कोई प्रत्यक्ष संबंध हो ही यह आवश्यक नहीं है। परिवर्तन के लिये समस्या के बारे में जानकारी एकत्रित करना आवश्यक नहीं है। समस्या की समझ जितनी महत्वहीन होती है उतनी ही सही समाधान की खोज भी महत्वहीन होती है। एक व्यक्ति , अनेक समाधनों की खोज कर सकता है तथा एक व्यक्ति के लिये जो सही है जरूरी नही है कि वह दूसरों के लिये सही हो । समाधान केंद्रित चिकित्सा में क्लाइंट लक्ष्य को खोजता है तथा उसे पूरा करना चाहता है। निदान, इतिहास तथा समस्या के अन्वेषण पर बहुत कम समय दिया जाता है।

सकारात्मक उन्मुखता –

समाधान केंद्रित चिकित्सा सकारात्मक अभिग्रह पर आधारित है। यह अभिग्रह बताता है कि लोग स्वस्थ तथा योग्य होते हैं तथा ऐसे समाधान खोजने में समर्थ होते हैं जिसमें उनके जीवन का बढ़ावा मिल सके। एक अन्तनिर्तित अभिग्रह यह है कि हमारे जीवन में आने वाली समस्त चुनौतियों का हम सामना करने में समर्थ हैं। यद्यपि कभी–कभी ऐसा होता है कि हम दिशा नहीं समझ पाते या अपनी योग्यता के बारे में जागरूक नहीं होते। बर्ग के अनुसार क्लाइंट चाहे जिस परिस्थिति में चिकित्सा में प्रवेश करते है वे सक्षम होते हैं तथा चिकित्सक को यह कार्य होता है कि वह क्लाइंट को अपनी योग्यता समझने में मदद कर सके। चिकित्सा की विशेषता इस बात पर होती है कि किस तरह से क्लाइंट में आशा तथा सकारात्मकता का विकास हो सके। इसके लिये यह सकारात्मक प्रत्याशा कि परिवर्तन संभव है का निर्माण किया जाये। समाधान केद्रित चिकित्सा के आधार व्यक्ति को उसकी वर्तमाने स्थिति में स्वीकार कर लेती है तथा उनकी समाधान निर्माण में सहायता करती है।

जब क्लाइंट इस चिकित्सा विधि में प्रवेश करते हैं तो उनका मत मानना होता है कि भूतकाल में जो कुछ उनके साथ घटित हो चुका है वह अवश्य ही उनके भविष्य को भी निर्धारित करेगा। समाधान केंद्रित चिकित्सा सकारात्मक संवाद के द्वारा क्लाइंट के इस प्रस्तुतिकरण का सामना करती है। इसके अतिरिक्त वे इस तथ्य पर बल डालती हैं कि वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। चिकित्सक इस संबंध मे ऐसी सहायक भूमिका निभाते हैं जिससे वे समस्या की परिस्थिति से निकलकर नयी सम्भवनाओं को समझ सके। चिकित्सक क्लाइंट को उत्साहित करता है कि वह अपनी एक अलग कहानी लिख सके।

क्या उपयोगी है की तलाश करना –

समाधान केंद्रित चिकित्सा का केंद्र है इस बात पर होता है कि क्लाइंट के जीवन में क्या चल रहा है तथा यह प्राचीन चिकित्सकीय मॉडल से पूर्णतः अलग है जो कि समस्या केंद्रित होता है। व्यक्ति चिकित्सा में कहानियों को लाते हैं। इनमें से कुछ ऐसी होती है जो उनके है कि उनके इस विश्वास की मजबूत करती है कि जीवन को बदला नहीं जा सकता है तथा जीवन उनके लक्ष्य से उन्हें दूर करता जा रहा है। समाधान केंद्रित चिकित्सा क्लाइंट को सहायता देती है कि वे अपनी समस्या के स्वरूप का समझ सके। वे क्लाइंट की इस तरह से सहायता करते हैं कि उनमें आशा का संचार हो सके तथा इसके लिये वे अपवादों को खोजते हैं। समाधान केंद्रित चिकित्सा का ध्यान इस बात पर होता है कि वे यह समझ सके कि लोग ऐसा क्या कर रहे हैं जो उपयोगी है तथा बाद में वे इस ज्ञान का उपयोग कम से कम समय में समस्या को दूर करने के लिये करते हैं।

यह जानने के लिये क्लाइंट के लिये क्या उपयोगी है चिकित्सक कई अनेक प्रकार से सहायता करता है। डी0 शेजर (1991) से क्लाइंट को अनेक प्रकार के

संवाद में व्यस्त रखने को पसंद करते है । जिसमें क्लाइंट ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करते थे जिसमें वे धीरे–धीरे अपने लक्ष्य की प्राप्त कर सके।

डी0 शेजर क्लाइंट को संबोधित करते हुये कहते हैं " मुझे उस समय के बारे में बताओ जब आप बेहतर महसूस करते थे तथा चीजें आपके अनुसार हो रही थीं।"

7.23 मूलभूत अभिग्रह

वाल्टर वचेलर (1992–2000) ने समाधान केंद्रित चिकित्सा को एक ऐसे मॉडल के रूप में परिभाषित किया है जो इस बात की व्याख्या करता है कि व्यक्ति में बदलाव कैसे आता है तथा वो अपने लक्ष्य तक कैसे पहुँच पाते हैं।

समाधान केंद्रित चिकित्सा के प्रमुख अभिग्रह निम्न हैं–

चिकित्सा के लिये जो व्यक्ति आते हैं उनके अंदर इतनी क्षमता होती है कि वे प्रभावशाली ढंग से व्यवहार कर सके। समस्या केंद्रित विचार होने से व्यक्ति समस्या का सामना ठीक से नहीं कर पाते हैं।

समाधान के बारे में तथा भविष्य के बारे में सोचना लाभकारी होता है। अगर क्लाइंट आत्म–संवाद के द्वारा स्वयं को अपनी शक्तियों की तरफ पुनर्उन्मुख कर लेता है तो इसकी संभावना बहुत अधिक होती है कि चिकित्सा संक्षिप्त हो जाये।

हर समस्या के कुछ न कुछ अपवाद होते हैं। इन अपवादों के बारे में बात करके क्लाइंट उन सभी समस्याओं पर नियंत्रण कर सकता है जो कि अभेद्य लगती है। अपवादों का ऐसा वातावरण क्लाइंट को समाधान के बारे में संभावना का अवसर प्रदान करता है। तीव्र परिवर्तन संभव होता है जब क्लाइंट अपनी समस्या के बारे मे अपवाद को समझ लेता है।

क्लाइंट प्रायः अपने बारे में एकतरफा प्रस्तुतीकरण करते हैं। समाधान केंद्रित चिकित्सा के द्वारा वे अपनी कहानी के दूसरे पक्ष को भी समझ पाते हैं।

छोटे–छोटे परिवर्तन वृहद परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

क्लाइंट परिवर्तन को चाहते हैं परिवर्तन लाने की योग्यता रखते हैं तथा वे बदलाव लाने की पूरी कोशिश करते हैं। चिकित्सक को क्लाइंट के साथ सहयोगी रवैया रखना चाहिये न कि प्रतिरोधक प्रतिरूप को रोकने के लिये रणनीति बनानी चाहिये। सहयोगी रवैया अपनाते हैं तो प्रतिरोध नहीं उत्पन्न होता है।

क्लाइंट अपनी समस्याओं का दूर करने के लिये अपने इरादे पर विश्वास रख सकता है। विशिष्ट समस्याओं के समाधान के लिये कोई सही समाधान नहीं है जो कि सभी व्यक्तियों पर लागू हो सके । वाल्टर तथा पेलर (2000) ने चिकित्सा के स्थान पर व्यक्तिगत विचार विमर्श शब्द का प्रयोग किया। चिकित्सक क्लाइंट संदर्भ में

संभावनाओं की बात करते हैं तथा सकारात्मक भविष्य का सृजन करने में सहायता देते हैं।

7.24 चिकित्सकीय प्रक्रिया

Bertolira O' Hanlin (2002) में सहयोगी चिकित्सकीय संबंध की महत्ता पर प्रकाश डाला तथा इसे सफल चिकित्सा के लिये आवश्यक माना। जहाँ चिकित्सक बदलाव के लिये संदर्भ बनाने में विशेषज्ञ होते हैं वहीं क्लाइंट अपने जीवन के विशेषज्ञ होते हैं तथा उन्हें इस बात की जानकारी होती है कि भूतकाल मे किन चीजों में प्रभाव डाला था और किन चीजों ने प्रभाव नहीं डाला था तथा वे यह भी जानने में भी सक्षम होते हैं कि भविष्य में क्या हो सकता है। समाधान केंद्रित चिकित्सा क्लाइंट के साथ सहयोगी रवैया रखता है जबकि चिकित्सा के प्राचीन मॉडल शिक्षाप्रद रवैया अपनाते हैं।

वाल्टर तथा पेलर (1992) में चार चरण बताये जो समाधान केंद्रित चिकित्सा प्रक्रिया की विशेषज्ञ को बताते हैं–

1) क्लाइंट क्या चाहते हैं इसका पता लगाना चाहिये व कि क्लाइंट क्या नहीं चाहता।

2) चिकित्सक न तो इसमें रोग निदान करता है और न ही उन्हें कोई नैदानिक पहचान देते हैं। इसके स्थान पर वे यह देखते हैं कि क्लाइंट क्या कर रहें है जो कि पहले से ही प्रभावशाली है तथा वे क्लाइंट को इस दिशा में कार्य रहने के लिये प्रोत्साहित करते हैं।

3) अगर क्लाइंट ऐसा कुछ कर रहे हैं जो प्रभावशाली नहीं है तो चिकित्सक क्लाइंट को कुछ भिन्न करने के लिये प्रोत्साहित करता है।

4) चिकित्सा को संक्षिप्त रखने का प्रयास किया जाना चाहिये।

डी0 शेजर (1991) का विश्वास है कि क्लाइंट अपनी समस्या की प्रकृति का किसी तरह का मापन करके भी उनका समाधान कर सकते हैं। समाधान केंद्रित चिकित्सा प्राचीन समस्या के प्राचीन उपागम से अलग दिखाता है इस चिकित्सा विधि के प्रमुख चरण हैं–

1) क्लाइंट को एक अवसर दिया जाता है जिसमें वे अपनी समस्या के बारे में विस्तारपूर्वक बता सके। चिकित्सक क्लाइंट से पूछता है मैं आपकी किस तरह से सहायता कर सकता हूँ। जब क्लाइंट चिकित्सक का उत्तर देता है तो वह उसके उत्तर को सम्मानपूर्वक तथा ध्यानपूर्वक सुनता हैं।

2) चिकित्सक क्लाइंट के साथ जल्द से जल्द सुनिश्चित लक्ष्य को बनाता है । इस संबंध मे पूछा जाता है कि 'आपके जीवन में जब समस्या का समाधान हो जायेगा तो क्या अंतर आयेगा।'

चिकित्सक क्लाइंट से कहता है कि उस समय के बारे में बताये जब क्लाइंट के जीवन में समस्या इतनी जटिल नहीं थी। क्लाइंट की इन अपवादों को खोजने में सहायता की जाती है।

समाधान निर्माण संवाद के अंत में चिकित्सक क्लाइंट को सारांश में प्रतिपुष्टि (Feedback) प्रस्तावित करता है, प्रोत्साहित करता है तथा अगले सत्र से पहले क्लाइंट क्या अवलोकन कर सकता है जिसमें वह अपनी समस्या का समाधान कर सके।

चिकित्सक तथा क्लाइंट एक मूल्यांकन मापनी के द्वारा संतोषप्रद समाधान के संदर्भ में की जा रही प्रगति का मूल्यांकन करते हैं। क्लाइंट से यह प्रश्न किया जाता है कि समस्या का समाधान करने से पूर्व क्या किया जानो चाहिये तथा उनका अगला कदम क्या होगा।

7.25 चिकित्सकीय लक्ष्य

समाधान केंद्रित चिकित्सा बदलाव, अंतर्क्रिया तथा लक्ष्य प्राप्ति के संदर्भ में कुछ मूलभुत धारणा व्यक्त करती है। समाधान केंद्रित चिकित्सक यह विश्वास रखते हैं कि व्यक्ति के अंदर यह योग्यता होती है कि वे अर्थयुक्त व्यक्तिगत लक्ष्य को परिभाषित कर सके तथा उनके पास समस्या का समाधान करने के लिये पर्याप्त संसाधान होते हैं। प्रत्येक क्लाइंट के लिये लक्ष्य अद्वितीय होते हैं तथा क्लाइंट के द्वारा निर्मित किये जाते हैं जिसमें समृद्ध भविष्य का निर्माण हो सके।

समाधान केंद्रित चिकित्सा छोटे, विश्वनीय प्राप्त योग्य परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित करते हैं जिनसे अतिरिक्त सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं। समाधान केंद्रित चिकित्सक क्लाइंट की भाषा में जुडता है , समान शब्द गति तथा स्वर का उपयोग करता है। चिकित्सक लक्ष्य निर्देशित तथा भविष्यन्मुखी होता है। ' आपने क्या किया तथा तब से क्या परिवर्तन हुआ है।'

'आपने क्या नोटिस क्या है जिसने बेहतर परिणाम दिया है'

वाल्टर तथा पेलर (1992) में सुपरिभाषित लक्ष्यों का निर्माण करने पर बल दिया है–

1) क्लाइंट की भाषा में सकारात्मकता प्रस्तुत करना।

2) कार्य उन्मुखी होना।

3) यहाँ तथा तभी अभी पर संरचित होना ।

4) प्राप्य तथा विशिष्ट।

5) क्लाइंट के द्वारा नियंत्रित होना – क्लाइंट को ऐसा लगना चाहिये कि उनकी बातों को सुना व समझा जा रखा है। ऐसा उन्हें अर्थपूर्ण व्यक्तिगत लक्ष्य के निर्माण से पहले करना होता है।

समाधान केंद्रित चिकित्सा अनेक प्रकार के लक्ष्यों को प्रस्तावित करती है। परिस्थिति को देखने के नजरिये को बदलना।

समस्यात्मक परिस्थिति का सामना करने के तरीके को बदलना तथा क्लाइंट की शक्तियों व संसाधनों को सुनना आदि।

क्लाइंट को इस बात के लिये प्रोत्साहित किया जाता है कि समाधान केंद्रित बात करें न कि समस्या केंद्रित समस्या आधारित बात करने से समस्या और अधिक बढ़ सकती है। बदलाव के बारे में बात करने से बदलाव उत्पन्न होता है। जैसे–जैसे क्लाइंट ये बोलना सीखने लगते हैं कि वे पूरी तरह से क्या करने के योग्य है, उनकी शक्तियाँ क्या हैं तथा उनके संसाधन क्या हैं तथा उन्होंने ऐसा क्या किया जो सफल रहा जैसे–जैसे ,वैसे –वैसे वे चिकित्सा के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हो सके।

7.26 चिकित्सक का कार्य तथा भूमिका

क्लाइंट चिकित्सकीय प्रक्रिया में पूरी तरह से तब भागीदारी करते हैं जब वे देखते हैं कि वे संवाद की दिशा व उदृेश्य को निर्धारित करते हैं। चिकित्सकीय प्रक्रिया में क्लाइंट अपने भविष्य के बारे में सोचते हैं।

गटरमैन (2006) के अनुसार चिकित्सक परिवर्तन की प्रक्रिया में विशषज्ञ होते हैं लेकिन क्लाइंट इसमें विशेषज्ञ होते हैं कि वे क्या बदलना चाहते हैं। चिकित्सक का कार्य क्लाइंट को बदलाव की दिशा में अग्रसर करना होता है न कि यह बताना होता है कि क्या बदलाव लाना है।

चिकित्सकों का सहयोगपूर्ण संबंध बनाने का प्रयास यह विश्वास उत्पन्न करता है कि ऐसा करने से वर्तमान तथा भविष्य में आने वाले बदलावों के वृहद प्रसार के बारे मे समझा जा सकता। चिकित्सक आपसी विश्वास के वातावरण का निर्माण करते है तथा ऐसे संवाद करते हैं जिसमें क्लाइंट अपनी कहानी को मुक्त रूप से सृजित कर सके व खोज सके।

मुख्य चिकित्सकीय कार्यों में यह समाहित होता है कि क्लाइंट को यह समझने में सहायता की जाये कि वे बदलाव के लिये क्या कर सकते हैं।

7.27 चिकित्सकीय संबंध

अन्य चिकित्सा के समान समाधान केंद्रित चिकित्सा में भी चिकित्सक व क्लाइंट के बीच का संबंध महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है इस प्रकार समाधान केंद्रित चिकित्सका में संबंध निर्माण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । चिकित्सक का व्यवहार चिकित्सकीय प्रक्रिया की प्रभावशीलता पर बहुत असर डालता है। यह आवश्यक है कि विश्वास का माहौल बनाया जाये जिसमें क्लाइंट अन्य सत्रों के लिये वापस लौटे तथा गृहकार्यों को पूराकरे। यदि विश्वास का माहौल नही बनाया गया तो क्लाइंट अन्य सत्र में नहीं आयेगा। प्रभावशाली संबंध बनाने के लिये यह आवश्यक है कि वह क्लाइंट को यह समझा सके कि वह अपनी शक्तियाँ तथा संसाधनों (जो उनके पास पहले से है) का प्रयोग समाधान न के लिये कैसे कर सकते हैं। क्लाइंट को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे कुछ अलग कर सके तथा वे अपने वर्तमान तथा भविष्य के विषय के बारे में सृजनात्मक रूप से कैसे सोच सकते हैं।

डी0 शेजर ने तीन प्रकार के संबंध जो चिकित्सक व क्लाइंट के बीच बन सकते हैं, की व्याख्या की है—

1 (ग्राहक— क्लाइंट तथा चिकित्सक दोनों मिलकर समस्या की पहचान करते हैं तथा एक समाधान को खोजते हैं। क्लाइंट को ऐसा लगता है कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये, व्यक्तिगत प्रयास की आवश्यकता होगी।

2 (फरियादी—क्लाइंट समस्या के बारे में विस्तार से बताता है लेकिन न तो वह इसका समाधान करने के लिये योग्य होता है और न ही समाधान करने के लिये भूमिका निभाना चाहता है। उनका ये विश्वास होता है कि समाधान अन्य लोगों के कार्यों पर निर्भर करता है। इस परिस्थिति में यह आशा करता है कि चिकित्सक अन्य व्यक्ति को बदल दे जिस पर वह समस्या को आरोपित करता है।

3 (आगन्तुक —इस तरह के संबंध में क्लाइंट इसलिये चिकित्सा के लिये आते हैं क्योंकि अन्य लोगों पति या पत्नी, माता—पिता, शिक्षक आदि ये सोचते हैं कि क्लाइंट समस्या में है। यह क्लाइंट यह स्वीकार नहीं कर सकता है कि उसके पास समस्या है तथा वह चिकित्सा में कुछ अन्वेषित करने में भी असमर्थ रहता है।

डी0 जोंग तथा बर्ग (2008) ने कहा कि इस संदर्भ में सावधानी रखनी चाहिये जिसमें क्लाइंट को स्थिर पहचान में न बाँटा जा सके। से तीन भूमिकायें संवाद के लिये मात्र आरंभिक बिंदु हैं। इन वर्गों में बाँटने के स्थान पर चिकित्सक क्लाइंट व स्वयं के बीच बनने वाले संबंध को प्रतिबिंबित कर सकता है।

उदाहरण के लिये, ऐसे क्लाइंट जो अपनी समस्या का कारण अन्य लोगों को मानते हैं वे योग्य प्रशिक्षण के द्वारा समस्या में अपनी भूमिका का देखने लगते हैं तथा उसका समाधान करने के लिये सक्रिय प्रयास करना आरंभ करने लगते हैं। आगन्तुक क्लाइंट चिकित्सक के साथ ग्राहक संबंध बनाना चाहता है जिससे वह अन्य व्यक्तियों

को संतुष्ट कर सके। समस्या के सामने आरम्भ में कुछ क्लाइंट अपने को शक्ति ही न तथा पूर्णतया हारा हुआ मानता है। कुछ क्लाइंट जो अपनी समस्या को सही तरीके से अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं वे प्रभावशाली चिकित्सकीय संबंध में बदल सकते हैं। चिकित्सक क्लाइंट के भिन्न–भिन्न व्यवहारों पर कैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है वह संबंध में तबदीली ला सकता है। संक्षिप्त में फरियादी तथा आर्गडक क्लाइंट के अंदर ग्राहक प्रकार के क्लाइंट में बदलने की प्रर्याप्त क्षमता होती है।

7.28 चिकित्सकीय तकनीकि तथा प्रक्रिया

सहयोगपूर्ण संबंध की स्थापना–समाधान केंद्रित चिकित्सक क्लाइ़ंट की समाधान को खोजने तथा अधिक संतुष्टिप्रद जीवन देने व प्राप्त करने के लिये अनेक विधियों से सहायता कर सकते हैं। हालाँकि अगर ये सभी प्रक्रियायें बिना किसी कार्यकारी गठबंधन की जाती है तो इसमें प्रभावशाली परिणाम नहीं प्राप्त होता। यह महत्वपूर्ण है कि चिकित्सक वास्तव में यह विश्वास रखे कि क्लाइंट अपने जीवन का वास्तविक विशेषज्ञ है। ये सभी तकनीकें जिनका यहाँ विश्लेषण किये जा रहा है वे सभी कार्यकारी सहयोगी संबंध के निर्माण के पूर्व ही प्रयुक्त की जानी चाहिये।

चिकित्सा के पूर्व परिवर्तन – साधारणतया मिलने का समय निश्चित करने से सकारात्मक परिवर्तन शुरू होता है। प्रारंभिक चिकित्सकीय सत्र मे साधारणतया ऐसे प्रश्न चिकित्सक पूछता है 'हमारी मुलाकात से पहले आपने अपनी समस्या का समाधान के लिये क्या किया था। ऐसे परिवर्तन के बारे पूछकर चिकित्सक क्लाइंट को उत्साहित कर सकता है ।इससे क्लाइंट अपने प्रयास को विस्तृत रूप से बताता है। ये परिवर्तन चिकित्सा पर आरोपित नहीं हो सकते। इसमें ऐसे प्रश्न पूछने से चिकित्सक क्लाइंट को प्रोत्साहित करते हैं ताकि चिकित्सकीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे चिकित्सक के स्थान पर अपने संसाधनों पर अधिक भरोसा कर सके।

अपवाद प्रश्न–समाधान केंद्रित चिकित्सा इस बात पर विश्वास रखती है कि क्लाइंट के जीवन में ऐसा भी समय था जब चिहिन्त की गयी समस्या इतनी कष्टदायक नहीं थीं। ऐसे समय को अपवाद कहते हैं तथा ये भिन्नता के समाचार का प्रतिनिधित्व करता था। अपवाद क्लाइंट के जीवन के ये भूतकालीन अनुभव होते हैं जिसमें समस्या का प्रकट होना तर्कसंगत होता लेकिन यह किसी तरह नहीं उत्पन्न हुयी।

क्लाइंट की ऐसे अपवादों को पहचानने मे मदद करने से क्लाइंट समाधान की तरफ कार्य करेंगे। ऐसे अन्वेषण क्लाइंट को यह बताते हैं कि समस्या बहुत शक्तिशाली नहीं है तथा यह हमेशा के लिये स्थित नहीं होगी। इससे संसाधनों का बढ़ावा देने का अवसर मिलता है, शक्ति का विकास होता है तथा संभावित उपायों का पता चलता है। चिकित्सक क्लाइंट से पूछते है कि ऐसे अपवादों को बार–बार घटित होने के लिये क्या करना चाहिये समाधान केंद्रित चिकित्सा की शब्दावली में इसे परिवर्तन बातचीत कहते हैं।

चमत्कारिक प्रश्न– डी0 शेजर के अनुसार चिकित्सकीय लक्ष्य चमत्कारिक प्रश्न के द्वारा निर्मित किये जाते हैं। चिकित्सक प्रश्न करता है, 'अगर एक चमत्कार घटित होता तथा जो समस्या आपके पास है वह रातों रात हल हो जाती है, आपको कैसे पता चलेगा कि यह हल हो गयी है कि तथा भिन्न बात क्या होगी। क्लाइंट को इसके पश्चात प्रोत्साहित किया जाता है तथा यह पूछा जाता है ' भिन्न क्या घटित होगा।

अगर क्लाइंट यह कहता है कि यह और अधिक आत्मविश्वास तथा सुरक्षा चाहता है तो चिकित्सक यह कह सकता है ' आप कल्पना कीजिये कि आज आपने ऑफिस को जल्दी छोड़ दिया तथा और अधिक सुरक्षा तथा आत्मविश्वास के मार्ग पर है। आप अलग क्या करेंगे।' इस प्रकार के काल्पनिक समाधान से प्रत्यक्षीकृत समस्या मे परिवर्तन आता है।

डी0 जोंग तथा वर्ग ने चमत्कारिक प्रश्नों को अनेक कारणों से उपयोगी तकनीकि माना है। क्लाइंट को यह कहने से चमत्कार हो सकते हैं भविष्य की अनेक संभावनाओं के द्वारा कुल जाते हैं। क्लाइंट को उत्साहित किया जाता है कि वे ऐसे स्वप्न देखे जिसमें उन परिवर्तनों को घटित होते देंखे जिन्हें वे देखना चाहते थे। क्लाइंट एक भिन्न प्रकार के जीवन के बारे में सोचने लगता है जो किसी विशेष समस्या के द्वारा प्रभावित नहीं होती। यह प्रयास भूत व वर्तमान समस्या से ध्यान हटाकर भविष्य के संतुष्टदायक जीवन पर ध्यान केंद्रित करता है।

मापनी प्रश्न –समाधान केंद्रित चिकित्सा मापनी प्रश्नों का भी उपयोग करता है। ऐसे प्रश्नों का उपयोग किया जाता है जब व्यक्ति के अनुभवों में परिवर्तन को प्रत्यक्ष तरीके से अवलोकित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये, एक महिला जो कि चिंता की भावना को बता रही है, उससे पूछा जा सकता है, ' 0 से 10 की मापनी पर जिसमें शून्य का अर्थ है कि जब आप पहली बार चिकित्सा के लिये आये थे तथा 10 का अर्थ है कि आपने उस चमत्कारिक दिन जिसमे आपकी समस्या खत्म हो गयी, कैसा महसूस किया। अब आप अपनी चिंता को कैसे मूल्यांकित करेंगे। अगर क्लाइंट केवल शून्य से एक तक बढ़ता है, तब भी उसमें सुधार होता है। उससे पूछा जा सकता है कि उसने ऐसा कैसे किया और अधिक सुधार के मापनी प्रश्नों से क्लाइंट इस बात पर और अधिक ध्यान दे पाते हैं कि वे क्या कर रहे है तथा उन्हें वांछित परिवर्तन को प्राप्त करने के लिये क्या कदम उठाने चाहिये।

प्रथम सत्र कार्य सूत्र– प्रथम सत्र कार्य सूत्र एक प्रकार का गृहकार्य होता है जिसे चिकित्सक क्लाइंट को प्रथम सत्र व दूसरे सत्र के बीच में पूरा करने को कहता है। चिकित्सा कह सकता है ' इस समय तथा उस समय जब हम मिलेंगे , उसके बीच मे मैं चाहूँगा कि आप अवलोकन करे ताकि बता सके कि आपके (परिवार,विवाह,जीवन,संबंध)में क्या घटित होता है जिसे आप जारी रखना चाहते हैं। दूसरे सत्र में पूछा जा सकता है कि उन्होंने क्या अवलोकित किया तथा वे भविष्य में क्या घटित होता देखना चाहेंगे। इस प्रकार के कार्य से क्लाइंट में आशा उत्पन्न होती

है कि परिवर्तन अवश्यंभावी है। यह जानना आवश्यक नही है कि क्या परिवर्तन होगा बल्कि यह जानना आवश्यक है कि परिवर्तन कब होगा। शेजर के अनुसार इस प्रयास से क्लाइंट में अपनी परिस्थिति को लेकर आशावादिता उत्पन्न होती है। क्लाइंट ज्यादातर प्रथम सत्र कार्य सूत्र में सहायता करते हैं तथा अपने प्रथम सत्र के बाद से घटित होने वाले सुधारों को बताते हैं। इस प्रथम सत्र कार्य सूत्र का उपयोग तब किया जा सकता है जब क्लाइंट को अपने विचार, कहानियों को अभिव्यक्त करने का अवसर प्राप्त होता है। यह महत्वपूर्ण है कि क्लाइंट को परिवर्तन के लिये निर्देशित करने से पहले उन्हें अच्छी तरह समझ लिया जाये ।

चिकित्सक द्वारा क्लाइंट की प्रतिपुष्टि– समाधान केंद्रित चिकित्सक प्रायः प्रत्येक सत्र की समाप्ति पर 5 से 10 मिनट का ब्रेक लेते, जिससे क्लाइंट के लिये सारांश में संदेश बना सके। इस ब्रेक में चिकित्सक क्लाइंट के लिये प्रतिपुष्टि का निर्माण करता है जिससे क्लाइंट को ब्रेक के बाद दिया जाता है। डी0 जोंग तथा बर्ग ने प्रतिपुष्टि निर्माण के लिये तीन बातें आवश्यक बतायी है– प्रशंसा , मिलान करना तथा किसी कार्य का सुझाव देना ।

प्रशंसा के द्वारा क्लाइंट जो कर रहा है उसे स्वीकारोक्ति दी जाती है। यह आवश्यक है कि प्रशंसा यांत्रिक रूप में न करके प्रोत्साहन क रूप में की जाये जिसमें उनमें आशा का संचार हो सके कि वे अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरा सेतु जो कि प्रारंभिक प्रशंसा तथा सुझाव दिये गये कार्य को जोड़ता है। यह सुझाव को तार्किकता प्रदान करता है। अवलोकित कार्यों में क्लाइंट को अपने जीवन के कुछ पक्षों पर साधारण ध्यान देने के लिये कहा जाता है। व्यवहारात्मक कार्यों में क्लाइंट को ऐसा कार्य करना पड़ता है जिसे चिकित्सक मानता है कि समाधान के लिये यह कार्य आवश्यक है। डी0 जोंग तथा बर्ग के अनुसार चिकित्सक की प्रतिपुष्टि के द्वारा क्लाइंट को यह पता चलता है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उन्हे और क्या करना चाहिये।

चिकित्सक प्रारंभिक सत्र से ही समापन की तैयारी करने लगते हैं।जब क्लाइंट संतोषप्रद समाधान कर लेते हैं तो चिकित्सकीय संबंध का समापन हो जाता है। प्रारंभिक लक्ष्य निर्धारण प्रश्न जो चिकित्सक प्रायः पूछता है, ' आप मुझसे मिलकर अपने जीवन मे कैसे बदलाव ला सकते हैं। अन्य प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब समस्या का समाधान हो जायेगा तो आप क्या भिन्न करेंगे। मापनी प्रश्नों के द्वारा चिकित्सक क्लाइंट की प्रगति की जानकारी देता है जिसमें क्लाइंट को यह निर्धारित करने में आसानी होती है कि उन्हें चिकित्सा के लिये कब नहीं आना है। समाप्ति से पहले चिकित्सक क्लाइंट को उनकी पहचान करने में सहायता करता है जिन्हें वे अपने घटित हो चुके बदलाव के लिये भविष्य में भी जारी रख सके क्लाइंट को इसमें भी सहायता दी जा सकती है कि बदलाव को जारी रखने के मार्ग में आ रही बाधा को रोक सके।

7.29 उपयोगिता

समाधान केंद्रित चिकित्सा समाधान केंद्रित होती है न कि यह देखती है कि समस्या क्यों व कैसे उत्पन्न हुयी। समाधान केंद्रित चिकित्स संक्षिप्त होती है क्योंकि इसका बल मुख्यतः क्या कार्य करता है पर होता है तथा इस कारण यह उपागम वर्तमान दौड़ती भागती जीवन शैली में फिट बैठता है।

समाधान केंद्रित चिकित्सा का सफलतापूर्वक उपयोग विभिन्न प्रकार के क्लाइंट के ऊपर किया जा सकता है जिनमें मादक द्रव्यों का सेवन, अवसाद , संबंधों में दिक्कत, संबंधों का टूटना, गुस्से पर नियंत्रण, संवाद में दिक्कत , भोजन विकृति आदि। यह चिकित्सा वृहद समूह पर लागू होती है जैसे बच्चे, परिवार आदि।

7.30 शक्तियाँ

समाधान केंद्रित उपागम

क्लाइंट की योग्यता पर ध्यान केन्द्रण

संक्षिप्त विधि

7.31 समाधान केंद्रित चिकित्सा की कमियाँ

जो क्लाइंट गहन चिकित्सा की आशा करते हैं इसके साधारण रूप के कारण नकार सकते हैं।

7.32 निष्कर्ष

समाधान केंद्रित चिकित्सा परामर्शदाता को क्लाइंट के तात्कालिक संसाधनों को खोजने व उपयोग में सहायता प्रदान करते हैं। समाधान केंद्रित चिकित्सा क्लाइंट की समस्या केंद्रित होने के स्थान पर समाधान केंद्रित होना सीखाती है। यह एक कठिन कार्य है खासतौर पर जब क्लाइंट ने कई वर्षों तक इस स्थिति में बिताये हैं। चमत्कारिक प्रश्न तथा अपवाद प्रश्न नयी सोच व नये विचार को जन्म देने में सहायक होते हैं।

7.33 व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का विकास मानवतावादी मनोविज्ञान से हुआ है। समाधान केंद्रित उपागम व्यक्ति को इतना योग्य तथा स्वतंत्र मानता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके, अपनी शक्तियों को समझ सके तथा अपने जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला सके सेलिगमैन,कार्ल रोजर्स ने मानवतावादी उपागम का प्रयोग क्लाइंट के साथ चिकित्सकीय संबंध बनाने के लिये किया है। इसमें क्लाइंट के

जीवन में आत्म–सम्मान की भावना में वृद्धि होती है जिससे उन्हें अपनी शक्तियों का उपयोग करने में सहायता मिलती है।

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा क्लाइंट को ही चिकित्सा का प्रमुख मानते हैं। जिससे क्लाइंट को स्वयं के बारे में, आत्म–अन्वेषण करने की तथा आत्म–प्रत्यय की जानकारी रखने की योग्यता में वृद्धि होती है। इस चिकित्सा विधि की सहायता से परानुभूति में वृद्धि होती है। वर्तमान में व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का केंद्रण क्लाइंट में अपने बारे में अच्छी समझ विकसित कर सके ऐसे वातावरण में करता है जिसमें क्लाइंट अपनी समस्या का समाधान बिना किसी चिकित्सकीय मदद के कर सकता है। रोजर्स ने चिकित्सक की व्यक्तिगत विशेषता पर भी बल दिया तथा चिकित्सक क्लाइंट के बीच के संबंध को भी सफल चिकित्सकीय प्रक्रिया के लिये आवश्यक माना है।

7.34 मुख्य प्रत्यय

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा में मानवतावादी प्रभाव –जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है,पाया जाता है । मानवता उपागम का व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति केंद्रित चिकित्सकों का विश्वास होता है कि क्लाइंट अपने में योग्य तथा विश्वसनीय होता है तथा वे क्लाइंट को अपने में ही परिवर्तन लाने के लिये ध्यान केंद्रित करते है।

सिद्धिकरण– व्यक्ति के अंदर आत्म–सिद्धिकरण की तरफ कार्य करने की प्रवृत्ति होती है। आत्म सिद्धीकरण का अर्थ संपूर्ण विकास से है। यह पूरे जीवन पर्यन्त होता है क्योंकि व्यक्ति आंतरिक लक्ष्य, आत्म अनुभूति स्वायत्ता तथा आत्म नियमन की तरफ कार्य करता है।

योग्यता की शर्त–योग्यता की शर्त इस तरह से प्रभाव डालता है कि व्यक्ति का आत्म–प्रत्यय जीवन के महत्वपूर्ण लोगों से विकसित होता है। योग्यता की शर्त से आशय महत्वपूर्ण लोगों के निर्णयात्मक संदेश से है जो व्यक्ति की परिस्थिति को प्रभावित करते हैं। जब योग्यता की शर्त को व्यक्ति पर थोपा जाता है , आत्म छवि प्रायः कम हो जाती है। यदि व्यक्ति अतिसुरक्षात्मक अथवा प्रभावशाली वातावरण में रहता है तो उस पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पूर्ण क्रियाशील व्यक्ति –पूर्ण क्रियाशील व्यक्ति वे होते हैं जिनके पास ' आदर्श सांवेगिक स्वास्थ्य होता है। अधिकतर पूर्ण क्रियाशील व्यक्ति अनुभव को ग्रहण करते हैं उनके पास जीवन का अर्थ तथा उद्देश्य होता है तथा अपने ऊपर तथा दूसरों पर भरोसा होता है। व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का एक मुख्य लक्ष्य पूर्ण क्रियाशीलता पर भी कार्य करना होता है।

प्रासंगिक परिप्रेक्ष्य– प्रासंगिक प्रतिरूप से आशय एक अद्वितीय प्रत्यक्षीकरण से है जिससे संसार के बारे में जानकारी मिलती है। व्यक्ति अपने संसार की अनुभूति तथा अपने संसार को प्रत्यक्षीकृत करके व्यक्तिगत रूप से उसके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा व्यक्ति की अनुभूतियों पर ध्यान केंद्रित करता है ।

7.35 व्यक्तित्व विकास के बारे में साधारण विचार

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा के संदर्भ में व्यक्तित्व विकास के लिये अनेक सामान्य विचार दिये गये है। साधाराणतः व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का मानना है कि व्यक्तित्व पूरी तरह से तब सही होता है जब व्यक्ति धनात्मक स्वीकारात्मक सम्मान को प्राप्त करता है। एक व्यक्ति जो आत्म–सिद्धित होता है वह अनुभव के प्रति खुला होता है तथा कम रक्षात्मक होता है।

वो व्यक्ति जो कि शर्तपूर्ण धनात्मक सम्मान को प्राप्त करता है उसका आत्म–सम्मान कम होता है तथा स्वयं के बारे में निम्न विचार होता है। 'एक व्यक्ति जो कि आत्म–सिद्धीकरण को प्राप्त कर चुका होता है वह अधिक अनुभव को प्राप्त करेगा तथा कम रक्षात्मक होगा। वह वर्तमान में ही रहेगा निर्णय निर्माण योग्यता पर विश्वास करेगा तथा अधिक सृजनात्मक होगा।

7.36 चिकित्सा के लक्ष्य

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा के लक्ष्य हैं– सेलिगमैन, (2006)

1) क्लाइंट के विश्वास तथा वर्तमान समय में ही रहने की योग्यता को बढ़ावा देना। इसमें क्लाइंट पूरी प्रक्रिया में ईमानदारी बरतता है क्योंकि इसमे चिकित्सक क्लाइंट को निर्वयात्मक दृष्टि से नहीं देखता है।

2) आत्म–सम्मान तथा आत्म जागरूकता को बढावा देना

3) क्लाइंट को परिवर्तन के लिये प्रोत्साहित करना।

संगतता–संगतता से तत्पर्य चिकित्सक के कहने और करने में अनुरूपता का होना। अगर चिकित्सक कुछ कह रहा है परन्तु इसकी शारीरिक भाषा कुछ और प्रदर्शित कर रही है तो क्लाइंट चिकित्सक के प्रति विश्वास व्यक्त नहीं कर पाता। उदाहरण के लिये यदि चिकित्सक कहता है, 'मैं यह समझ सकता हूँ कि आप कहाँ से आ रहे हैं परंतु यदि चेहरे से अस्त–व्यस्त दिख रहा है तो क्लाइंट इसे देखकर अपनी वास्तविक भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाता है। अतः चिकित्सक को अपनी शारीरिक भाषा के बारे में जागरूक होना चाहिये। यदि कोई गलतफहमी उत्पन्न होती है तो चिकित्सक को उस बारे में क्लाइंट से बात करनी चाहिये।

शर्तहीन धनात्मक सम्मान– शर्तहीन धनात्मक सम्मान से आशय है कि चिकित्सक को क्लाइंट को स्वीकार करना चाहिये तथा उसे सम्मान देना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं कि चिकित्सक क्लाइंट की हर बात से सहमत हो । शर्तहीन धनात्मक सम्मान के

द्वारा यह पता चलता है कि क्लाइंट बिना किसी मूल्यांकन के कैसा महसूस करता है तथा यह तथ्य कि वह स्वीकार किया जा सकता है को बढ़ावा मिलता है।

परानुभूति– परानुभूति वह योग्यता है जिसे व्यक्ति केंद्रित चिकित्सक क्लाइंट के संवेग को समझने के लिये प्रदर्शित करता है । परानुभूति, सहानुभूति से अलग होती है । सहानुभूति से तात्पर्य है कि चिकित्सक ,क्लाइंट के प्रति दुःख व्यक्त करता है जबकि परानूभूति क्लाइंट के प्रति समझ व्यक्त करता है।

क्लाइंट – मुझे ऐसा लगता है कि मेरी किसी की कोई चिंता नहीं है तथा मैं बिल्कुल अकेला हूँ ।

परानुभूति – अच्छा तो आप स्वयं को अकेला महसूस कर रहे है तथा कोई चिंता नहीं कर रहा है।

सहानुभूति – मुझे दुःख है कि आपको ऐसा लग रहा है।

अनिर्देशिता– व्यक्ति केंद्रित चिकित्सक अनिर्देशिता का उपयोग तकनीकि के रूप में करता है। इससे तात्पर्य है कि चिकित्सक क्लाइंट सुझाव नहीं देता है।

अन्य तकनीकें– अन्य तकनीकें जो कि व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा प्रयुक्त करती है वे है – भावनाओं का प्रतिबिंबीकरण , खुले प्रश्न आदि।

इसके प्रमुख उदाहरण है–

भावनाओं का प्रतिबिंबीकरण

क्लाइंट– मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूँ मैं बहुत दिग्भ्रमित व चिंतित हूँ।

परामर्शदाता – अच्छा तो आप दिग्भ्रमित व चिंतित महसूस कर रहे हैं।

खुला प्रश्न–

क्लाइंट– मेरी कार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी तथा दूसरी गाड़ी से उतर कर व्यक्ति मुझे गालियाँ देने लगा।

परामर्शदाता– आप को कैसा महसूस हुआ?

सांकेतिक शब्दों में बदलना (Paraphrasing)

क्लाइंट – जबसे मेरा मेरी महिला मित्र के साथ संबंध टूटा, मैं अवसाद ग्रस्त हूँ। मैं ठीक से सो नहीं पा रहा हूँ व काम पर ध्यान केंद्रित नहीं कर पा रहा हूँ।

परामर्शदाता – अच्छा तो अवसाद की भावना आपके रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित कर रही है।

प्रोत्साहन –

क्लाइंट – इससे मुझे रोना आ जाता है। मुझे समझ नही आता कि मैं क्या करूँ।

परामर्शदाता – उह–उह (Uh-huh)

7.37 उपयोगितायें

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का उपयोग व्यक्तियों, समूहों तथा परिवारों पर किया जाता है। व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का सफलता पूर्वक उपयोग चिंता विकृति , मद्यपान से संबंधित समस्यायें , मनोदैहिक समस्यायें अंतवयैक्तिक समस्यायें, अवसाद तथा व्यक्तित्व आदि में किया जाता है। इसका प्रयोग अनचाही गर्भावस्था, बीमारी या प्रियजन की मृत्यु होने पर भी किया जाता है। जब इस चिकित्सा की जैसे निर्देशित चिकित्सा के साथ तुलना की जाती है , तो व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा भी उपयोगी सिद्ध होती है।

7.38 व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा की शक्तियाँ व कमजोरिया

शक्तियां –

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का प्रतिरूप आशावादी तथा अद्यतन होता है।

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा को विभिन्न संस्कृतियों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

इसका प्रयोग अन्य चिकित्सा में आधार के रूप में किया जाता है, जैसे क्लाइंट चिकित्सक संबंध पर बल।

कई शोधों ने क्लाइंट चिकित्सा संबंध की महत्ता पर प्रकाश डाला है।

क्लाइंट को चिकित्सा में सकारात्मक अनुभव होता है क्योंकि उन्हें ऐसा विश्वास हो जाता है कि चिकित्सा का केंद्रण उन पर तथा उनकी समस्याओं पर है।

क्लाइंट को ऐसा अनुभव होता है कि उन्हे ध्यानपूर्वक सुना जा सकता है तथा उनका कोई मूल्यांकन नहीं हो रहा है।

क्लाइंट को ऐसा लगता है कि व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा में उनके ऊपर निर्णय का पूरा दायित्व है।

कमियाँ–

इस उपागम के अनुसार चिकित्सक को केवल क्लाइंट से संबंध बऩाने वाला ही बना देता है।

चिकित्सक द्वारा क्लाइंट को अपना स्वयं का मार्ग ढूंढ़ने में कठिनाई होती है।

अगर चिकित्सक पूर्ण रूप से निष्क्रिय तथा अप्रभावी होगा तो चिकित्सा को पूर्ण दिशा नही मिल पाती है।

यह चिकित्सा कभी–कभी साधारण तथा आवास्तविक प्राप्त होती है।

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा विकासात्मक मनोगत्यात्मक अथवा व्यवहारात्मक चिकित्सा पर आधारित नहीं है। अतः यह क्लाइंट की संपूर्ण समझ को सीमित कर देती है।

मात्र क्लाइंट की बातों को सुनना ही पर्याप्त नहीं है।

यह चिकित्सा उनके लिये लाभप्रद नहीं है जो बदलाव के लिये अभिप्रेरित है।

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा रोगी मनोविकृति के लिये उपयोगी नहीं है।

चिकित्सक द्वारा क्लाइंट को शर्तहीन धनात्मक सम्मान दिया जाता है अतः यह क्लाइंट को वास्तविक जीवन का सामना करने के लायक बनाने में असमर्थ है।

क्लाइंट के अंदर स्वयं की समस्या का समाधान करने की योग्यता में कमी का होना।

7.39 निष्कर्ष

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का विकास कार्ल राजर्स द्वारा किया गया जिन्होंने मानवतावादी उपागम को प्रस्तुत किया । यह उपागम व्यक्ति को योग्य तथा स्वतन्त्र रूप में देखता है। यह उपागम व्यक्ति को इतना उपयोगी समझता है कि वह अपनी योग्यताओं को समझ सके तथा अपनी समस्याओं का समाधान कर सके तथा अपने जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला सके। संक्षेप में, व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा अनिदेशात्मक तथा सकारात्मक चिकित्सा है जो व्यक्ति की योग्यताओं पर ध्यान केंद्रित करती है तथा यह मानती है कि व्यक्ति अपने जीवन में परिवर्तन करके आत्म सिद्धीकरण की अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

7.40 सारांश

कला चिकित्सा ,चिकित्सा का एक ऐसा रूप है जिसमें आकृति व वस्तुओं की रचना , मनोचिकित्सकीय संबंधों जो कला चिकित्सा के बीच में बनता है , में केंद्रीय भूमिका निभाता है ।

नाट्य चिकित्सा , नाट्य , रंगमंचीय प्रक्रियाओं व उत्पादों का क्रमबद्व उपयोग करते हुये उसे लक्षणों से मुक्ति , सांवेगिक तथा भौतिकीय एकीकरण तथा व्यक्तिगत विकास के लक्षणों से संबंधित करती है ।

समाधान केंद्रित चिकित्सा भविष्यमुखी तथा लक्ष्य निर्देशित होती है तथा यह समस्या के स्थान पर समाधान पर अधिक ध्यान केंद्रित करती है ।

व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा क्लाइट को ही चिकित्सा में प्रमुख मानते है जिससे क्लाइट को स्वय के बारे में , आत्म अन्वेषण करने की विधि तथा आत्म प्रत्यय को जानने की योग्यता में वृद्धि होती है ।

7.41 शब्दावली

अन्वेषण कार्य – इस तरह की तकनीकि का उद्देश्य क्लाइट को अपने सभी चेतन विचारों को स्वतः स्वतंत्रतत्रापूर्वक अभिव्यक्त करने के लिये प्रेरित करने के लिये होता है ।

स्वचालित रेखाचित्र – इस तकनीकि में सर्वप्रथम क्लाइट को विश्रामपूर्वक बैठाया जाता है । इसके पश्चात क्लाइट को कुछ लाइने खीचने को कहा जाता है । कुछ केसों में क्लाइट को यह निर्देश दिया जाता है कि अभ्यास के खत्म होने तक वह अपनी पैन न उठाये ।

मुक्त चित्रण – मुक्त चित्रण में क्लाइट से यह कहा जा सकता है कि वह अपने आपको स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त करें तथा चित्रण की योजना के बारे में चिंतन न करें ।

रेखांकित पूर्णता – इस तकनीकि में क्लाइट को एक या एक से अधिक कागज के टुकडे दिये जाते है जिन पर कुछ पंक्तियां या आकृति बनी होती है ।

घर वृक्ष व्यक्ति – इससे क्लाइट को एक घर , वृक्ष तथा एक व्यक्ति को एक ही में चित्रित करने को कहा जाता है । इसके द्वारा क्लाइट को यह कार्य दिया जाता है ।

नाटकीय प्रक्षेपण – यह नाट्य चिकित्सा की एक तकनीक है । इसके द्वारा क्लाइट के अंदर के संवेब या विचार को जाना जा सकता है तथा इसे नाट्य चिकित्सा के द्वारा प्रक्षेपित किया जा सकता है ।

अपवाद प्रश्न –समाधान केंद्रित चिकित्सा इस बात पर विश्वास रखती है कि क्लाइट के जीवन में कष्टदायक नही था । ऐसे समय को अपवाद कहते है ।

चमत्कारिक प्रश्न – समाधान केंद्रित चिकित्सा से संबंधित कुछ प्रश्न ऐसे होते है जिसमें चिकित्सक प्रश्न करता है कि अगर एक चमत्कार घटित होता है तथा जो समस्या रातो रात हल हो जाती है , आपको ऐसा पता चलेगा कि यह समस्या हल हो गयी है तथा इसमें भिम्न बात क्या होगी ।

पूर्ण क्रियाशील व्यक्ति – ये वे व्यक्ति होते है जिनके पास आर्दश सांवेगिक स्वास्थय होता है ।

प्रासंगिक परिप्रेक्ष्य – प्रासंगिक प्रतिरूप से आशय एक अद्वितीय प्रत्यक्षीकरण से है जिससे संसार के बारे में जानकारी मिलती है ।

संगतता – संगतता से तात्पर्य है चिकित्सक के कहने व करने में एकरूपता का होना ।

परानुभूति – परानुभूति वह योग्यता है जिसे व्यक्ति केंद्रित चिकित्सक क्लाइट के संवेग को समझने के लिये करते है ।

7.42 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

(1) कला चिकित्सा की शरूआत सर्वप्रथम .... में .... ने की थी ।
(वालर व शिलोरी ने 1948 में)

(2) ब्रिटेन में सर्वप्रथम ....ने कला चिकित्सा शब्द का प्रयोग किया ।
(एड्रियन हिल)

(3) .... ने नाट्य चिकित्सा में पाँच चरण सिद्धांत को चिन्हित किया ।
(रीनी इमुयात)

(4) आधुनिक समाधान केंद्रित चिकित्सा का विकास .... ने किया था । (स्टीव डी शेजर तथा इनमु किम बर्ग)

(5) ....से आशय है कि चिकित्सक को क्लाइट को स्वीकार करना चाहिये व सम्मान देना चाहिये । (शर्तहीन धनात्मक सम्मान)

7.43 संदर्भ ग्रंथ सूची

8 Edward D. Art Therapy – Sage Publication. www.Sagepub.com.

9 www. ep. Liu.se.

10 Art Therapy Workbook : An Alderian Application: A master's Project. The Faculty of Adler Graduate School. In Partial fulfillment of the requirement of the Degree of Master of Arts in Alderian Counseling and Psychotherapy by MarishaWeihe.

11 www.nadta.org

12 www.goodtherapy.org

13 David , R. , Johnson, R. E. (2009) Current Approaches in Drama Therapy. Charls E. Thomas- Publisher LTd.

14 Judith, A., R. (1998) Art Therapy : An Introduction . Publisher-Bruner – Routeldge.

15 Sue, J. (1997) Drama Therapy: Theory and Practice, 3 Publisher Routledge

16 Robort, J. Landy (1994). Drama Therapy, Concepts, Theories and Practices.

17 www.ivcc.edu.

18 www.elementsuk.com

19 www. First Psychology. Co.U.K.

20 Cory, G. (2010). Theory and Practice of Counseling and Psychotherapy. Cenage Learning.

21 Andrews, J. & Clark, D. J. (1996). In the case of a depressed women: Solution Focused or narrative therapy approaches? The Family Journal 4(3), 243-250.

22 Berg, J.K.. & Miller, S.D. (1992). Working with the Problem Drinker: A solution focused approaches. New York: Norton.

23 Bohrat, A. C., & Greenberg, L.S. (Eds.). (1997). Empathy reconsidered : New Directions in Psychotherapy. Washington, DC: American Psychological Association.

24 Boy, A.V., & Pine, G.J. (1999). A person Centered foundation for counseling and psychotherapy (2nd ed.). Springfield , IL: Charles C Thomas.

7.44 निबंधात्मक प्रश्न

(1) कला चिकित्सा के स्वरूप पर प्रकाश डाले । इसकी उपयोगिता बताये ।

(2) नाट्य चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास बताइये तथा इसकी उपयोगिता , लाभ व सीमायें बताइये ।

(3) समाधान उपाय केंद्रित चिकित्सा का परिचय दीजिये तथा इसके अभिग्रह बताइये । इसकी तकनीकि बताइये ।

(4) व्यक्ति केंद्रित चिकित्सा का परिचय दीजिये । इसके चरण , लाभ व सीमायें बताइयें ।

इकाई 8: परामर्श के उद्देश्य, परिवार और समूह परामर्श; एक परामर्शदाता के रूप में शिक्षक (Aim of Counseling, Family and Group counseling, Teacher as a Counselor)

संरचना

8.1प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 परामर्श

8.4 परामर्शन के लक्ष्य

8.4.1 अवलंब

8.4.2 मनोशैक्षिक निर्देशन

8.4.3 निर्णय रचना

8.4.4 समस्या-समाधान

8.4.5 समायोजन

8.4.6 आपद्कालीन हस्तक्षेप एवं प्रबन्धन

8.4.7 लक्षण उन्मूलन/सुधार

8.4.8 अंतर्दृष्टि का विकास

8.4.9 आत्म-बोध का विकास

8.4.10 परिवेश एवं स्वयं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास

8.4.11 जीवन में सार्थकता एवं अर्थबोध का विकास

8.4.12 व्यवहार परिमार्जन एवं व्यक्तित्व

8.4.13 उपयुक्त स्वास्थ्य व्यवहार का विकास

8.5 परिवार और समूह परामर्श

8.5.1 परिवार परामर्श

8.5.2 समूह परामर्श

8.5.2.1 सामूहिक परामर्श के आधार

8.5.2.2 समूह परामर्श की पद्धतियॉ

8.6 अध्यापक परामर्शदाता के रूप में

8.7 सारांश

8.8 तकनीकी पद

8.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.10 सन्दर्भ सूची

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1प्रस्तावना

बाल्यकाल से वयस्क अवस्था तक विकास की प्रक्रिया में कुछ महत्वपूर्ण एवं सुनिश्चित लक्ष्यों की प्रप्ति को प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। सभी व्यक्तियों में आत्मनिर्भरता, स्वायत्तता, सक्षमता, ज्ञान, आत्मबोध, परिवेशीय सूझबूझ एवं जानकारी तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से प्रभावशीलता का विकास आवश्यक समझा जाता है। विकास से सम्बन्धित लक्ष्यों की दिशा में व्यक्ति और समाज द्वारा अनेक प्रकार की योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाता है। विकास की पूरी प्रक्रिया में अवधि में अनेक संक्रमण काल आते हैं। अनेक प्रकार की दुविधाएं प्रकट होती है। व्यक्ति को उपयुक्त लक्ष्यों का चयन करना होता है। चयनित लक्ष्यों की सिद्धि हेतु उपयुक्त अनुक्रियाएं करनी पड़ती हैं जीवन के विविध क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करना पड़ता है, विकास के मार्ग में समुत्पन्न होने वाली बाधाओं , कठिनाइयों, समस्याओं को दूर करना पड़ता है। इस पूरी प्रक्रिया को सहज और अधिक सफल बनाने के उद्देश्य होते हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- परामर्श किसे कहते हैः
- परामर्श के लक्ष्यों का सम्बन्ध मूल्यता व्यक्ति को भविष्य में प्रकट होनी वाली सम्भावित समस्याओं के समाधान के लिए समर्थ बनाने के साथ कैसे होता है।
- व्यक्तियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में अर्थपूर्ण सम्बन्धों की आवश्यकता होती है इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर जीवन के महत्व और उद्देश्यों से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।
- विद्यार्थी को परामर्श द्वारा उसके व्यवहार में सुधार लाने में अध्यापक किस तरह से सहायता प्रदान करते हैं।

8.3 परामर्श

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परामर्श का अर्थ होता है व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाओं का सही रूप में उपयोग करना। वेब्सटर ने अपने शब्दकोष में परामर्श की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''विचारों का आदान-प्रदान तथा मार्ग-दर्शन ही परामर्श है''।

कार्ल रोजर्स- परामर्श का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहता है, ''परामर्श व्यक्ति से सीधा सम्पर्क बनाने की एक श्रृंखला है जिसके द्वारा व्यक्ति को उसकी अभिवृत्तियों और व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए सहायता दी जाती है''

विले एवं एण्ड्रयू- ''परामर्श आपस में सीखने की एक प्रक्रिया है। इसमे दो व्यक्ति होते हैं-एक परामर्श देने वाला और दूसरा परामर्श लेने वाला। परामर्श देने वाला व्यक्ति परामर्शदाता होता हैं। जो दूसरे व्यक्ति को (परामर्श लेने वाला) उसके लक्ष्य तक पहुचाने में, समस्याओं के निराकरण में तथा उसी वातावरण में अधिक से अधिक विकास कर सकने मे सहायता पहुचाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं में तीन तथ्य निहित है-

1. परामर्श प्रक्रिया में दो व्यक्ति होते है।

2. परामर्श -सेवा का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति की सहायता करना है जिससे वह (परामर्श देने वाला) उसकी समस्याओं का समाधान स्वतंत्र रूप से कर सके।

3. परामर्श सेवा एक व्यावसायिक कार्य है जिसका सम्पादन केवल परामर्शदाता ही कर सकता है।

8.4 परामर्शन के लक्ष्य

परामर्शन के लक्ष्य अत्यन्त व्यापक होते हैं। कुछ लक्ष्य मुख्यतः समकालीन जीवन से सम्बन्धित होते हैं तथा अन्य लक्ष्यों का सम्बन्ध मूलतः व्यक्ति को भविष्य में प्रकट होने वाली संभावित समस्याओं के समाधान के लिए समर्थ बनाने के साथ होता है। पारलॉफ्फ लक्ष्यों को दो वर्गों में तात्कालिक लक्ष्य और अभीष्ट लक्ष्य के रूप में विभाजित करते हैं। पैटर्सन के अनुसार लक्ष्यों के तीन स्तर हैं-मध्यस्थताकारी लक्ष्य, मध्यवर्ती लक्ष्य और अभीष्ट लक्ष्य। इनके अतिरिक्त प्रक्रिया लक्ष्य का भी प्रायः वर्णन किया गया है।

परामर्शन के समकालीन या तत्कालीन लक्ष्यों के अन्तर्गत उन लक्ष्यों को सम्मिलित किया जाता है जिनका सम्बन्ध व्यक्ति की तात्कालिक समस्याओं के समाधान से होता है। अभीष्ट लक्ष्य दीर्घकालिक लक्ष्य होते हैं। तात्कालिक लक्ष्यों की प्राप्ति के द्वारा सम्बन्धित होने के अतिरिक्त अत्यन्त सामान्य श्रेणी के होते हैं।

प्रक्रिया लक्ष्यों का सम्बन्ध परामर्शन प्रक्रिया के साथ होता है। प्रक्रिया लक्ष्यों की प्राप्ति के माध्यम से ही परामर्शदाता के विविध तात्कालिक, मध्यवर्ती और अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति संभव बनाता है। परामर्शदाता द्वारा परामर्शी के साथ सौहार्द्रपूर्ण, मित्रवत् एवं भावात्मक अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल परिवेश का विकास करता है। इस प्रकार परामर्शदाता जिस परिवेश का निर्माण करता है, परिवेश में जिन विशेषताओं के विकास का लक्ष्य स्थापित करता है उसे प्रक्रिया लक्ष्य के अन्तर्गत सम्मिलित माना जाता है।

व्यवहारवादी परामर्शन पद्धति अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मध्स्थताकारी/तात्कालिक लक्ष्यों की सिद्धि पर बल देती है। ऐसे लक्ष्यों के दो पथ-धनात्मक और ऋणात्मक, होते हैं।अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इन्हें पहले प्राप्त किया जाना चाहिए। आत्म-बोध, परिवेशीय बोध, समायोजनात्मक अनुक्रियाओं का विकास धनात्मक पक्ष की ओर चिन्ता, आक्रोश, आक्रामकता, अनुचित आदतो में, असंगत भय जैसी प्रतिक्रियाओं का निरोध एवं निवारण ऋणात्मक पक्ष के तात्कालिक/मध्यस्थताकारी लक्ष्यों के कतिपय उदाहरण है।

एस0एन0रॉव के अनुसार मध्यवर्ती लक्ष्यों का वर्णन परामर्शी द्वारा परामर्शन की आवश्यकता का अनुभव होने को अन्तनिर्हित कारणों के माध्यम से होता है और तात्कालिक या मध्यस्थताकारी लक्ष्य को परामर्शदाता के द्वारा स्थापित किये गये वर्तमान अभिप्राय/मंशा के रूप में समझा जा सकता है।

परामर्शन के तात्कालिक/मध्यस्थ लक्ष्यों की सूची का विकास जटिल है। अनेक लक्ष्य एक-दूसरे के क्षेत्र में अंशतः व्याप्त होते है। तथापि छात्रों के लिए सुविधापूर्ण रूप में ऐसे तेरह लक्ष्यों का वर्णन किया जा रहा है जो कि रॉव फेल्थम के द्वारा वर्णित लक्ष्यों के अतिरिक्त कतिपय बिन्दुओं पर लेखक के मतों को भी अभिव्यक्त करता है। तात्कालिक लक्ष्य अधोवर्णित है।

8.4.1 अवलंब- कुछ व्यक्तियों/क्लायंट के लिए उनके संज्ञान, संवेग, अनुक्रिया प्रणाली, स्व संरचना को अनाच्छादित करने की तुलना में उनके वर्तमान आत्म-बल और परिस्थितियों में व्याप्त चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्यता का समर्थन और प्रोत्साहन उपयोगी होता है। अवलम्बन-उपचार की मनोचिकित्सकीय एवं परामर्शन प्रविधि क्लायंट को इसी माध्यम से सहायता देने का प्रयत्न करती है। कुछ लोगों को अल्पकालिक अवलम्बन और अन्य लोगों को दीर्घकालिक अवलम्बन की आवश्यकता होती है।

8.4.2 मनोशैक्षिक निर्देशन - परामर्शन निर्देशन सेवाओं का एक घटक है, और निर्देशन का मौलिक स्वरूप शैक्षिक होता है, अतः परामर्शन का लक्ष्य भी विविध रूपों में मनो-शैक्षिक निर्देशनात्मक होता है। अनेक व्यक्तियों की समस्या यह होती है कि वे अपनी रुचियों और सामर्थ्यों की पहचान नहीं कर पाते हैं अतः उन्हें अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में लक्ष्यों का चयन करने में कठिनाई होती है। मनोशैक्षिक निर्देशनात्मक लक्ष्यों के सामने रखकर परामर्शदाता व्यक्ति या क्लायंट की अन्तर्निहित समस्याओं को अनाच्छादित किये बिना उसके संज्ञान, व्यवहार और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की प्रणाली का उन्नयन करके व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास और जीवन दर्शन एवं समायोजनात्मक दृष्टि से उसे समृद्ध एवं परिपूर्ण करता है।

8.4.3 निर्णय रचना- परामर्शन का एक मुख्य लक्ष्य परामर्शी को उपयुक्त निर्णय के विकास हेतु सहायता देना होता है। किसी व्यक्ति की अनेक विफलताओं, कुण्ठाओं, समायोजनात्मक समस्याओं के मूल कारण को उपयुक्त निर्णय अपनाने या विकसित कर पाने में व्यक्ति की विफलता के रूप में देखा जा सकता है। व्यक्ति को जीवन लक्ष्यों के संदर्भ में अनेक प्रकार के लक्ष्यों एवं उपलक्ष्यों का इस प्रकार चयन करना चाहिए कि चयनित लक्ष्य (1) व्यक्ति की क्षमताओं एवं विशेषताओं के अनुरूप हों। (2) व्यक्ति के परिवेश में व्याप्त संभावनाओं, बाधाओं, सीमाओं को ध्यान में रखकर विकसित किया गया हो (3) स्पष्ट हो अर्थात् व्यक्ति लक्ष्य के निहितार्थ और उसकी निष्पत्तियों को समझता हो। (4) लक्ष्य की रचना व्यक्ति के द्वारा स्वतंत्रापूर्वक

की गयी हो जिससे कि व्यक्ति को चयनित लक्ष्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी का बोध हो। ऐसे निर्णय के लिए व्यक्ति को स्वयं अपने बारे में एवं परिवेश के बारे में पर्याप्त, वस्तुनिष्ठ सूचना प्राप्त होनी चाहिए साथ ही चयन की उपयुक्तता और तर्कसंगत आधार के बारे में जानकारी होनी चाहिए। रेव्स एवं रेव्स के अनुसार परामर्शन का मूल उद्देश्य व्यक्ति को लक्ष्य चयन करने, उसका मूल्यांकन करने, उसे स्वीकार करने और अपने चयन का क्रियान्वयन करने के लिए प्रेरित करना होता है।

8.4.4 समस्या-समाधान- समस्या समाधान का लक्ष्य पूर्व वर्णित निर्णय रचना के लक्ष्य और आगे अंकित लक्ष्य समायोजन स्थापना से स्वतंत्र नहीं है, तथापि यहॉं यह उल्लेख है कि कुछ परमार्शियों की परामर्श न से यह अपेक्षा होती है कि परामर्शन द्वारा उसके सम्मुख उपस्थित समस्या का तत्काल समाधान हो। उदाहरणार्थ यदि कोई छात्र चयनित विषय क्षेत्र में प्रवेश कहॉं और कैसे प्राप्त करें, पाठ्यक्रम सम्बन्धी व्यय के लिए धन की व्यवस्था कैसे करे, अनचाही परिस्थिति से बाहर कैसे निकले, स्वास्थ्य समस्या का उपचार कहॉं और कैसे प्राप्त करें। कुछ समस्याएं दुविधा के रूप में प्रकट होती है जैसे विवाह सुखसागर या झमेला? धन आवश्यक है या ज्ञान? घर महत्वपूर्ण है या समाज? व्यक्ति धनोपार्जन के लिए विदेश जाये या अपने लोगों के मध्य रहे? स्पष्टतः ऐसे प्रश्न व्यक्ति के लिए संदर्भित समस्या के बारे में अन्वेशण करने, संवेगों और व्यावहारिकता की परख की क्रिया को सहज बनाना है।

8.4.5 समायोजन- समायोजन की दिशा में परामर्शन और निर्देशन का योगदान मुख्यतः विकासात्मक होता है अर्थात् समायोजन के लिए व्यक्ति की क्षमताओं और विशेषताओं का विकास किया जाता है जिससे कि वह भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना कर सके किन्तु कुछ विशेष प्रकार की परिस्थितियों में प्रत्यक्ष योगदान भी दिया जाता हैं। औद्योगिक/संगठनात्मक परिवेश में कर्मचारियो के लिए ऐसे समर्थन की आवश्यकता होती है। कार्यालय, उद्योग या संगठन की कार्यपद्धति के बारे में सूचना देने के अतिरिक्त अवलम्बन, निर्णय रचना, समस्या समाधान, निश्चयात्मकता प्रशिक्षण, विचार मंथन जैसी तकनीकें समायोजन की स्थापना लिए प्रयुक्त की जाती हैं। कर्मचारी कल्याण योजनाओं के बारे में सम्यक् जानकारी द्वारा कर्मचारियों को समायोजनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

8.4.6 आपद्कालीन हस्तक्षेप एवं प्रबन्धन- समाज में तथा व्यक्ति के जीवन में कई बार ऐसी संकट की घड़ियॉं आती है कि एक सामान्य व्यक्ति के लिए अथवा ऐसे आपद्काल के बारे में किसी पूर्व अनुभव के अभाव वाले समूह के लिए उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करना कठिन होता है अतः व्यावसायिक रूप में परामर्शी को, परामर्शदाताओं के माध्यम से हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक आपदा जैसे बाढ़/त्वरित बाढ़, बॉध का टूटना, या मानव निर्मित संकट जैसे धार्मिक या जातीय दंगे, बंधक या अपहरण की घटनाएं , अथवा औद्योगिक दुर्घटनाएं , रेल, बस या वायु दुर्घटना के पश्चात भुक्तभोगी व्यक्ति एवं निकट सम्बन्धी मनोआघात की अवस्था में देखे जा सकते है। मनोआघात से बाहर आने के लिए उन्हें तत्काल सहयोग की आवश्यकता होती हैं। ऐसी परिस्थिति में ऐसे मार्गदर्शन, निर्देशन, सक्रिय एवं प्रत्यक्ष सहयोग की आवश्यकता होती है जिससे व्यक्ति का आत्म बल वापस लौटे और धीरे-धीरे व्यक्ति अपने सामान्य कार्यकलाप के क्षेत्र में सक्रिय हो सके। ''आपद्कालीन हस्तक्षेप का प्राथमिक उद्देश्य संकटकाल

आने से पहले की परिस्थितियों के समतुल्य कार्यस्तर को पुनर्स्थापित करना होता है'' इसका उद्देश्य व्यक्ति को सकारात्मक रूप में सशक्त बनाना तथा किसी प्रकार की मनोव्याधि का निरोध करना होता है।

8.4.7 लक्षण उन्मूलन/सुधार- मनोव्याधि से पृथक सामान्य श्रेणी के व्यक्तियों में भी समस्या उत्पन्न होने पर मनोरचनाओं की सक्रियता के अनेक परिणाम व्यक्ति के व्यवहार में लक्षणों के रूप में प्रकट होते रहते हैं। मनोदैहिक प्रभाव से सम्बन्धित लक्षण, चिड़चिड़ापन, सामान्य रूप में कार्य करने में कठिनाई जैसी परिस्थितियों में लक्षण का उन्मूलन ही व्यक्ति की प्राथमिकता होती है।

8.4.8 अंतर्दृष्टि का विकास- कुछ व्यक्तियों का व्यवहार ऐसा होता है कि उनके सामने बार-बार समस्याएं उत्पन्न होती रहती है और उनकी प्रतिक्रिया शैली के कारण समस्या का समाधान प्राप्त होने के स्थान पर समस्या में और वृद्धि होती रहती है। ऐसे क्लायंट/व्यक्ति के लिए परामर्शदाता अंतर्दृष्टि के विकास का लक्ष्य स्थापित करते हैं। अंतर्दृष्टि और आत्मबोध का विकास एक सतत् प्रक्रिया है जो विकास, परामर्शन और मनोपचार जैसी सभी प्रक्रियाओं के साथ सम्बन्धित है। अंतर्दृष्टि के विकास द्वारा समस्याओं के कारणों के विश्लेषण, व्यवहार परिवर्तन, लक्षण उन्मूलन, समस्या समाधान और उपचार में सहायता मिलती है।

8.4.9 आत्म-बोध का विकास- व्यक्ति की अंतर्दृष्टि और आत्म बोध का विकास परस्पर सम्बन्धित प्रक्रियाए है। आत्मबोध अपने आप के बारे में अंतर्दृष्टि के विकास से सम्बन्धित हैं अंतर्दृष्टि के उपयुक्त शीर्षक में समस्याओं और सम्बन्धित व्यवहार के विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। यहॉ हमारा सम्बन्ध व्यक्ति की सामर्थ्यो, विशेषताओं, अभिप्रेरणाओं, रुचियों आदि की पहचान करने में उसे सहायता देने से है।

8.4.10 परिवेश एवं स्वयं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास- आधुनिक युग चिन्ता, कुण्ठा और विफलताओं द्वारा पहचाना जाता है। चतुर्दिक व्यक्ति और परिवेश के बारे में नकारात्मक दृष्टिकोण व्याप्त है। स्वयं अपने या अपने परिवेश के बारे में ऋणात्मक मूल्यांकन व्यक्ति की आशाओं और आत्मविश्वास को झीण करता है और उसके लक्ष्य सिद्धि सम्बन्धी प्रयत्नों को शिथिल बनाता हैं जिसके परिणामस्वरूप लक्ष्य निर्धारण और सिद्धि में व्यवधान आता है। इसकी तुलना में जीवन के प्रति, अपने गुणों ओर विशेषताओं के बारे में तथा परिवेश के प्रति दृष्टिकोणों की सकारात्मकता व्यक्ति की सफलता, संतुष्टि और प्रसन्नता की प्राप्ति में सहायक होती हैं अतः परामर्शन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के संज्ञान और जीवनदर्शन और आवश्यक परिमार्जन लक्ष्य किया जाता है।

8.4.11 जीवन में सार्थकता एवं अर्थबोध का विकास- किशोरों, नवयुवकों, वृद्ध व्यक्तियों में बहुधा जीवन की निरर्थकता की भावना व्याप्त रहती है। सक्रिय जीवन से अवकाश ग्रहण कर चुके लोगों में सार्थकता का बोध पुनर्जागृत करने की आवश्यकता पर बार-बार बल दिया जाता हैं। आधुनिक युग में धार्मिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों के अभाव में सार्थकता और अर्थबोध का अन्वेषण व्यक्ति के लिए कठिना हो जाता है।

जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, निरर्थकता, अर्थबोध की कमी वास्तव में पार्थक्य की समस्या है। परामर्शन का लक्ष्य हम लेखकों की दृष्टि में पार्थक्य की समाप्ति और संज्ञानात्मक, व्यावहारिकता

संलिप्तता का विकास करना है। इसके लिए परामर्शन प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्तियों को अपनी अन्तरस्थ या तात्विक अभिप्रेरणाओं के अन्वेशण की दिशा में सहायता दी जानी चाहिए। लेखक का मत है कि भारतीय संदर्भो में लोगों को दान और परोपकार जैसी प्रवृत्तियों को पुनर्जागृत किये जाने की आवश्यकता हैं उदाहरण के लिए वृद्धजन विद्यादान के लक्ष्य के सामने स्थापित करके जीवन की सार्थकता का अनुभव कर सकते है किन्तु लोगों को ऐसी दिशाओं से अर्थबोध की प्राप्ति करने के लिए परामर्शदाता के माध्यम से सहयोग की आवश्यकता होती है।

8.4.12 व्यवहार परिमार्जन एवं व्यक्तित्व- परामर्शन के अभीष्ट लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति की निजी प्रभावशीलता में वृद्धि अनिवार्य रूप में आवश्यक होती है। व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावशाली बनाने के लिए व्यक्ति की जिम्मेदारी का बोध, श्रम, समय, समर्पण, सम्यक् रूप में लाभ-हानि के लिए खतरा मोल लेने की प्रवृत्तियों की आवश्यकता होती है। यदि कोई व्यक्ति आलसी है, निर्णय लेने में विलम्ब करता है, शीघ्र ही अपना लक्ष्य त्याग देता है या उसके व्यवहार में अन्य ऐसी ही कमियॉ व्याप्त हैं तो ऐसे व्यवहार दोषों को परिमार्जित करने की आवश्यकता होती है। व्यवहारवादी-संज्ञानवादी और अल्पकालिक उपागम व्यवहार परिमार्जन पर बल देते है किन्तु मानववादी उपागम से जुड़े परामर्शदाता जीवन-परिवर्तन और व्यक्तित्व परिवर्तन को महत्व देते हैं।

8.4.13 उपयुक्त स्वास्थ्य व्यवहार का विकास- किशोरों, युवकों के जीवन में उपयुक्त स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवहार का विकास उनके वर्तमान और भविष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है। यौनिक व्यवहार का स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। एच0आई0वी0/एड्स की भयावह स्थिति, मादक पदार्थो के सेवन से उत्पन्न खतरों और मोटापा, डाइबिटीज एवं अन्य दोषपूर्ण जीवनशैली के कारण विकसित होने वाले रोगों/स्वास्थ्य समस्याओं के संदर्भ में समूह परामर्शन की आवश्यकता का अनुभव सभी वर्गो द्वारा किया जा रहा है।

8.5 परिवार और समूह परामर्श

8.5.1 परिवार परामर्श

बीसवी शताब्दी के मध्य तक परामर्शन एवं मनोपचार के लिए व्यक्ति को ही केन्द्र में रखा गया किन्तु उसके बाद परामर्शदाताओं ने यह अनुभव किया कि व्यक्ति की समस्याओं की उत्पत्ति और समाधान में उन व्यवस्थाओं या प्रणालियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है जिनमें वह जीवन-यापन करता है, यथा-परिवार, युगल, पति-पत्नी, कार्य समूह, संस्कृति आदि। परिवार एवं अन्य प्रणालियों में अन्तर्क्रियाओं और सम्बन्धों की हमारे जीवन क्षेत्र सम्बन्धी विश्वासों ,व्याख्याओं और उसके प्रति अनुक्रिया महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं परिवार के प्रभाव को मनोविश्लेषणात्मक उपागम में स्वीकार किया गया था किन्तु यह व्याख्या पालन-पोषण की प्रक्रिया में व्यक्ति के आरम्भिक जीवन में माता-पिता के प्रभाव तक सीमित थी।

समाज विज्ञानों की आधुनिक दृष्टि में परिवार एवं अन्य-समूहों की यांत्रिक परिभाषा अस्वीकार कर दी गयी है। यद्यपि संचार के प्रारूप को आज भी महत्व दिया जाता है किन्तु अब यह समझने पर अधिक

ध्यान दिया जाता है कि परिवार किस प्रकार हमारे जीवन वृत के बारे मे हमारे अर्थबोध, विश्वासों, व्याख्याओं की रूप रचना करके हमारी संचार प्रणाली को प्रभावित करता हैं। आधुनिक चिन्तन में परिवार को जैविक प्रणाली के रूप मे देखा जाता है। समस्याओं को घटनाओं के प्रति दृष्टिकोण का प्रतिफल माना जाता है इसलिए उपचार या परामर्शन प्रक्रिया में अर्थो की संयुक्त प्रयासों द्वारा रचना के लिए प्रयास को सम्मिलित किया जाता है।

आरम्भ में व्यक्ति और परिवार उपचार तथा स्व एवं प्रणाली मे मध्य विभेद किया जाता था किन्तु अब दोनों उपागमों के मध्य समाकलन का प्रयत्न किया जा रहा है। समाकलनात्मक प्रयत्नों के फलस्वरूप विवाह और परिवार परामर्शन/उपचार का एक साथ विलय हो गया।

सर्वांगी दृष्टिकोण में सभी अन्तर्सम्बन्धित अंगो को एक-दूसरे को एवं अंततः प्रणाली के कार्यों को प्रभावित करते हुए देखा जाता है।प्रणाली को अंगों के योग के रूप में नहीं अपितु उनके मध्य के जोड़ों के आधार पर परिभाषित किया जाता है। जोड़ों को विविध प्रकार से संचार, अन्तर्क्रिया, आदान-प्रदान, विष्वासें, विचारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसे सामूहिक रूप में सूचना भी कहा जाता है। सर्वांग या प्रणाली में किसी बिन्दु पर सूचना परिवर्तन का प्रभाव अन्य बिन्दुओं या अंगों पर भी पडता है। इस प्रकार माता-पिता के मध्य विचार-विनिमय के फल स्वरूप पुत्र के प्रति पिता का व्यवहार प्रभावित होता है। और पुत्र की प्रतिक्रिया द्वारा माता-पिता प्रभावित होते हैं। अर्थात् किसी भी प्रणाली में घटकों में घटकों के मध्य च्रकीय कारणात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। इसलिए परिवार या सर्वांग उपागम की रुचि संबंधन के प्रारूप में होती है।

विकासात्मक दृष्टि से परिवार में मृत्यु तक के जीवन चक्र के परिवर्तन घटित होते हैं। इन परिवर्तनों को प्रथम क्रम व द्वितीयक क्रम का परिवर्तन कहा जा सकता है। प्रथम क्रम के परिवर्तन मे किसी सदस्य में परिवर्तन आता है और द्वितीयक क्रम में परिवार एक सर्वांग/प्रणाली के रूप में व्यक्तिगत स्तर के परिवर्तनों के साथ अनुकूलन स्थापित करता है। इस अनुकूलन की प्रक्रिया में अर्थ और व्यवहार में परिवर्तन स्थापित किया जाता है तथा नयी अनुक्रिया श्रंखलायें उत्पन्न होती हैं सदस्यों में परिवर्तन और तद्नुकूल परिवार रूपी प्रक्रम में परिवर्तन की आवश्यकता के फलस्वरूप विकासात्मक एवं अन्तर्पीढ़ी तनाव उत्पन्न होता है। परिवार परामर्शदाता मूलतः परिवार के सदस्यों को अन्तःक्रियाओं के मूल्यांकन के लिए और इस प्रकार आवश्यक परिवर्तनों, विशेषतः द्वितीय क्रम के परिवर्तन सम्बन्धी आवश्यकताओं का अनुभव करने के लिए अवसर देता है। परामर्शदाता ऐसे हस्तक्षेप के लिए विचार करता है कि जिनके द्वारा प्रक्रम के बारे में ऐसी सूचनाओं की प्रतिपूर्ति होती है कि सर्वांग में वांछित परिवर्तन उत्पन्न किया जा सके। इस दिशा में परिवार की सहायता करने के लिए परामर्शदाता सदस्यों के चिन्तन, अनुभूति और व्यवहार एवं सदस्यों की समूह में अन्तर्क्रिया से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है। जिससे सदस्यों को यह ज्ञात हो सके कि वे किस प्रकार अन्तर्संबंधित है तथा एक संर्वांग के रूप में वे केसे चक्रीय रूप में व्यवहार करते हैं। सूचनाओं के उत्पत्ति के साथ-साथ सदस्यों को अन्तर्क्रिया और सम्बन्धों के बारे में बोध अर्जित करने में सहायता मिलती है।

किन्तु यह आवश्यक माना जाता है कि परानुभूति, लगाव, सत्यनिष्ठा प्रकट होनी चाहिए। इसके लिए अनुभूति और अन्तर्क्रिया का प्रत्यावर्तन किया जाना महत्वपूर्ण होता है। प्रत्यावर्तन की क्रिया द्वारा परामर्शदाता यह प्रदर्शित कर पाता है कि उसमें परिवार के लिए चिन्ता और रुचि है। प्रत्यावर्तन की क्रिया में चिन्तन करना और नये अर्थों की प्रस्तुति सम्मिलित की जाती है।

8.5.2 समूह परामर्श

आधुनिक जीवन मे समूह का अत्यधिक महत्व है। वास्तविकता तो यह है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के समूह के सम्पर्क में रहता है। व्यक्ति परिवार में जन्म लेता है और उसका समाजीकरण भी परिवार से ही आरम्भ होता है। परिवार एक ऐसा प्राथमिक समूह है जो कि व्यक्ति के जीवन में अद्वितीय स्थान रखता है । समाज मे व्यक्ति का सम्बन्ध दूसरों के साथ किस प्रकार का होता है, यह बहुत कुछ उसके पारिवारिक जीवन के अनुभवों पर निर्भर करता है।

मनोवैज्ञानिक केम्प ने सामूहिक परामर्श के आधार नामक पुस्तक में लिखा है-‘‘ व्यक्तियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में अर्थपूर्ण सम्बन्धों की आवश्यकता होती है और बहुतों को तो इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर जीवन के महत्व और उद्देश्य से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त होता है। अतः सामूहिक परामर्श में रुचि और इसका सम्बन्धों का प्रयोग अधिक होने लगा है।1

8.5.2.1 सामूहिक परामर्श के आधार

सामूहिक परामर्श के कुछ ऐसे मूलभूत आधार है जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक हैं ये आधार निम्नलिखित है-

i. व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमताओं तथा सीमाओं का ज्ञान- सामूहिक परामर्श का प्रथम आधार यह है कि व्यक्ति को अपनी क्षमताओं एवं सीमाओं का ज्ञान होना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि अनेक व्यक्तियों को अपनी वास्तविक क्षमताओं का ज्ञान नहीं होता। या तो वे अपनी क्षमताओं के बारे में बहुत ही कम जानते हैं और या फिर उनके बारे में उनका अनुमान अयथार्थपूर्ण होता है । इस कारण व्यक्ति सामूहिक जीवन के अनुभवों से लाभान्वित नहीं हो पाता। सामूहिक परामर्श के द्वारा व्यक्ति को इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपनी वास्तविक क्षमताओं को दूसरों के सन्दर्भ में जान सके और उसमें जो कमियॉ हैं उन्हें वह दूर कर सके।
ii. अपनी सम्भावनाओं की पूर्ति- सामूहिक परामर्श का दूसरा आधार है व्यक्ति द्वारा अपनी सम्भावनाओं के अनुसार सफलताओं को प्राप्त करना।इस कार्य में भी सामूहिक परामर्श की आवश्यकता होती है। व्यक्ति की जो छिपी हुई शक्तियां है उनके विकास की जो सम्भावनाए हैं, इन सब का ज्ञान समूह में कार्य करते हुए व्यक्ति को भली-भांति होता है। इतना ही नहीं,वह अपनी सम्भावनाओं के अनुसार कार्य करके सफलता प्राप्त करता है। इस दृष्टि से सामूहिक परामर्श का महत्व है।

iii. वैयक्तिक भिन्नताओं का प्रभाव-जब हम सामूहिक परामर्श की बात करते हैं तो इसका अर्थ यह कभी नहीं है कि व्यक्ति अथवा वैयक्तिक भिन्नता का कोई स्थान सामूहिक परामर्श में नहीं है। समूह मे रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति अपनी विशेष प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य कर सकते है। वही सामूहिक परामर्श उपयोगी होता है जो कि वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखकर दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि जहॉ तक एक ओर किसी समूह के व्यक्तियो की समस्याओं में अधिकतर समानता हो सकती है वहॉ इसी के साथ वैयक्तिक भिन्नताए भी पायी जा सकती है। अतः वही परामर्शदाता सामूहिक परामर्श की व्यवस्था करता है।

iv. विकासात्मक प्रक्रिया में सामूहिक अनुभव- हम यह जानते है कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक पर्यावरण में उसका विकास सुचारू रूप से होता है। समाज अथवा समूह में वह ऐसे अन्र्तसम्बन्धों को विकसित करता है जो उसके सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं। यही कारण है कि नवीन शिक्षा मे पर्यावरण में परिवर्तन करके अथवा आवश्यकतानुसार उसे अनुकूल बनाकर शिक्षण की व्यवस्था की जाती है। तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति को वाछनीय अनुभव जीवन में प्राप्त होता है तब उसका विकास संतोषप्रद रीति से हो जाता है। यह कदापि सम्भव नहीं है कि कोई व्यक्ति अकेले शहर मे रहकर सम्यक् विकास कर सके।

v. व्यक्ति के प्रत्यक्ष ज्ञान एवं स्व-सम्प्रतयय में समूह के कारण होने वाले परिवर्तन-सामूहिक परामर्श का एक प्रमुख आधार यह है कि व्यक्ति को ऐसे अनुभव प्रदान किये जाये कि वह अपने बारे में सही धारणा बना सके। उसका संप्रत्यय सामूहिक जीवन से प्रेरित हो और उसके फलस्वरूप व्यक्ति जीवन में सहयोग तथा सामाजिक आदान-प्रदान के महत्व को समझता हो। व्यक्ति यदि सामूहिक जीवन में भाग नहीं लेता तो उसका विकास एकांगी होता हैं वह अपने चारो ओर की वस्तुओं तथा व्यक्तियों के प्रति ऐसी धारणाए बनाता है जो कि गलत हो सकती है। इसलिए सामूहिक परामर्श द्वारा इस बात का प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति अपने चारों ओर के पर्यावरण के प्रति सही दृष्टिकोण रखे और साथ ही साथ अपने बारे में भी उसकी जानकारी ठीक हों।

8.5.2.2 समूह परामर्श की पद्धतियॉ

परामर्श , व्यक्ति या समूह के सन्दर्भ में तभी प्रभावक हो सकता है, जबकि उसका लक्ष्य भली-भांति परामर्शदाता तथा शिक्षार्थी दोनो के द्वारा समझा जाय और आत्मीकृत कर लिया जाय। समूह परामर्श में, व्यक्ति की सहायता के लिए अन्य सदस्यों का सहयोग एक अतिरिक्त अनिवार्यता है। समूह परामर्श के लिए जिन पद्धतियों का ज्ञान परामर्शदाता के लिए आवश्यक स्वीकार किया गया है उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है-

I. प्रत्येक सदस्य के लक्ष्यों को जानना-प्रत्येक सदस्य के लक्ष्य या उद्देश्यों की सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त ही परामर्शदाता, समूह परामर्श को प्रभावशाली बनाने में सफल सिद्ध हो सकता है

II. संगठनात्मक निर्णय- परामर्शदाता यदि समूह के संगठनात्मक निर्णयों को परामर्श योजना में पर्याप्त महत्व दे तो परामर्श कार्य को अधिक प्रभावक बनाया जा सकता है।

III. समूह निर्माण- इस सन्दर्भ में परामर्शदाता की भूमिका यह है कि वह समूह संयोजन का निर्धारण करते समय इस बात पर ध्यान दे कि किस प्रकार के संयोजन से समूह के प्रत्येक सदस्य को अधिक से अधिक लाभ पहुचाया जा सकता है।

IV. आरम्भ करने की विधि- समूह परामर्श प्रारम्भ करने के लिए परामर्शदाता को अपनी तथा अन्य सदस्यों की भूमिकाओं की स्पष्ट विवेचना प्रस्तुत करनी चाहिए। सभी सदस्यों के द्वारा परामर्श कार्य में व्यापक योगदान देने की प्रवृत्ति को परामर्शदाता द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

V. सम्बन्धों का निर्माण- जैसे-जैसे समूह का विकास होता है, एक सदस्य के लिए अपने मूल लक्ष्य से विपथगामी होने तथा अपने उद्देश्यों के प्रति भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावनाए भी बढ़ती है। अतः ऐसी स्थिति में परामर्शदाता का कर्तव्य है कि वह सदस्यों को उनके मूल लक्ष्य तथा उद्देश्यों का पुनर्स्मरण कराता रहे। परामर्शदाता की ईमानदारी व निष्पक्ष रुचि सदस्यों को यह विश्वास दिलाने में सफल होती है कि वह सदस्यों की सहायता के लिए पूर्णतः व सदैव तत्पर है।

VI. समूह सदस्यता से निष्काषन - समूह सदस्यों के मध्य विकास की दर में गहरी असमानता पायी जाती है। कुछ सदस्य एक लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं तब दूसरे लक्ष्य को आत्मीकृत एवं प्राप्त कर लेगें, जबकि अन्य सदस्य काफी प्रगति कर चुके होंगे। अतः ऐसी परिस्थितियों में परामर्शदाता को प्राथमिक रूप से यह निर्णय लेना पड़ता है कि केवल कुछ सदस्य ही सदस्यता त्यागेंगे या समस्त समूह को समाप्त कर दिया जाय। सदस्यों से उनके लक्ष्य के प्रति समर्पित रहने का परामर्शदाता द्वारा किया गया अनुरोध भी एक प्रकार का दवाब ही है। यदि समूह में से कुछ अधिक सक्रिय सदस्यों को पृथक कर दिया जाय जो इन सदस्यों के सम्बन्ध अन्य समूह सदस्यों से विच्छिन्न हो जायेंगे, परिणामस्वरूप समूह परामर्श की प्रभावकता घट जायेगी। यदि नये सदस्यों को बीच मे समूह में सम्मिलित किया जाय तो भी संचार, परस्पर विश्वास की समस्याओं के कारण समूह प्राथमिकता में कमी आने की सम्भावना है। अतः परामर्शदाता को समूह के सदस्यों के निष्काषन व नयी भर्ती के विषय में बचे हुए समूह सदस्यों की आवश्यकताओं को देखते हुए निर्णय लेना चाहिए। समूह की पुनर्रचना उसी स्थिति में परामर्शदाता द्वारा की जानी चाहिए जबकि यह नये व पुराने सदस्यों की सहायता के लिए पर्याप्त समय तक बनी रहे और सभी सदस्य निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

VII. प्रतिफलों का मूल्यांकन- परामर्श के सन्दर्भ में अन्तिम चरण परामर्श की प्रभावकता का मापन है। कार्य करते हुए परामर्श समूह का अवलोकन या सदस्यों के द्वारा अपनी साथियों की रेटिंग के द्वारा प्रभावकता का मूल्यांकन सम्भव नहीं है। मूल्यांकन उस स्थिति में कठिन नहीं होता है जबकि लक्ष्य मापनीय हों। अतः परामर्शदाता को लक्ष्यों की विवेचना इस रूप में करनी चाहिए जिससे उसका स्वरूप मापनीय बन जाये।

संक्षेप में , समूह परामर्श में परामर्शदाता का दायित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसकी भूमिका है कि वह समूह में ऐसा वातावरण बनाये जिससे प्रत्येक सदस्य लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल हो सके।

8.6 अध्यापक परामर्शदाता के रूप में

अध्यापक परामर्शदाता के रूप में ना तो अधिक सक्रिय होता है और ना ही अधिक निष्क्रिय । इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसके व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा ही किया जाता है। इसके पश्चात परामर्शदाता उन प्रविधियों का चयन करता है जो व्यक्ति के लिए अधिक उपयोगी या सहायक रहेगी।

i. परामर्श या उपबोधक की भूमिका - ई0जी0विलियमसन ने सम्पादित पुस्तक ''निर्देशन के सिद्धान्त'' में अपने एक लेख में परामर्शदाता की भूमिका का विस्तृत वर्णन किया है। इस पुस्तक का सम्पादन स्टैफलर और ग्रॉट ने किया था। इस पुस्तक में भूमिका का संक्षिप्तीकरण निम्न प्रकार से है-

ii. विद्यार्थियों को उनके व्यवहारों में परिवर्तन लाने में सहायता- परामर्शदाता का उद्देश्य है कि विद्यार्थियों को अधिगम द्वारा उनके व्यवहारों के लिए सहायता प्रदान करना। विद्यार्थी स्वयं की विशेषताओं, उनकी योग्यताओं, उनकी रुचियों तथा उनके व्यवहारों आदि के बारे में अधिक से अधिक बताना चाहते हैं। उन्हें यह भी जानना चाहिए कि व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार के लिए इन सभी के ज्ञान का क्या महत्व या उपयोग है।

iii. प्रार्थी को यह भी जानना चाहिए कि उसके लिए और विकल्पित अवसर कौन-कौन से है। प्रार्थी को यह भी जानना आवश्यक है कि समाज क्या कुछ उपलब्ध करवा सकता है, समाज द्वारा लगाई गई शर्तें, पुरस्कारों की पेशकश तथा उन्हें प्राप्त करने की सम्भावनाए। प्रार्थी को स्वयं को समाज से सम्बद्ध करने के तरीकों का ज्ञान होना चाहिए। उसे यह भी सीखना चाहिए कि उसने क्या निर्णय लेना है, निर्णय कैसे लिये जाते हैं तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया को किस प्रकार निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया बनाया जाये।

iv. विद्यार्थियों को उनके व्यवहार में सुधार करने में सहायता- परामर्श दाता का उद्देश्य होता है कि विद्यार्थी को अधिगम द्वारा उसके व्यवहार में सुधार लाने में सहायता प्रदान करना। इस दृष्टि से परामर्शदाता का स्वरूप एक अध्यापक का स्वरूप बन जाता है। प्रभावी परामर्श और प्रभावी शिक्षण अध्यापक और विद्यार्थी के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध पर निर्भर करता है। विषय -वस्तु में एकांकी व्यवहार पद या कुछ व्यवहार पद शामिल होते है। विषय -वस्तु हर व्यक्ति में भिन्न होती है।

एक ही व्यक्ति में विषय -वस्तु समय-समय पर भिन्न-भिन्न होती है।परामर्शदाता और प्रार्थी दोनों ही यह निर्णय लेते हैं कि कौन सा व्यवहार परिवर्तित करना है और कौन सी विषय -वस्तु सही है। वे यह भी निर्णय ले सकते है कि यह परिवर्तित व्यवहार शैक्षिक या व्यावसायिक निर्णय पर केन्द्रित हो।

v. सूचना एकत्रित करना और प्रशिक्षण करना- परामर्शदाता प्रार्थी के साथ मिलकर प्रार्थी और उसके परिवेश के बारे में सूचनाए एकट्ठी करते हैं वे इन सूचनाओं के महत्व और उपयोग के बारे में विचार करते है। तथा कुछ को अस्वीकार करते है और कुछ का अनुवर्तन करते हैं। सूचना का प्रत्येक पद कई उपकल्पनाओं का स्त्रोत हो सकता है।

vi. परामर्शदाता द्वारा प्रश्न पूछना- परामर्शदाता जब उपयुक्त समझाता है तभी प्रश्न भी पूछता है। इन प्रश्नों का स्वरूप इस प्रकार का होता है कि प्रार्थी को अच्छी प्रकार समझ आये और परामर्शदाता सूचना प्राप्त कर सकें। ये प्रश्न प्रार्थी द्वारा स्वयं को समझने की प्रक्रिया को तेज करने की दृष्टि से भी रचे जाते हैं। परामर्शदाता प्रश्नों का प्रयोग बहुत ही सावधानीपूर्वक करे। प्रश्नों का विवेकहीन और अधिक प्रयोग भी कई बार हानिकारक हो सकता है।

vii. सुझाव देना- कई बार परामर्शदाता केवल ध्यानपूर्वक सुनता ही है शेष समय वह प्रार्थी के साथ वार्तालाप करता रहता है। वह सामान्य सुझाव भी देता है। कई बार सामान्य सुझाव परामर्श की प्रारम्भिक अवस्था में ही दिये जाते हैं और विशिष्ट सुझाव बाद की अवस्था में।

viii. प्रार्थी को सूचना उपलब्ध कराना- परामर्श दाता भी प्रार्थी को सूचनाएँ उपलब्ध करवाते हैं ये सूचनाएँ प्रार्थी के बारे में, सामाजिक वातावरण के बारे में, चयनित मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों के बारे मे तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में। कई बार सूचनाएँ आंकड़ों के रूप में परीक्षण-अंकों, स्कूल रिकार्ड या अन्य स्त्रोतों सूचनाएँ प्राप्त की जाती है। कई अवसरों पर परामर्श दाता प्रार्थी द्वारा कही गई बातों में से उसकी भावनाओं , दृष्टिकोणों और मूल्यों को खोज निकलता है और जो सूचना वह प्रार्थी से प्राप्त करता है।, वापिस उसी के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है जिसके बारे मे प्रार्थी को भी मालूम नहीं होता। नए आंकडों के अतिरिक्त, परामर्शदाता उन आंकड़ों को भी संगठित करता है जिसका ज्ञान प्रार्थी को भी होता हैं।

ix. प्रार्थी को सूचना उपलब्ध कराना- प्रार्थी से सम्बन्धित सूचनाओं की प्रार्थी के सामने परामर्शदाता व्याख्या करता है निस्सन्देह यह कार्य आंकड़ों को संगठित करने से सम्बन्धित है, लेकिन कई बार यह अलग प्रकार की ही क्रिया होती है क्योंकि इसमे इन सूचनाओं के प्रति प्रार्थी की प्रतिक्रिया की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

x. प्रार्थी के सामाजिक वातावरण के बारे में सूचना प्रदान करना- परामर्शदाता प्रार्थी के सामाजिक वातावरण के बारे में भी सूचनाएँ उपलब्ध करवाता है जैसे-नौकरियों, स्कूलों,आर्थिक साधनों, सामुदायिक सुविधाओं और सेवाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, उन्नति की दिशाओं या नागरिक उत्तरदायित्वों आदि के बारे में सूचनाएँ । इन सूचनाओं में वर्तमान सामुदायिक दृष्टिकोणों, सामुदायिक मूल्यों, दृष्टिकोणों और मूल्यो में हो रहे परिवर्तनों या राष्ट्र के बारे में सूचनाएँ भी शामिल है।

xi. मानव-व्यवहार के प्रत्यय के बारे मे सूचना प्रदान करना- परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता बहुत समय तक प्रार्थी को मानव-व्यवहार के प्रत्ययों के बारे में सूचनाएँ देता रहता है। उदाहरणार्थ- काफी समय तक परामर्शदाता विद्यार्थी के साथ विशेष और कारक के संप्रत्ययों के बारे मे ही बहस करता है परामर्शदाता विद्यार्थी को योग्यता और रुचियो में अन्तर स्पष्ट करने में सहायता दे सकता हैं वह विद्यार्थी को कुछ ऐसी सूचनाएँ दे सकता है जिससे उन्हें बुद्धि, शैक्षिक योग्यता, यांत्रिक अभिरुचि क्लर्की की अभिरुचि आदि के बारे में स्पष्टता प्राप्त हो।

xii. उभयभावी व्यवहार की प्रकृति के बारे मे सूचना देना- परामर्शदाता प्रार्थी को उभयभावी व्यवहार की प्रकृति के बारे में सूचनाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास कर सकता है। कई विद्यार्थी इस बात से बहुत चिन्तित होते हैं कि वे उस व्यवसाय का चयन करने के अयोग्य होते हैं जिसके प्रति वे आकर्षित भी महसूस करते हैं तथा प्रतिकर्षित भी। परामर्शदाता ऐसे प्रार्थियों की सहायता कर सकते हैं।

xiii. अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के बारे में सूचना प्रदान करना- परामर्शदाता प्रार्थी को अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के बारे में सूचनाएँ दे सकता है। मनुष्य की द्विलिंगीय प्रकृति के बारे में दूसरा व्यक्ति कुछ नहीं समझ पाता तथा यह प्रकृति चिन्ता का कारण बन जाती है। इन सिद्धान्तों के बारे में सूचना प्रदान करके परामर्शदाता प्रार्थी की सहायता तो कर सकता है लेकिन ऐसी सूचनाओं को अन्य उपलब्ध आंकड़ों से सम्बद्ध करके बड़ी सावधानीपूर्वक व्याख्या करके।

xiv. निर्णय-प्रक्रिया के बारे में सूचना प्रदान करके- परामर्शदाता की भूमिका में प्रार्थी को निर्णय प्रक्रिया के बारे में सूचना प्रदान करना भी शामिल है। वह प्रार्थी के साथ मिलकर अन्य उन निर्णयों की समीक्षा भी कर सकता है और ऐसी सूचनाओं को अन्य उपलब्ध आंकड़ों से सम्बद्ध करके बड़ी सावधानीपूर्वक व्याख्या करता है।

xv. परामर्शदाता सलाहकार रूप में- परामर्शदाता सलाहकार के रूप में भी कार्य कर सकता है। वह विद्यार्थी को निर्णय लेने मे विलम्ब करने, अनुमानित निर्णय लेने और सूचनाएँ प्राप्त करने, अन्यों के साथ निर्णयों पर बहस करने या परीक्षण लेने की सलाह दे सकता है। इस प्रकार की सलाह विद्यार्थी को स्वयं निर्णय लेने में सहायता करती है।

xvi. दूसरों के साथ परामर्शदाता का वार्तालाप- प्रार्थी के साथ वार्तालाप के अतिरिक्त, परामर्शदाता अन्य व्यक्तियों के साथ गोपनीय ढंग से वार्तालाप कर सकता है। यह वार्तालाप परामर्श का ही अंग होगा। परामर्शदाता माता-पिता, अध्यापकों, नियुक्तिकर्त्ताओं या मित्रों के साथ बातचीत कर सकता हैं यह गोपनीय बातचीत इस उद्देश्य से की जाती है ताकि प्रार्थी के साथ प्रभावशाली ढंग से कार्य किया जा सके।

xvii. प्रार्थी के बारे में सूचना एकत्रित करनी- प्रार्थी के बारे में अन्य व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के अतिरिक्त परामर्शदाता भी प्रार्थी के बारे में सूचना एकत्रित करने के लिए उत्तरदायी है। परामर्शदाता प्रार्थी को मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदि दे सकता है तथा अन्य लोगों के पास भेज सकता है जो ऐसे परीक्षण देते हैं और परीक्षणों आदि के अंकों का रिकार्ड इकट्ठा किया जाता है। परामर्शदाता स्कूल, स्वास्थ्य, कार्य रिकार्ड की तथा प्रार्थी के बारे में अन्य सूचनाओं की जॉच करता है।

xviii. प्रार्थी के प्रासंगिक या सम्बन्धित वातावरण के बारे में सूचना इकट्ठी करना- परामर्शदाता उस प्रासंगिक या सम्बन्धित वातावरण के बारे में सूचना एकत्रित करता है जिससे प्रार्थी रहता है या भविष्य में रह सकता है। वह स्कूलों, व्यवसायों और समुदायों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करता है। यदि कोई प्रार्थी किसी ऐसे पड़ौस से आता है जिसके बारे में परामर्शदाता अपरिचित होता है, तब परामर्श दाता उस पड़ैास के बारे से अधिक से अधिक सीखने का प्रयास करेगा। परामर्शदाता उस स्कूल के बारे में, अधिक से अधिक जानने का प्रयास करेगा जिस स्कूल से प्रार्थी आया हैं।

xix. मानवीय या मानक आंकड़े एकत्रित करने- परामर्श के आवश्यक कार्या में से एक कार्य है- मानवीय या मानक आकड़ें इकट्ठे करना। किसी भी परीक्षण से प्राप्त अंक अर्थहीन हैं यदि इनकी तुलना परिचित विशेषताओं वाले व्यक्ति के अंकों से न की जायें। अधिकतर परीक्षणों के लिये बहुत से मानक उपलब्ध है। परामर्शदाता को यह निर्णय लेना होगा कि कौन सा मानक तुलना की दृष्टि से उपयुक्त रहेगा। लेकिन कई बार उपयुक्त मानक उपलब्ध नहीं होते। तब परामर्शदाता को मानकीय आंकड़े केवल परीक्षणों के लिये ही नहीं चाहिए, बल्कि व्यावहारिक सूचकों के लिये भी चाहिए।

8.7 सारांश

राबिन्सन के अनुसार'' परामर्श शब्द दो व्यक्तियों के सम्पर्क की उन सभी स्थितियों का समावेश करता है जिनमें से एक व्यक्ति को अपने एवं पर्यावरण के बीच प्रभावी समायोजन प्राप्त करने में सहायता की जाती है'' परामर्श में दो तत्व महत्वपूर्ण है- मानवीय सम्बन्ध एवं सहायता।

परामर्श के लक्ष्यों के स्थान पर कई बार साधनों को अधिक महत्व दे दिया जाता है। किन्तु तकनीक या साधन को ही लक्ष्य मान बैठना भूल है। साध्य और साधन दोनों ही समान महत्व रखते हैं। साध्य कार्य के प्रारम्भ की ओर प्रेरित करता है। जबकि साधन लक्ष्य को प्रसशत करते हैं। परामर्श के लक्ष्यों के निर्धारण की तीसरी बात यह है कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में उसे सहायता करनी चाहिए। उसे अपनी दृष्टि परिधि में समग्र व्यक्तित्व को ग्रहण करना चाहिए।

व्यक्तियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में अर्थपूर्ण सम्बन्धों की आवश्यक ता होती है और बहुतों को तो इन्ही सम्बन्धों के आधार पर जीवन के महत्व और उद्देश्यों से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त होता है। अतः सामूहिक परामर्श में रुचि और इसका (सम्बन्धों का) प्रयोग अधिक होने लगा है।

सामूहिक परामर्श के आधार पर निम्नलिखित हैं-

(1) व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमताओं तथा सीमाओं का ज्ञान, (2) अपनी सम्भावनाओं की पूर्ति, (3) वैयक्तिक भिन्नताओं का प्रभाव, (4) विकासात्मक प्रक्रिया में सामूहिक अनुभव, (5) व्यक्ति के प्रत्यक्ष ज्ञान एवं संप्रत्यय में समूह के कारण होने वाले परिवर्तन।

समूह के सदस्यों में भी अन्तर होना स्वाभाविक है परन्तु उद्देश्यों की समानता के कारण उनमें एकता होती है और इसलिए वे मिलकर सामूहिक कार्य में भाग लेना चाहते हैं। समूह की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण अंश भाग ग्रहण है। वही समूह सफल माना जाता है जिसके सभी सदस्य मन, वचन, कर्म से

सामूहिक कार्य में भाग लेते हैं। समूह की प्रक्रिया जो कि सामूहिक गति का ही एक रूप है, सहयोग की अवस्था की ओर उस समय अग्रसर होती है, जबकि भाग ग्रहण के पश्चात समूह के सदस्यों में सहयोग की भावना का उदय होता है।

यदि समूह को उपयुक्त नेत्त्व प्राप्त हो जाता है तो उसकी प्रक्रिया तथा गतिशीलता में अधिक कठिनाई नहीं होती, और वह कम से कम समय में अपने उद्देष्यो की पूर्ति की ओर अग्रसर हो जाता है।

8.8 तकनीकी पद

अवलम्ब	Support
तात्कालिक लक्ष्य	Immediate Goal
अभीष्ट लक्ष्य	Ultimate goal
मध्यस्थताकारी लक्ष्य	a Mediatory goal
सर्वांगी	Systemic
परानुभूति	Empathy
लगाव	Warmth
सत्यनिश्ठा	Genuineness
प्रत्यावर्तन	Reflection
विकल्पित अवसर	Alternate Opportunities
अनुवर्तन	Follow Up
प्रार्थी	Counselee

8.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. परामर्शन का उद्देश्य होता है-

(क) विकासात्मक (ख) निरोधात्मक

(ग) उपचारात्मक (घ) उपरोक्त तीनों

2. परामर्शन प्रक्रिया के बारे मे निम्न में कौन सा कथन गलत हैः-

(क) परामर्शन एक साक्षात्कार प्रक्रिया है।

(ख) परामर्शन लोकतांत्रिक ढंग से सहायता करने की प्रकिया है।

(ग)माता-पिता एवं अध्यापक ही सर्वश्रेश्ठ परामर्शदाता होते है।

(घ) समस्याओं का समाधान अंततः क्लायंट स्वयं ही करता है।

3. निम्न में कौन कथन सर्वाधिक सही हैः-

(क) परामर्शन द्वारा व्यक्ति के आत्मबोध, आत्मनिर्देशन, आत्मसिद्धि एवं आत्म-उन्न्यन में सहायता मिलती है।

(ख) परामर्शन प्रक्रिया में परामर्शदाता क्लायंट की कमियों की आलोचना करते हुए व्यवहार सम्बन्धी दिशा निर्देश देकर उसे सही मार्ग पर लाता हैं।

(ग) परामर्शन प्रक्रिया में व्यक्ति को इस प्रकार सहायता दी जाती है कि वह अपने संज्ञान, अनुभूति, अनुक्रिया प्रणाली और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को पुनर्संगठित कर सके।

(घ) कथन क और ग सही है किन्तु ख गलत है।

4. निम्नलिखित में से एक कथन गलत है, उसे चिन्हित कीज

(क) निर्देशन परामर्शन प्रक्रिया का एक अंग है।

(ख) परामर्शन निर्देशन प्रक्रिया में प्रदत्त अनेक प्रकार की सेवाओं में एक प्रमुख सेवा है।

(ग) परामर्शन कार्य का सम्बन्ध घर, विद्यालय, कार्य स्थल, स्वास्थ्य केन्द्र और सामुदायिक केन्द्र के साथ है।

उत्तर 1.घ 2.ग 3.घ 4.क

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.सामूहिक परामर्श के आधार पुस्तक किसने लिखी?

2.सामूहिक परामर्श के मूलभूत आधार कितने है?

उत्तरः 1. जी0सी0लैम्प 2. पांच

बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.परामर्शन के लक्ष्यो एवं उद्देश्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2.परामर्शन के तात्कालिक एवं मध्स्थताकारी लक्ष्यों के बारे में प्रकाश डालिए।

3.‘परामर्शन का अभीष्ट उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास है’ इस कथन की समीक्षा कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.परामर्शन के प्रक्रिया में लक्ष्यों की प्राप्ति प्रक्रिया लक्ष्यों के माध्यम से होती है
हॉ/नहीं

2.परामर्शन लक्ष्यों की प्राप्ति मध्यस्थ लक्ष्यों की पूर्ति द्वारा ही संभव हैं। हॉ/नहीं

3. निर्णय रचना या निरूपण मध्यवर्ती लक्ष्य होता है। हॉ/नहीं

4.समस्या समाधान एवं समायोजन परामर्शन का अभीष्ट उद्देश्य है।
हॉ/नहीं

5. अधिकतर लोगों के जीवन की मूल समस्या यह होती है कि उनके समझ किसी उपयुक्त लक्ष्य का अभाव होता है। हॉ/नहीं

उत्तरः 1.हॉ 2.हॉं 3.नहीं 4.नहीं 5.हॉ

बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.लक्षण उन्मूलन परामर्शन के लक्ष्यों की किस श्रेणी में आता हैः

(क) तात्कालिक लक्ष्य (ख) मध्यवर्ती लक्ष्य

(ग)प्रक्रिया लक्ष्य (घ) अभीष्ट लक्ष्य

2.निम्न लक्ष्यों में से कौन सा लक्ष्य परामर्शन का अभीष्ट लक्ष्य नहीं है।

(क) मानसिक स्वास्थ्य का विकास (ख) आत्मसिद्धि

(ग) व्यक्ति के संसाधन का संवर्धन (घ) व्यवहार परिमार्जन

3.परिवार के अन्दर किसी अन्य प्रणाली में आपसी सम्बन्धों के प्रारूप के कारण किस प्रकार का कारणात्मक सम्बन्ध या प्रभाव विकसित होता है-

(क)चक्रीय (ख) लम्बवत्

(ग) प्रत्यक्ष एवं सीधा (घ) विलोम

उत्तरः 1.क 2.घ 3.क

8.10 सन्दर्भ सूची

1 Anastasi (1959) Psychological testing Newyork: Macmillan co.

2. अमरनाथ राय, मधु अस्थाना, निर्देशन एवं परामर्शन, (संप्रत्यय क्षेत्र उपागम) मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी।

3.डॉ रामपाल सिंह, डॉ राधाबल्लभ उपाध्याय ''शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन'' विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

4.डॉ एस0सी0ओबराय ''शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श'' इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस मेरठ।

5.डॉ सीताराम जायसवाल ''शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श'' अग्रवाल पब्लिकेशन ।

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्शन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2. 'परामर्शन का अभीष्ट उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास है' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

3. 'परामर्शन का केन्द्र' व्यक्ति तक सीमित नहीं किया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति की समस्याओं का उसके परिवार एवं समाज के साथ गहरा सम्बन्ध होता है' इस कथन के संदर्भ में परिवार परामर्श न पर टिप्पणी लिखिए।

4. समूहिक परामर्श का आधार क्या है? विस्तारपूर्वक लिखिए।

5. परामर्शदाता की भूमिका पर एक निबन्ध लिखो।

इकाई -9 साक्षात्कार, व्यक्तिवृत विधि, परीक्षण (Interview, Case History, Testing)

इकाई **संरचना**

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 साक्षात्कार

9.3.। **साक्षात्कार के प्रकार**

9.3.2 साक्षात्कार के भाग

9.3.3 साक्षात्कार की तैयारी

9.3.4 साक्षात्कार करना

9.3.5 साक्षात्कार लेने वाले के गुण

9.3.6 साक्षात्कार के लाभ

9.3.7 साक्षात्कार की परिसीमाए

9.4 व्यक्ति इतिहास

9.4.1 आवश्यक सूचनाओं के प्रकार

9.4.2 सूचनाएं प्राप्त करने की विधियां

9.4.3 सूचनाओं का आलेख रखना

9.5 परीक्षण

9.5.1 मानकीकृत परीक्षण

9.5.2 मानकीकृत परीक्षण के प्रकार

9.5.2 प्रक्षेपी प्रविधियाँ

9.6 सारांश

9.7 तकनीकी पद

9.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

निर्देशन तथा परामर्श , व्यक्ति के विकास की अनिवार्यता है। व्यक्ति का विकास दूसरे से निर्देशन तथा परामर्श पर अधिक निर्भर करता है। इसके अभाव में व्यक्ति प्रगति नहीं कर सकता। व्यक्ति अध्ययन में व्यक्ति के विषय में सूचनायें एकत्र हो जाती है और उस आधार पर निष्कर्ष निकालकर आवश्यक निर्देशन तथा उसके क्रियान्वयन के लिये परामर्श दिया जाता हैं। व्यक्ति का अध्ययन करने से व्यक्ति के विषय में अनेक सूचनायें प्राप्त होती है। ये सूचनायें व्यक्ति के विषय में सही तथा वस्तुनिष्ट धारणायें बनाने में योग देती है।

रीवज एवं जड के अनुसार, विद्यार्थियों की पृष्ठ्भूमि तथा उनके अनुभवों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किये बिना ही उन विद्यार्थियों के विकास में निर्देशन प्रदान करने का प्रयत्न किसी असम्भव कार्य के लिये प्रयत्न करने जैसा है।

जोन्स का कथन है, किसी व्यक्ति को चयन में सहायता का आधार उसके बारे में व्यापक अध्ययन, उसकी मूलभूत आवश्यकतायें, उसके निर्णयों को प्रभावित करने वाली वास्तविक परिस्थितियों का ज्ञान होता है।

निर्देशन , शिक्षण की भॉति एक प्रकार की सेवा है जो कि एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्रदान की जाती हैं कहा यह जाता है कि शिक्षक कक्षा में पढ़ा रहा जबकि वह कक्षा में प्रत्येक छात्र को सीखने में मात्र सहायता करता है। इसी प्रकार परामर्शदाता, बहुधा छात्रों के समूहों में मिलता है। जिसका उद्देश्य भी समूह के प्रत्येक सदस्य की सहायता होता है। लेकिन इस प्रकार की सहायता तब तक प्रभावपूर्ण नहीं हो सकती जब तक शिक्षक या परामर्शदाता छात्र की व्यक्तिगत समस्या, उसकी विशेषताओं या योग्यताओं को भली-भांति न जानता हो। अतः छात्र या व्यक्ति की पूर्ण समझ ही सफल निर्देशन का आधार है। यही कारण है कि निर्देशन की दृष्टि से व्यक्ति का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति का अध्ययन करने के लिये उसके जीवन एवं परिवेश, कार्यस्थल, कार्य-वातावरण, स्वभाव आदि सम्बन्धी जानकारी एकत्र करने के लिये अनेक प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

व्यक्ति से कुछ सूचनायें मानकृत उपकरणों द्वारा प्राप्त होती है। ये सूचनायें वस्तुनिष्ट होते हुए भी अपूर्ण होती है। इसलिये अमानकीकृत उपकरणों तथा विधियों से भी सूचनायें एकत्र की जाती है। स्टैंग के शब्दों में-‘‘सम्पूर्ण विद्यार्थी का अध्ययन करने के लिये अभी तक किसी ने भी एक पूर्ण विधि का निर्माण नहीं किया है। शायद उत्तम विधि वह है जिसके द्वारा विद्यार्थी का विभिन्न परिस्थितियों में अध्ययन किया जाये।

9.2. उद्देश्यः-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- व्यक्ति -अध्ययन क्यों ?
- परामर्श के परीक्षण व अपरीक्षण उपागम

- साक्षात्कार द्वारा किस तरह से व्यक्ति की समस्याओं तथा गुणों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। परामर्श द्वारा किस तरह से समस्याओं को समझ कर उनका समाधान किया जाता है।
- व्यक्ति का अध्ययन करने के लिए आवश्यक जानकारी किस तरह से एकत्रित की जाती है व्यक्ति अध्ययन से ही व्यक्तिगत मार्गदर्शन एवं परामर्श दिया जाना सम्भव है। इसी के द्वारा व्यक्ति का विकास किस तरह से सम्भव है।
- व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिए मानकीकृत परीक्षणों का किस तरह से प्रयोग किया जाता है।

9.3 साक्षात्कार

साक्षात्कार एक आत्मनिष्ठ विधि है जिसके द्वारा व्यक्ति की समस्याओं तथा गुणों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। साक्षात्कार निर्देशन कार्य-विधि का एक आवश्यक अंग है जिसे परामर्श प्रक्रिया का हृदय माना जाता है। विद्यालयों में छात्रों के समक्ष अनेक समस्यायें उत्पन्न होती है। इन समस्याओं के समझने तथा उनके समाधान मे छात्रों को सहायता करने के लिए साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण विधि है।

1.जॉन जी0 डार्ले ने साक्षात्कार की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप है।''

2.गुड और हैड ने भी कहा है, ''किसी उद्देश्य से किया गया गम्भीर वार्तालाप ही साक्षात्कार है।''

उपर्युक्त परिभाषाएँ स्पष्ट करती हैं कि साक्षात्कार में आमने-सामने बैठकर किसी उद्देश्य को लेकर व्यक्तियों में वार्तालाप होता है। सभी प्रकार के साक्षात्कार में निम्नलिखित तत्व समान रूप से पाये जाते हैं।

(1) व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध।

(2) एक-दूसरे से सम्पर्क स्थापित करने का साधन।

(3) साक्षात्कार में संलग्न दो व्यक्ति यों में से एक को साक्षात्कार के उद्देश्य का ज्ञान रहता है।

9.3.। साक्षात्कार के प्रकार

साक्षात्कार अनेक प्रकार के होते हैं। यहॉ कुछ प्रकार के साक्षात्कार का विवरण दिया जा रहा है

i. **नियुक्ति साक्षात्कार-** किसी भी जीविका में नवीन नियुक्ति के लिये व्यक्ति का साक्षात्कार किया जाता है। इस साक्षात्कार का प्रमुख उद्देश्य जीविका के लिये व्यक्ति की उपयुक्तता निश्चित करना है। इसमें जीविका से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। ये प्रश्न साक्षात्कार करने वाले के द्वारा पूछे जाते हैं।
ii. **सूचनात्मक साक्षात्कार-** इस प्रकार के साक्षात्कार में छात्र को निष्पत्ति तथा विभिन्न परीक्षाओं में प्राप्त अंकों की व्याख्या सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान की जाती है। छात्रों को

भिन्न-भिन्न नौकरियों, जीविकाओं तथा शिक्षण संस्थाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ देना सूचनात्मक साक्षात्कार का उद्देश्य है।

iii. **अनुसंधान साक्षात्कार-** साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति में रुचि न रखकर उन तथ्यो में रुचि लेता है। जो तथ्य साक्षात्कार देने वाला बताता है। इस प्रकार के तथ्य बहुत व्यक्तियो से प्राप्त किये जाते हैं।

iv. **निदानात्मक साक्षात्कार-** इस साक्षात्कार का उद्देश्य छात्र के घर तथा वातावरण आदि से सम्बन्धित सूचनायें प्राप्त करना है। तथ्य-संकलन निदान का महत्वपूर्ण अंग होता है।

v. **परामर्श साक्षात्कार-** साक्षात्कार परामर्श प्रक्रिया का मुख्य आधार माना जाता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति में सूझ-बूझ उत्पन्न करना जो कि आत्म-बोध प्राप्त करने में सहायक होती है।

vi. **उपचारात्मक साक्षात्कार-** उपचारात्मक साक्षात्कार में व्यक्ति से इस प्रकार वार्तालाप किया जाता है कि उसको अपनी चिन्ताओ एवं परिस्थितियों से मुक्ति मिले, उसका समायोजन ठीक हो सके। वह अपनी सभी चिन्ताओं भावनाओं आदि को व्यक्त करके अपने मन के भार को दूर करता है।

vii. **तथ्य संकलन साक्षात्कार-** इस साक्षात्कार में व्यक्ति या व्यक्तियों के समुदाय से मिलकर तथ्य संकलित किये जाते हैं। शिक्षक या निर्देशक भी इसी विधि द्वारा छात्रों के सम्बन्ध में तथ्य एकत्रित करते हैं। इसके तीन प्रमुख उद्देश्य हैः

- अन्य विधियों द्वारा संग्रहित किये गये तथ्यों में न्यूवता-पूर्ति करना। कुछ तथ्य अन्य विधियों द्वारा प्राप्त नहीं हो पाते हैं। साक्षात्कार मे उन सूचनाओं को एकत्रित करने का प्रयत्न किया जाता है जो मनोवैज्ञानिक जॉचों द्वारा प्राप्त नहीं हो पाती है।
- पहले से संकलित की गयी सूचनाओं की पुष्टि करने के लिए तथ्य-संकलन साक्षात्कार किया जाता है।
- तथ्य-संकलन साक्षात्कार की तीसरा उद्देश्य शारीरिक रूप का अवलोकन करना है। बहुंत से छात्रों में अनेक दोष पाये जाते हैं जिनका ज्ञान मनोवैज्ञानिक जॉचों से नहीं हो सकता है। इसके साथ ही साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति का बातचीत करने का ढंग तथा आचरण करने का ढंग का ज्ञान होता है।

9.3.2 साक्षात्कार के भाग

साक्षात्कार के तीन भाग होते हैं:

1. प्रारम्भ
2. मध्य
3. अन्त

1. साक्षात्कार का आरम्भ-

साक्षात्कार के इस भाग में साक्षात्कार करने वाले तथा प्रार्थी के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करना सम्मिलित है। साक्षात्कार की सफलता इन मधुर सम्बन्धों पर ही निर्भर रहती है। साक्षात्कार प्रारम्भ करने के लिये निम्नलिखित सुझावों के अनुसार कार्य आरम्भ करना चाहिए।

आत्मीयता स्थापित करना-साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के साथ एकात्मकता स्थापित करनी चाहिए। एकात्मकता स्थापन हेतु डेविस तथा राबिन्सन ने निम्न सुझाव दिये हैंः

i. **सहानुभूति-** साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को कुछ शब्दों या अन्य किसी विधि द्वारा साक्षात्कार देने वाले के साथ सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए।
ii. **विश्वास** -साक्षात्कारकर्त्ता या तो साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति में विश्वास पैदा करे तथा साथ ही उसको प्रोत्साहित करे कि उसकी समस्या का समाधान अवश्य होगा।
iii. **स्वीकृति-** साक्षात्कारकर्त्ता या तो साक्षात्कार देने वाले के साथ अपनी सहमति प्रकट करता है या उसके कृत्यों को स्वीकृति प्रदान करता है। यह स्वीकृति व्यक्ति को उत्साहित करने के लिये दी जाती है। जिससे वह स्वयं भी भावनाओं को स्वतंत्रापूर्वक निस्संकोच होकर प्रकट कर सके।
iv. **विनोद-** तनाव दूर करने के लिये हास्य का भी प्रयोग करना चाहिए।
v. **व्यक्तिगत सन्दर्भ-** अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिये साक्षात्कारकर्त्ता को अपने अनुभवों का उदाहरण देना चाहिए।
vi. **प्रश्न पूछना-** व्यक्ति को अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की प्रेरणा देने के लिये साक्षात्कारकर्त्ता को कुछ प्रश्न पूछने चाहिए।
vii. **भय-** कभी-कभी साक्षात्कारकर्त्ता को यह भय दिखाना चाहिए कि अगर साक्षात्कार देने वाला सही सूचनाएँ नहीं देता है तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।
viii. **आश्चर्य-** साक्षात्कार देने वाले के कथन या क्रिया पर कभी-कभी साक्षात्कार लेने वाले को आश्चर्य भी प्रकट करना चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति अपने कथन या व्यवहार में सुधार कर लेता है।
ix. **प्रारम्भ में व्यवस्थित रचना पर कम ध्यान-** साक्षात्कार के प्रारम्भ में कोई भी व्यवस्थित रचना नहीं होनी चाहिए। प्रारम्भिक अवस्थाओं में साक्षात्कार स्वच्छन्द होना चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता को अपने उद्देश्य तक सीधे पहुचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।
x. **अनुमोदन-** अनुमोदन से तात्पर्य है कि साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को बातचीत की स्वतंत्रता प्रदान करता हैं वह उसके कथन पर कोई निर्णय नहीं देता है। उसमें विश्वास पैदा होता है कि वह जो कुछ कहेगा, वह स्वीकार किया जाएगा।
xi. **बातचीत का समान समय-** साक्षात्कार में बातचीत के लिये दोनों को ही समान समय मिलना चाहिए। साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को अगर बोलने के लिये पर्याप्त समय नहीं दिया जायेगा तो साक्षात्कार बहुत कम उपयोगी होगा।

2. साक्षात्कार का मध्य भाग-

साक्षात्कार का मध्य भाग महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इसके द्वारा ही इच्छित सूचनाएँ एकत्रित की जाती है। मध्य भाग को अधिक उपयोगी बनाने के लिये निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देना चाहिए।

i. **प्रेरक प्रश्नों का प्रयोग-** प्रश्न इस प्रकार के हों जो साक्षात्कार देने वाले को प्रेरणा दें। प्रश्नों द्वारा ही व्यक्ति को बात करने की प्रेरणा प्राप्त होती है । बहुत से प्रश्न 'हॉ' या 'नहीं' उत्तर वाले होते है। ये प्रश्न साक्षात्कार देने वाले को बात करने की या अधिक बोलने की स्वतंत्रता नहीं देते है। ऐसे प्रश्नों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

ii. **निस्तब्धता का रचनात्मक उपयोग-** निस्तब्धता का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए। अगर साक्षात्कार देने वाला चुप हो जाता है तो इसका अर्थ है कि उसके मस्तिष्क में विचार द्वन्द्व चल रहा हैं साक्षात्कारकर्त्ता की चुप्पी का कारण साक्षात्कार की प्रगति के बारे में चिन्तन हो सकता है।

iii. **सीमित सूचनाएँ -** साक्षात्कारकर्त्ता को एक बार के साक्षात्कार में ही छात्र के बारे में सब कुछ ज्ञात करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सीमित सूचनाएँ ही एक बार के साक्षात्कार में संग्रह करनी चाहिए।

iv. **साक्षात्कार देने वाले की भावना तथा अभिवृत्ति समझने का प्रयत्न-** साक्षात्कार देते समय व्यक्ति अपनी प्रतिगामी या नकारात्मक भावनाओं को प्रदर्शित करता है। परामर्शदाता को चाहिए कि वह उसकी भावनाओं के प्राप्त करने में असमर्थ रहेगा। नियंत्रण से तात्पर्य है कि वार्तालाप के समय नाममात्र की स्वतंत्रता दी जाती है। और वार्तालाप के मध्य ही प्रत्यक्ष प्रश्न पूछकर वह साक्षात्कार देने वाले को विषय पर लाता है।

3. साक्षात्कार की समाप्ति -

साक्षात्कार की समाप्ति करना भी कठिन कार्य है। साक्षात्कार की समाप्ति दो रूपों में होती हैः

साक्षात्कार की समाप्ति इस प्रकार करना कि छात्र को संतोष हो।

साक्षात्कार इस प्रकार समाप्त किया जाये कि दूसरे साक्षात्कार को प्रारम्भ में करने में कम समय लगे।

साक्षात्कार के समय साक्षात्कारकर्त्ता रुचि के कारण साक्षात्कार को इतना लम्बा कर देता है कि उसकी समाप्ति करना उसके लिये दुष्कर हो जाता है। उसको चाहिए कि साक्षात्कार के समय यह ध्यान रखे कि साक्षात्कार का अन्त किस प्रकार करना है। अगर पुनः उसी व्यक्ति का साक्षात्कार लेना है तो इन शब्दों के साथ साक्षात्कार समाप्त किया जा सकता है-''अच्छा, आज के साक्षात्कार का समय पूरा हो चुका है परन्तु अगर तुमको सुविधाजनक हो तो एक सप्ताह के बाद हम लोग फिर मिल सकते हैं'' साक्षात्कार की मुख्य बातें तुरन्त लिख लेनी चाहिए।

9.3.3 साक्षात्कार की तैयारी-

- साक्षात्कार आरम्भ करने से पहले ही यह निश्चित कर लेना चाहिए कि साक्षात्कार का उद्देश्य क्या है? जो तथ्य साक्षात्कारकर्त्ता को प्राप्त करने हैं उनकी सूची पहले से ही बना लेनी चाहिए।
- साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति छात्र के संचय आलेख-पत्र से उसके बारे में परिचय प्राप्त कर सकता है।
- साक्षात्कारकर्ता को चाहिए कि साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति से साक्षात्कार का दिन तथा समय निश्चित कर लिया जाय। समय ऐसा हो जो दोनों के अनुकूल हों।
- साक्षात्कार के लिये गुप्तता रखनी चाहिए। साक्षात्कार देते समय छात्र तभी तथ्य प्रकट करेगा, जब उसको यह विश्वास दिलाया जायेगा कि उसकी सभी सूचनाएँ गुप्त रखी जायेगी। गुप्त स्थान पर ही वह अपने विचारों को निस्संकोच व्यक्त करता है।
- साक्षात्कारकर्त्ता को पक्षपात नहीं करना चाहिए। साक्षात्कार के समय उसको निष्पक्ष रहना चाहिए।

9.3.4 साक्षात्कार करना-

i. साक्षात्कार करते समय परामर्शदाता को निम्नलिखित सुझाव ध्यान में रखने चाहिएः
ii. साक्षात्कार देने वाले का विश्वास प्राप्त करना एक आवश्यक तत्व है। विश्वास प्राप्त करने के लिये साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति को छात्र में रुचि तथा विश्वास दिखाना चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को मित्र बनाने की कला में निपुण होना चाहिए।
iii. साक्षात्कार देने वाले को यथार्थ सेवा प्रदान करनी चाहिए। उसको सहानुभूति तथा सहयोग की भावना रखनी चाहिए।
iv. साक्षात्कार लेते समय इस बात का प्रयत्न किया जाये कि साक्षात्कार देने वाला आराम अनुभव करें। उसकी भावनाओं को चोट न पहुचाई जाए। उसको वार्तालाप के लिये तैयार किया जाए। उसमें यह भाव पैदा कर दिया जाय कि वह साक्षात्कार लेने वाले के स्तर का है। अतः वह साक्षात्कारकर्ता के साथ विचारों का आदान-प्रदान कर सकता है।
v. साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति की बातें धैर्यपूर्वक सुननी चाहिए। बहुत से व्यक्ति सुनने की कला में प्रवीण नहीं होते हैं। साक्षात्कारकर्ता को चाहिए कि भले ही वह व्यक्ति इधर-उधर की बात करे तो भी उसे सुने।
vi. साक्षात्कार को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि साक्षात्कार के लिये अधिक समय दिया जाय।
vii. साक्षात्कार पर साक्षात्कारकर्ता का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को स्वयं चातुर्य से बीच-बीच में साक्षात्कार देने वाले को निश्चित उद्देश्य से परिचित कराते रहना चाहिए।

9.3.5 साक्षात्कार लेने वाले के गुण-

साक्षात्कार में सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि साक्षात्कार लेने वाले के कुछ अच्छे गुण हों। एक अच्छे साक्षात्कार लेने वाले में निम्नलिखित गुण होने चाहिए-

i. **स्पष्ट वक्ता-** साक्षात्कारकर्ता को कोई भी बात घुमा-फिराकर नहीं करनी चाहिए। साक्षात्कार देने वाले पर वह यह प्रभाव डाले के वह उसमें अधिक रुचि रखता है।

ii. **अच्छे-बुरे पर आश्चर्य प्रकट न करना-** साक्षात्कारकर्ता को छात्र की अच्छी या बुरी बातों पर आश्चर्य प्रकट नहीं करना चाहिए। छात्र को सभी त्रुटियों, कमियों को शांतिपूर्वक सुनना चाहिए।

iii. **विनोद-** साक्षात्कारकर्ता को हॅंसमुख होना चाहिए। तनावपूर्ण स्थिति को समाप्त करने के लिये इस गुण का होना आवश्यक है।

iv. **वार्तालाप पर एकमात्र अधिकार न करना-** साक्षात्कारकर्ता को वार्तालाप में साक्षात्कार देने वाले को समान समय देना चाहिए। उसे स्वयं वार्तालाप पर एकमात्र अधिकार नहीं करना चाहिए। वार्तालाप के समय अगर साक्षात्कार वाला बोर हो रहा हो तो मध्य में नहीं बोलना चाहिए।

v. **आत्मविश्वास रखने का प्रयत्न-** साक्षात्कार द्वारा प्रकट किये गये विश्वास को अन्त तक बनाये रखने के लिये साक्षात्कारकर्ता को प्रयत्न करना चाहिए, साक्षात्कार देने वाले की स्वीकृति लिये बिना साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार के विषय में उसके किसी परिचित से वर्णन नहीं करना चाहिए।

vi. **अच्छा सुनने वाला हो-** साक्षात्कारकर्ता को चाहिए कि वह साक्षात्कार की बातों को धैर्य न खो बैठे। अपनी अभिवृत्ति तथा कथन द्वारा उसको यह प्रदर्शित करना चाहिए। कि वह साक्षात्कार देने वालों में गहरी रुचि रखता है। साक्षात्कारकर्ता में दो गुण विशुद्धता तथा सद्भाव अवश्य होनी चाहिए।

vii. **अभिवृत्तियों तथा भावनाओं को स्वीकार करना-** साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार देने वाले की भावनाओं का आदर करना चाहिए जिससे वह व्यक्ति अपने संन्देह को व्यक्त कर सके। उसको किसी प्रकार का निर्णय नहीं देना चाहिए।

viii. **सीमित सूचनाओं का संग्रह-** एक ही साक्षात्कार में अनेक तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उसको चाहिए कि पूर्व-निश्चित सूचनाएँ प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

रूथ स्टैग ने कहा है-''साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्ता के व्यक्तित्व पर निर्भर रहती है।''

9.3.6 साक्षात्कार के लाभ-

साक्षात्कार विधि के निम्नलिखित लाभ हैः

- इस विधि का प्रयोग समस्याओं तथा उद्देश्यों के लिये किया जा सकता है।
- साक्षात्कार विधि को प्रयोग में लाना सरल है।
- छात्रों की अंतर्दृष्टि को विकसित करने में सहायक होती है।

- निषेधात्मक भावनाओं को स्वीकार करने तथा उनको स्पष्ट करने का अवसर साक्षात्कार में प्राप्त होता है।
- सम्पूर्ण व्यक्ति को समझने की यह उत्तम विधि है। व्यक्ति की अभिवृति संवेग, विचार आदि सभी का अध्ययन होता है।
- साक्षात्कार देने वाले को अपनी समस्याए प्रकट करने का साक्षात्कार अच्छा अवसर प्रदान करता है।
- विभिन्न दशाओं और परिस्थितियों में साक्षात्कार का प्रयोग करने के लिये उसे लचकदार बनाया जा सकता है।
- छात्र की समस्याओं के कारण ज्ञात करने मे साक्षात्कार परामर्शदाता की सहायता करता है।

9.3.7 साक्षात्कार की परिसीमाए-

उपर्युक्त लाभ होने पर भी इस विधि में कुछ कमियॉ पायी जाती है।

- यह एक आत्मनिष्ठ विधि है।
- एक साक्षात्कार के परिणामों की व्याख्या करना कभी-कभी कठिन हो जाता है।
- पृथक सामाजिक पृष्ठ्भूमि भी साक्षात्कारकर्ता को प्रभावित करती हैं सभी व्यक्तियों पर समाज की मान्यताओं, धारणाओं और विश्वास पर प्रभाव रहता हैं साक्षात्कारकर्ता तथा साक्षात्कार देने वाले व्यक्तियों को सामाजिक पृष्ठ्भूमि में अन्तर होने पर साक्षात्कारकर्ता पर उस व्यक्ति द्वारा अनेक सूचनाओं पर ध्यान नहीं देता है।
- व्यक्तिगत भावनाओं द्वारा साक्षात्कार प्रभावित हो सकता है।
- यह तनाव को दूर करने में सहायक होता हैं
- इस विधि में विश्वसनीयता तथा वैधता भी कम पायी जाती है।

9.4 व्यक्ति इतिहास

मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान के परिणामस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख परिवर्तन अध्ययन में बालक को प्रधानता देता है। अध्यापन तभी सफल माना जाता है जबकि अध्यापक अपनी कक्षा के सभी बालकों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देता हैं प्रत्येक बालक के विकास के क्रम एक-दूसरे से भिन्न होता है। उनकी आवश्यकताए भिन्न-भिन्न होती है। इसने अध्यापक को व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान देने के लिये प्रेरित किया। छात्रों के सम्मुख बहुत सी समस्यायें आती हैं। उन समस्याओं के समाधान के लिये उनको अनुभवी व्यक्ति की सहायता प्रदान की जाती है वह छात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं, योग्यताओं या इच्छाओं के जाने बिना प्रभावशाली नहीं हो सकती है। छात्रों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का महत्व रीविस तथा जुड ने इस

प्रकार व्यक्त किया है-''छात्रों की पृष्ठ्भूमि तथा उनके अनुभवों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किये बिना उनके विकास में पथ- प्रदर्शन का प्रयत्न असम्भव के लिये प्रयत्न करने के समान है''

भारत में माता-पिता अपने बच्चे की आवश्यकताओं तथा उनके गुणों का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही उनका भविष्य निश्चित करते हैं। इसका परिणाम उपयोगी नहीं होता है। बहुत से व्यक्ति अपनी वृतियों को बदलते हुए पाये जाते हैं वे किसी एक वृति में कुशलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं ऐसे व्यक्तियों को उचित निर्देशन की सहायता देने के लिये आवश्यक है कि उनकी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय। जोन्स ने कहा है कि ''चुनाव करने में जो सहायता दी जाए उसका आधार व्यक्ति से सम्बन्धित पूर्ण ज्ञान, उनकी प्रमुख आवश्यकताए तथा उनके निर्णय को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का ज्ञान होना चाहिए।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि अध्यापक, परामर्शदाता, निर्देशन कार्यकर्ता आदि सभी के लिये व्यक्ति से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचनाओं का अत्यधिक महत्व हैं।

9.4.1 आवश्यक सूचनाओं के प्रकार-

निम्न क्षेत्रों में सूचनायें प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है-

i. **सामान्य सूचनाएँ -** इसके अर्न्तगत छात्र से सम्बन्धित व्यक्तिगत सूचनायें एकत्रित की जाती है। छात्र का नाम, उपनाम,घर का पता, लिंग, जन्म-स्थान तथा जन्मतिथि आदि सभी सूचनाएँ एकत्रित की जानी चाहिए। सामान्य सूचनाओं में वे सभी तथ्य सम्मिलित है जो छात्र से सम्पर्क स्थापित करने के लिये आवश्यक है। उन व्यक्तियों से भी सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है जो छात्र के निकट सम्बन्धी है।

ii. **पारिवारिक तथा सामाजिक वातावरण-** यह बात मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध की जा चुकी है कि घर तथा सामाजिक वातावरण बालकों के शारीरिक तथा मानसिक विकास में अपना सहयोग देता है।अतः माता-पिता का व्यवसाय, शिक्षा , धर्म, स्वास्थ्य, जन्म स्थान, नागरिकता बोली जाने वाली भाषा आदि सभी तथ्य एकत्रित करने चाहिए? घरेलू परिस्थितियाँ किस प्रकार की है? घर के अन्य सदस्य क्या कार्य करते है? घर की आर्थिक दशा कैसी है? आदि सूचनाएँ प्राप्त करना भी आवश्यक है। छात्र के भाई-बहिन के सम्बन्ध में भी सूचनायें एकत्रित करनी चाहिए। भाई-बहिनों के नाम,जन्मतिथि, शिक्षा, तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी आंकड़े संकलित करने चाहिए। यह जानना भी आवश्यक है कि माता-पिता जीवित हैं या मर गये हैं। या उसकी सैातेली मॉ तो नहीं है? उसके घर के पास का सामाजिक वातावरण का ज्ञान भी निर्देशक को सहायक होता है। बालक के साथियों के बारे में सूचना प्राप्त करनी चाहिए।

iii. **स्वास्थ्य-** तीसरे प्रकार की सूचनाएँ छात्रों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में एकत्रित करनी चाहिए। शारीरिक तथा मानसिक-दोनो ही प्रकार का स्वास्थ्य सम्मिलित किया जाय। परामर्श की दृष्टि, श्रवणेन्द्रिय, रूग्णतांत्रिक आदि सूचनायें उपयोगी रहती है। छात्र के स्वास्थ्य परीक्षण का सम्पूर्ण आलेख सुरक्षित रखना चाहिए। छात्र का अध्ययन करने के लिए उसकी बीमारी, कमियों तथा दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करना आवश्यक है बहुत से व्यक्तियों के शरीर अनेक प्रकार

के दोषों से युक्त होते हैं। इन दोषों का ज्ञान रखना चाहिएं उदाहरण के लिये हृदय या कमजोर दृष्टि वाले व्यक्ति वायुयान सम्बन्धी जीविका में प्रवेष नहीं पा सकते है। स्वास्थ्य से सम्बन्धित सूचनाएँ व्यावसायिक तथा शैक्षिक, दोनों प्रकार के निर्देशन के लिये आवश्यक रहती है।

iv. **विद्यालयी इतिहास और कक्षा-** कार्य का उल्लेख-छात्र ने किन-किन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की है तथा विद्यालय में उसको क्या-क्या कठिनाई अनुभव हुई आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित की जानी चाहिए। छात्र ने जिन विषयों का अध्ययन किया है, उन विषयों में उसकी प्रगति आदि का पूर्ण आलेख रखा जाये। छात्र को निर्देशित करते समय ये सूचनायें अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

v. **साफल्य-** व्यक्ति की शिक्षा -सम्बन्धी योग्यता के बारे में भी ज्ञान रखना चाहिए। व्यक्ति ने क्या शिक्षा पायी है? उसने कौन सी कक्षा उत्तीर्ण की है? वह किन विषयों में अधिक ज्ञान रखता है? उसकी सफलता किन विषयों में संतोषजनक नहीं है? क्या उसने कभी कोई पारितोशिक या छात्रवृत्ति प्राप्त की है? केवल शिक्षा -सम्बन्धी प्रगति ज्ञात करना ही पर्याप्त नहीं है, इसके साथ ही सामाजिक समायोजन, भाषा प्रयोग आदि क्षेत्रों में प्राप्त साफल्य का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। ये सभी सूचनायें विद्यालय में छात्र को निर्देशन -सहायता प्रदान कराने के लिये ही उपयोगी नही है बल्कि उच्च संस्थाओं और व्यापारिक तथा औद्योगिक संगठनों में छात्रों के चुनाव करने की और निर्देशन करने के लिये प्रतिवेदन तैयार करने में भी सहायक होती है। विभिन्न विषयों में की गयी प्रगति का वैषयिक और विश्वसनीय मापन प्राप्त करने के लिये रूढ़िगत परीक्षाओं के स्थान पर नई प्रकार की परीक्षाओं का प्रयोग करना चाहिए। पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में की गयी प्रगति का भी आलेख रखना चाहिए।

vi. **मानसिक योग्यता-** बुद्धि-परीक्षाओं द्वारा छात्रों की बुद्धि मापी जाती है। उच्च शिक्षा या कुछ व्यवसायों में सफलता प्राप्त करने के लिये छात्रों की बुद्धि-लब्धि उच्च होनी चाहिए। मन्द बुद्धि बालकों को उच्च शिक्षा में सफलता प्राप्त करने की सम्भावना कम रहती है। कुछ विषय अपेक्षाकृत अधिक कठिन होते हैं अतःउनमें सफलता प्राप्त करने के लिये अधिक बुद्धि की आवश्यकता होती है, उदाहरण के लिये- विज्ञान।

vii. **अभियोग्यता-** अभियोग्यता का पता लगाने के लिये भी प्रमापीकृत परीक्षाओं का प्रयोग करना चाहिए। निर्देशन का एक उद्देश्य छात्र की उचित व्यवसाय का चयन करने में सहायता करना भी है। छात्र की विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में क्षमता निश्चित करने के लिये सूचनाऐं की आवश्यकता हाती है। यांत्रिक, लिपिक, संगीतात्मक, कलात्मक तथा वैज्ञानिक अभियोग्यताओं से सम्बन्धित सूचनायें भी संकलित करनी चाहिए। ये सूचनायें पाठ्य विषयों या व्यवसाय के चुनाव करने में छात्रो को प्रदान की जाने वाली सहायता का आधार बनती है। माध्यमिक विद्यालय विशेष अभियोग्यताओं का आलेख नहीं रख सकते। क्योंकि इस स्तर पर छात्रों में किसी विशेष क्षेत्र में अभियोग्यता दिखाई दे तो इसकी सूचना परामर्शदाता को देनी चाहिए।

viii. **रुचियॉ-** शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के लिये छात्रों की इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रुचियों की सूचना रखना भी आवश्यक होता है। प्रत्येक छात्र की रुचि के बारे में विद्यालय को दो प्रकार की सूचनायें रखनी चाहिए। प्रथम तो छात्र की क्रियाओं का आलेख जो उसकी कृत्यकारिणी रुचि के प्रकट करेगा। दूसरे, प्रमापीकृत परिसूचियों तथा निरीक्षण द्वारा प्राप्त रुचियों का आलेख। रुचियो में अवस्थानुसार परिवर्तन होता रहता हैं परामर्शदाता को व्यक्ति के वर्णन से कि वह अमुक कार्य में रुचि रखता है निर्णय नहीं कर लेना चाहिए।

ix. **व्यक्तित्व-** छात्र के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले गुणों की सूचना भी प्राप्त करनी चाहिए। छात्र के व्यक्तिगत-विकास पर आर्थिक ध्यान देना चाहिए। परन्तु यह बताना कठिन होगा कि व्यक्तित्व के लिये कौन-कौन से गुण होने चाहिए जो कि सभी के लिये संतोषप्रद हों। वर्ग-क्रम के द्वारा छात्रों के गुण ज्ञात करना कठिन है क्योंकि इस विधि से कार्य करने में बहुत सी त्रुटियॉ आ जाती है। व्यक्तित्व परीक्षाओं के लागू करने में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। घटना-वृत्ति द्वारा ठीक प्रकार से व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण ज्ञात किये जा सकते हैं।

x. **व्यक्तित्व समायोजन-** व्यक्तित्व से सम्बन्धित ही व्यक्तिगत समायोजन का क्षेत्र है। छात्र को अपने अध्यापक, मित्र, माता-पिता तथा अन्य छात्रो के साथ व्यक्तिगत, सामाजिक, सांवेगिक संबंध स्थापित करने होते हैं। छात्र का इस सभी व्यक्तियों के साथ समायोजन किस प्रकार का है, इससे सम्बन्धित सूचनाओं का आलेख रखना चाहिए। विद्यालय में विभिन्न प्रकार की क्रियायें होती रहती है। विद्यालयों की क्रियाओं जैंसे-वाद-विवाद प्रतियोगिता, नाटक,खेल-कूद, छात्र परिषद्, आदि में छात्रों द्वारा लिये जाने वाले भाग अंकित कर लेने चाहिए। विद्यालय से बाहर की क्रियायें उसके सामाजिक समायोजन को स्पष्ट करती है। ये सभी सूचनायें छात्र के सामाजिक तथा सांवेगिक विकास का ज्ञान प्रदान करती है ।

xi. **भविष्य की योजना-** सफल निर्देशन के लिये आवश्यक है कि छात्रों की शैक्षिक या व्यावसायिक योजनाओं के बारे में भी सूचनायें एकत्रित की जायें। ये भविष्य की योजनाएं छात्र स्वयं या अपने माता-पिता की सहायता से बनाते हैं। अध्यापक या परामर्शदाता छात्रों की योग्याताओं, रुचियों या आंकाक्षा के अनुकूल ही भविष्य की योजनाओं के निर्माण में सहायता दे सकते हैं। भविष्य की योजनाओं से सम्बन्धित सूचनायें प्रश्नावली या साक्षात्कार द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

9.4.2 सूचनाएँ प्राप्त करने की विधियॉ

छात्रों से सम्बन्धित सूचनायें एकत्रित करने के लिये निर्देशन कार्यकर्ता को बहुत सी विधियॉ प्रयोग में लानी होती है। वह किसी एक विधि पर निर्भर नहीं रह सकता है। वही विधियॉ प्रयोग में लानी चाहिए जो विश्वसनीय तथा वस्तुनिष्ट हों। सूचनाएँ एकत्रित करने के लिये दो विधियॉ प्रयोग में लायी जाती है-

(1) प्रमापीकृत परीक्षायें

(2) अप्रमापीकृत विधियॉ

(1) प्रमापीकृत परीक्षायें - निर्देशन कार्यक्रम मे प्रमापीकृत परीक्षाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन प्रमापीकृत परीक्षाओं के व्यापक उपयोग के निम्नलिखित कारण है-

- प्रमापीकृत परीक्षायें निष्पक्ष तथा वस्तुनिष्ट विधि
- अन्य विधियों की अपेक्षा प्रमापीकृत परीक्षाओं द्वारा सूचनायें एकत्रित करने में कम समय लगता है।
- परीक्षाओं द्वारा सूचनायें कम रूप में एकत्रित की जाती हैं कि एकत्रित निर्देशन कार्यकर्त्ताओं द्वारा उनका समान अर्थ लगाया जाता है।
- परीक्षाओं द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी, समस्याओं या व्यवहार के क्षेत्र के तथ्यो का अप्रत्यक्ष रूप से पता लगाना सम्भव है।
- अध्यापक द्वारा किये गये निरीक्षण से बहुत से छात्र छूट भी सकते हैं। लेकिन परीक्षाओं द्वारा उन छात्रों का पता भी लग जाता है जिन पर विशेष ध्यान देने की आवयकता है।

यद्यपि प्रमापीकृत परीक्षाओं की उपयोगिता अत्यधिक है परन्तु इनकी भी कुछ परिसीमायें होती हैं इनकी परिसीमायें वैधता, विश्वसनीयता , उपयोगिता तथा प्रतिदर्शी के क्षेत्रों में पायी जाती है। इन परीक्षाओं के प्रयोग में भी निम्नलिखित त्रुटियॉ होने की सम्भावना पायी जाती है ।

- परीक्षायें विस्तृत मापन प्रदान नहीं करती है।
- परीक्षायें यह स्पष्ट कर सकती है कि छात्र परीक्षा की परिस्थितियों में क्या कर सकता है लेकिन यह इसको स्पष्ट नहीं करती है कि छात्र अन्य परिस्थितियों में क्या करेगा।
- परीक्षायें कभी-कभी ऐसे उद्देश्यों के लिये प्रयोग में लायी जाती है जिनके लिये वे बनी ही नहीं।
- छात्र क्या कर सकता है, परीक्षायें प्रमाण दे सकती है, परन्तु उसके लिये निर्णय नहीं दे सकती है।
- परीक्षा कार्यक्रम निर्देशन कार्यक्रम का एक अंग है, न कि सब कुछ।

प्रमापीकृत परीक्षाओं का वर्गीकरण- प्रमापीकृत परीक्षाओं का वर्गीकरण अग्रलिखित प्रकार से किया जा सकता है-

i. बुद्धि परीक्षायें
ii. साफल्य परीक्षायें
iii. विशेष योग्यतायें या अभियोग्यता परीक्षायें
iv. रुचि परीक्षायें
v. व्यक्तित्व परीक्षायें

अप्रमापीकृत विधियॉ -

छात्रों का अध्ययन करने के लिये आवश्यक है कि उनसे सम्बन्धित सभी प्रकार की सूचनायें प्राप्त की जायें।स्टैग ने कहा है-‘‘सम्पूर्ण छात्र का अध्ययन करने के लिये अभी तक किसी ने भी एक पूर्ण विधि का

प्रयोग नहीं किया है। सम्भवतः अच्छी विधि वह है जिसके द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में अध्ययन किया जाय।'' छात्रों के बहुत से गुणों का ज्ञान प्रमापीकृत परीक्षाओं द्वारा नहीं हो पाता है। अतः अप्रमापीकृत विधियों का उपयोग करना पड़ता है। अप्रमापीकृत विधियॉ निम्नलिखित है-

i. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख
ii. आत्मकथा
iii. निर्धारण
iv. व्यक्ति -अध्ययन
v. समाजमिति
vi. प्रश्नावली
vii. साक्षात्कार
viii. सामूहिक अभिलेख पत्र
ix. प्रक्षेपण विधियॉ

9.4.3 सूचनाओं का आलेख रखना-

सूचनायें एकत्रित कर लेना ही पर्याप्त नही है,बल्कि उन एकत्रित सूचनाओं का सुरक्षित आलेख रखना भी आवश्यक हैं सभी सूचनायें व्यवस्थित रूप में रखनी चाहिए तथा आवश्यकता होने पर उसको सरलता से प्राप्त किया जा सके। सूचनाओं के आलेख निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्तों पर आधारित होने चाहिए-

- प्राप्त सूचनायें ऐसे व्यवस्थित की जाय कि वे कार्य-कारण सम्बन्ध स्पष्ट करें
- आलेख की सूची इस प्रकार संगठित की जाये कि सूचनायें सफलता से अंकित तथा प्राप्त की जा सकें।
- आलेख पत्र ऐसे स्थानों पर रखे जाये कि उनका उपयोग करने वाले सरलता से उनको प्राप्त कर सकें।
- आलेख का उपयोग करने के लिये स्पष्ट निर्देष आलेख के साथ लिख दिये जायें।
- जब छात्र एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय को जाये तो उसका आलेख भी उसके साथ जायें।
- इस प्रकार का प्रबन्ध किया जाय कि जिस व्यक्ति को अधिकार प्राप्त न हो वह उन आलोखों को न देख पायें।

आलेख की सामग्री के प्रकार- (a) अधिक टिकाऊ हो। (b)अधिक पतला हो (c) कम भारी हो

(d) पेंसिल या स्याही से लिखने के उपयुक्त हों, (e) आकर्षक रंग का हो।

- फाइल व्यवस्था सादा होनी चाहिए

- सूचनाओं के प्राप्त करने, उनका आलेख रखने के लिये अध्यापक, प्रधानाध्यापक तथा परामर्शदाता को सम्मिलित रूप से कार्य करना चाहिए।

9.5 परीक्षण

9.5.1 मानकीकृत परीक्षण-

व्यक्ति से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करने के लिये अनेक मनोवैज्ञानिक मानकीकृत परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। ऐसा इसलिये करते हैं कि इनके माध्यम से जो जानकारी प्राप्त होती है वह अधिक विश्वसनीय मानी जाती है। साथ ही मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से व्यक्ति के विषय में उन बातों का भी ज्ञान होता है जो निर्देशन एवं परामर्श की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

i. **सांस्कृतिक घटकों का प्रभाव-** अधिकतर मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षण सांस्कृतिक घटकों से प्रभावित होते हैं। दूसरे शब्दों में-''व्यक्ति के सांस्कृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण में ही मानकीकृत परीक्षणों का उपयोग करना उचित है। यह सही है कि कुछ ऐसे मानकीकृत परीक्षण बनाये गये हैं जो सांस्कृतिक प्रभाव से मुक्त होते हैं। लेकिन इसके विषय में भी मतभेद है। क्योंकि हमारे देश में मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रायः अभाव है, इसलिये देश के छात्रों एंव युवकों को वांछनीय शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श उपलब्ध नहीं हो पाता है।

ii. **उद्देश्य पूर्ति-** परीक्षण मुख्य रूप से तीन उद्देश्यों के लिये किये जाते हैं। ये है- पूर्वानुमान, भविष्य कथन, निदान और शोध । परीक्षणों का प्रयोग प्रयोगकर्ता विशिष्ट उद्देश्य के लिये, परिक्षार्थियों की भविष्य की उपयुक्तता के लिये चुनाव, आदि में करता है।हम परीक्षणों का प्रयोग छात्रों के कॉलेजों अथवा विश्वविद्यालयों के प्रवेश में, व्यवसाय के लिये भविष्य कथन आदि में करते हैं। परीक्षणों के परिणाम व्यक्ति के भविष्य के बारे में कथन करते हैं और बताते है कि उसे जीवन मे किस सीमा तक सफलता मिल सकती है,उनमें अपनी क्षमताए क्या है।

iii. **विशेष परिस्थितियों में प्रयोग-** परीक्षणों का निर्देशन एवं परामर्श की स्थितियों में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है, जैसे एक छात्र यदि स्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होता है तो उसे निर्देशनदाता को सौंप दिया जाता है कि वह उसकी असफलता के कारणों का पता लगाये।

iv. **कई परिकल्पनाओं का निर्माण-** बालक का अध्ययन करते समय निर्देशनदाता कई कल्पनाओं का निर्माण करता है, जैसे-उच्च अध्ययन के लिये बालक में आवश्यक बौद्धिक क्षमता का कम होना, मूल ज्ञान का ही अभाव होना या बालक का गलत प्रकार से अध्ययन करने के कारण अनुत्तीर्ण होना, आदि। निर्देशनदाता भविष्य में बालक की क्षमताओं का भविष्य कथन करने के लिये उस बालक पर किये गये परीक्षण के प्राप्तांक तथा उसी परिस्थिति में अन्य बालकों के प्राप्तांकों से तुलना करता है।

v. **विभिन्न परिस्थितियों के प्राप्तांकों का प्रयोग-** निदान के लिये निर्देशनकर्ता उसी बालक के विभिन्न परीक्षणों के प्राप्तांकों की तुलना करता है, जो उसे विभिन्न परिस्थितियों में दिये जाते हैं। यहॉ पर इस बात पर बल दिया जाता है कि बालक के विभिन्न परिस्थितियों में दिये गये परीक्षणों मे क्या

प्राप्तांक है उसका तुलनात्मक अध्ययन निदान में क्या सहायता प्रदान करता है। निर्देशनकर्ता बालक की कठिनाइयों के कारणों को जानकर ही उसे सहायता एवं निर्देशन दे सकता है।इस प्रकार परीक्षणों का प्रयोग नियंत्रित चर के रूप में, मानव व्यवहार के वर्णन तथा सम्बन्धों और व्यवहारों के अध्ययन के लिये और स्थापित परिकल्पनाओं के सत्यापन में किया जाता है।

संक्षेप मे यह कह सकते हैं कि परीक्षण व्यक्तिगत व्यवहारों का विश्लेषण करने में वर्णन करने में, मूल्यांकन करने में, भविष्य कथन और निर्देशन मे सहायक होते हैं तथा मानव व्यवहार एवं शिक्षा में सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

9.5.2 मानकीकृत परीक्षण के प्रकार

व्यक्ति के सम्बन्ध मे जानकारी एकत्र करने के लिये प्रायः अग्रलिखित प्रकार के मानकीकृत परीक्षणों को काम में लाया जाता है-

1.बुद्धि परीक्षण 2.उपलब्धि परीक्षण 3. विशेष योग्यता अथवा अभिरुचि परीक्षण
4.रुचि परीक्षण 5.व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्ति के सम्बन्ध में एकत्र करने के लिये प्रयुक्त उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक मानकीकृत परीक्षणों की निर्देशन के क्षेत्र में भूमिका का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1) **बुद्धि परीक्षण-** बुद्धि परीक्षणों का उपयोग मानसिक प्रक्रियाओं के खोज, ज्ञान के बीच सम्बन्ध तथा सहसम्बन्ध खोजने की योग्यता के लिये किया जाता है। स्पीयरमैन के बुद्धि के दो कारक सामान्य एवं विशेष बतायें हैं। सभी व्यक्तियों में सामान्य तथा विशेष योग्यताएं होती है। थार्नडाईक ने बुद्धि का बहुकारक सिद्धान्त प्रतिपादित किया तो थर्स्टन ने समूह कारक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर अनेक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया।

बुद्धि का सामान्य अभिप्राय व्यक्ति की समस्या समाधान एवं नवीन परिस्थितियों में प्रभावक अनुक्रिया करने की योग्यता से लगाया जाता है निर्देशन के क्षेत्र में, बुद्धि परीक्षणों का उपयोग प्रायःकिसी व्यवसाय में सफलता के लिये आवश्यक बौद्धिक स्तर के मापन हेतु किया जाता है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि निर्देशन की दृष्टि से मात्र बौद्धिक योग्यता में विशिष्टता किसी व्यवसाय में सफलता की द्योतक नहीं है। व्यावसायिक सफलता के लिये व्यक्ति में बौद्धिक योग्यताओं के अतिरिक्त अन्य गुणों का भी पाया जाना आवश्यक है। निर्देशन के क्षेत्र में व्यक्ति की व्यावसायिक सफलता का निर्धारण मूलतः दो आधारों पर किया जाता है। किसी व्यवसाय में सफल व्यक्ति में, उस व्यवसाय के लिये उपयुक्त सामान्य विशेषताए या क्षमताए पायी जाती हैं इस विचार के अन्तर्गत व्यक्ति के रूझान व बुद्धि का परीक्षण किया जाता हैं लेकिन इस बात का अब प्रचलन समाप्त हो रहा है। व्यावसायिक सफलता निर्धारण प्रक्रिया का द्वितीय या समकालीन आधार है- उन तत्वों समुच्चयों का कारकीय विश्लेषण, जो कि किसी एक व्यवसाय में व्यावसायिक सफलता के

लिये आवश्यक स्वीकार किये जाते हैं। बहुकारकीय अन्वेषण के अन्तर्गत आजकल बुद्धि परीक्षणों को स्थान दिया जा रहा है निर्देशन के क्षेत्र में अब इनका कोई पृथक अस्तित्व नहीं पाया जाता है।

2) **उपलब्धि परीक्षण-** व्यक्ति ने क्या सीखा या अर्जित किया है इसको जानने के लिये उपलब्धि परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। किसी अध्ययन या अभ्यास के एक निश्चित समय के उपरान्त व्यक्ति ने क्या ज्ञान अर्जित किया है या किस सीमा तक निपुणता प्राप्त की है। तथ्य से परिचित होने का उपलब्धि परीक्षण एक महत्वपूर्ण साधन है।

उपलब्धि परीक्षणों के प्रायः दो रूप प्रचलित है- शिक्षकों द्वारा निर्मित उपलब्धि परीक्षण तथा मानकीकृत उपलब्धि साधन।शिक्षकों द्वारा निर्मित उपलब्धि बहुधा निबन्धात्मक परीक्षण होते हैं। इधर शिक्षकों में वस्तुनिष्ट परीक्षणों के निर्माण की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। लेकिन मानकीकरण तथा अन्य निर्माणगत त्रुटियों के कारण, उपलब्धियों के मूल्यांकन में शिक्षक निर्मित उपलब्धि परीक्षण अपेक्षाकृत रूप में वैध विश्वसनीय नहीं स्वीकार किये जाते है। इसके विपरीत मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण अधिक वैध एवं विश्वसनीय होते हैं। परामर्शदाता को उसकी कार्य-प्रगति, त्रुटियों इत्यादि के विषय में पर्याप्त जानकारी एकत्र करने में विशिष्ट सहायता मिलती है।

3) **विशेष योग्यता अथवा अभिरुचि परीक्षण-** अभिरुचि का अभिप्राय किसी निश्चित परिस्थिति में जैसे- कोई व्यावसाय या स्कूल में कार्य करने अथवा खेलने , वाद्य यंत्रों को बजाना, भाषा का सीखना, इत्यादि के लिये अभ्यास या प्रशिक्षण में सफलता की सम्भावना के मापन से है। दूसरे शब्दों में किसी कार्य या व्यवसाय में सफलता प्राप्ति की सम्भावनाए व्यक्ति के लिये क्या है? इस तथ्य का निर्धारण उसकी अभिरुचि के मापन द्वारा किया जाता है। अभिरुचि परीक्षण के द्वारा निर्देशनकर्ता व्यक्ति की आन्तरिक क्षमताओं से परिचित होता है। छात्र या व्यक्ति को किसी व्यवसाय के चयन हेतु परामर्श देते समय परामर्शदाता, व्यक्ति की अभिरुचि के अनुकूल ही उसके व्यावसायिक उद्देश्यों के निर्माण करता हैं आजकल विभेदक अभिरुचि परीक्षण का व्यापक उपयोग व्यक्ति विषय में जानकारी एकत्र करने के लिये किया जा रहा है। इसी परीक्षण द्वारा- शाब्दिक तर्कणा, संख्यात्मक योग्यता, अमूर्त तर्कणा, स्थानिक सम्बन्ध, यांत्रिक तर्कणा, लिपिक गति एवं शुद्धता कर व्यक्ति की अभिरुचि का पता लगाया जाता है।

4) **रुचि परीक्षण-** रुचि के विषय में विंघम ने कहा है- रुचि किसी अनुभव में खो जाने या लिप्त हो जाने तथा उसे जारी रखने की प्रवृति है। ड्रीवर ने कहा है- रुचि स्वभाव का गतिशील पक्ष है। इस दृष्टि से रुचियॉ चार प्रकार की होती है- 1. प्रदर्शित 2.अभिव्यक्त 3.प्रमाणित 4.परीक्षित।

5) व्यक्ति अध्ययन के लिये इनका परीक्षण आवश्यक है।रुचि का अभिप्राय किसी विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति से जुड़ी प्रतिक्रिया के प्रति व्यक्ति को अपनी पसन्द की भावना है। रुचि का सम्बन्ध चूंकि भावना से है अतः इसका वस्तुपरक मापन सम्भव नहीं है। केवल इसकी उपस्थिति या अनुपरिस्थिति, व्यक्ति के कथनों के आधार पर जानी जा सकती है। दूसरे शब्दों में, रुचि के विषय में केवल अनुमानांकन ही सम्भव है। इसी कारण से रुचि के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये अन्य प्रकार के मनोवैज्ञानिक साधनों का उपयोग किया जाता है ये साधन दो प्रकार के होते हैं-

1.व्यक्ति द्वारा दी गयी आत्म सूचना तथा 2. प्रश्नावली ।

आत्म सूचना रिपोर्ट के विश्लेषण तथा प्रश्नावली से प्राप्त रुचि विषयक जानकारी, व्यक्ति के व्यावसायिक चयन के निर्धारण में विशेष महत्व रखती है। सुनिर्देशन के द्वारा शिक्षालय जीवन तथा सामुदायिक किया-कलापों का रुचियों के विकास के साधन के रुप में भी महत्वपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

6) **व्यक्तित्व परीक्षण-** व्यक्तित्व शब्द लैटिन शब्द परसोना से लिया गया है। इस शब्द का अर्थ लिबास, नकाब या मुखौटा। रंगमंच पर विभिन्न पात्रों का अभिनय करने के लिये पहले मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। ये मुखौटे, पात्रों के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते थे। आईजेनैक के शब्दों में- व्यक्तित्व के चरित्र, स्वभाव बुद्धि और शारीरिक आकार का कुछ ऐसा स्थायी और स्थिर संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।

व्यक्तित्व क्या है? इस विषय में मूलतः तीन विचारधाराए प्रचलित है-

- व्यक्तित्व उन सभी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक गुणों, आकांक्षाओं, अभिरुचियों तथा रुचियों का एक संगठन है जो कि व्यक्ति की विशेषता है।
- व्यक्तित्व के समग्र व्यवहार का प्रतिरुप एवं उसकी संरचना है।
- व्यक्ति का जो प्रभाव दूसरों पर पडता है उसी के आधार पर व्यक्ति त्व का अनुमान लगाया जा सकता है। व्यक्तित्व के विषय में अवधारणात्मक अन्तर के कारण, उसके विषय में जानकारी एकत्र करने की प्रविधियॉ भी अलग-अलग हैं। व्यक्तित्व के मूल्यांकन के क्षेत्र में प्रेक्षण या अवलोकन एक सामान्य विधि है । जिसका उपयोग बहुतायत से शिक्षकों एवं परामर्शदाता के द्वारा होता है।

व्यक्तित्व मापन एवं मूल्यांकन के क्षेत्र में प्रयुक्त उपकरणों या परीक्षणों को उनके विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है-

- व्यक्तित्व मूल्यांकन की अणुत्मक विधियॉ- जिसमें विशिष्ट व्यवहारों के प्रति पृथक्-पृथक् जानकारी एकत्र कर उनके आधार पर पूरे व्यक्तित्व के विषय में निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
- मूल्यांकन की समग्र विधियॉ- इसमें सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विषय में एक साथ जानने या सूचनाएँ एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है।

अणुत्मक विधियों में आत्मकथा विश्लेषण, समाजमितिक विधि, विकास सम्बन्धी रिकार्डों का विश्लेषण, इत्यादि सम्मिलित हैं। समग्रं विधियों में प्रक्षेपण तकनीकों का उपयोग होता है।

मानकीकृत परीक्षणों के जिन पॉच प्रकारों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनमें निम्नलिखित विशेषताए प्रायः पायी जाती है-

- मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षण वस्तुनिष्ट तथा विश्वसनीय होते हैं।
- मानकीकृत परीक्षणों के प्रयोग द्वारा समय एवं शक्ति की बचत होती है।

- मानकीकृत परीक्षणों द्वारा एकत्र जानकारी की व्याख्या में मतभेद की सम्भावना बहुत कम होती है।

मानकीकृत परीक्षणों के उपयोग से जहॉ अनेक लाभ है वहीं इनकी कुछ सीमाए भी है। दूसरे शब्दों में-''मानकीकृत परीक्षणों की उपयोगिता सीमित होती है'' इसमें अग्रलिखित कारण हैं-

- समान रूप से उपयोग नहीं- मानकीकृत परीक्षणों का उपयोग सभी देशों में समान रुप से नहीं किया जा सकता हैं।
- न्यादर्श से प्रभावित- मानकीकृत परीक्षण की उपयोगिता प्रतिचयन सेम्पलिंग से प्रभावित होती है। दूसरे शब्दों में-"यदि प्रतिचयन ग्रामीण क्षेत्र किया गया है तो उस पर आधारित मानकीकृत परीक्षण केवल ग्रामीण क्षेत्रों के लिये ही उपयोगी होगा।"
- निश्चित प्रयोजन- मानकीकृत परीक्षणों का निर्माण कुछ निश्चित प्रयोजन से होता है। फलतः यह परीक्षण प्रयोजनबद्ध होते हैं और इनका उपयोग इसमें निहित प्रयोजन के अनुसार ही किया जा सकता है।
- विशेष सन्दर्भ- मानकीकृत परीक्षण व्यक्ति -सम्बन्धी सूचनाएँ एक विशेष स्थिति के सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हैं। अतः किसी व्यक्ति से सम्बन्धित जानकारी सम्पूर्ण नहीं मानी जा सकती।
- अधिक बल प्रभावहीन- कभी-कभी मानकीकृत परीक्षणों द्वारा प्राप्त जानकारी पर इतना अधिक बल दिया जाता है कि निर्देशन की दृष्टि से उनकी उपयोगिता ही समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानकीकृत परीक्षणों का उपयोग करते समय सावधानी से काम लेना चाहिए और इनकी सीमित उपयोगिता को भी ध्यान में रखना चाहिए।

9.5.3 प्रक्षेपी प्रविधियॉ-

व्यक्ति के अध्ययन एवं उससे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने में प्रक्षेपी प्रविधियॉ सहायक होती है। कुछ लेखकों के अनुसार प्रक्षेपी प्रविधियों का व्यक्तित्व में इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि इनका स्थान मानकीकृत परीक्षणों के निकट माना जाने लगा है। यद्यपि प्रक्षेपी प्रविधियॉ पूर्णतः मानकीकृत नहीं है। फिर भी इनके मानकीकृत नहीं है। फिर भी इनके द्वारा जो तथ्य प्राप्त होते हैं वे अधिक निर्भर करने योग्य एवं विश्वसनीय माने जाते हैं।

परामर्श कार्यक्रम को सफल बनाने के उद्देश्य से प्रार्थी से सम्बन्धित विभिन्न सूचनायें एकत्र करने के लिये उपरोक्त परीक्षण व अपरीक्षण उपागमो का उपयोग किया जाता है। परामर्शदाता सुझाव, मुक्तिपूर्ण अनुनय, पुर्नशिक्षण, द्वारा प्रार्थी में समस्या के सम्बन्ध में अंतर्दृष्टि उत्पन्न करने का प्रयास करता है ताकि प्रार्थी अपनी समस्या का समाधान कर सकें।

9.6 सारांश

साक्षात्कार का अर्थ है- दो व्यक्ति यो का किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपसी वार्तालाप। सूचना देने वाला तथा सूचना लेने वाला, दोनों ही किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये वार्तालाप करते हैं। पोलिन यंग के शब्दों में- ''साक्षात्कार वह क्रमबद्ध विधि है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपेक्षाकृत अजनबी व्यक्ति के जीवन में प्रवेश करता है।''

व्यक्ति के विषय में जानकारी एवं सूचनाएँ प्राप्त करने की दूसरी अमानकीकृत प्रविधि साक्षात्कार है।

व्यक्ति अध्ययन करते समय निर्देशन एवं परामर्श की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उसकी बुद्धि, अभिरुचियों, मूल्यों तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटकों की आरे ध्यान दें। व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी जानकारी एकत्र करने के लिये अनेक प्रकार की प्रविधियॉ प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों को दो वर्गों में विभाजित करते है- 1.अमानकीकृत प्रविधियॉ, 2.मानकीकृत परीक्षण।

अमानकीकृत प्रविधियॉ- व्यक्ति के जीवन में विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिये जिन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों को दो वर्गो में विभाजित करते हैं-1. प्रश्नावली, 2.साक्षात्कार, 3.प्रेक्षण, 4. संचयी अभिलेख पत्र, 5.समाजमिति, 6.व्यक्ति अध्ययन, 7.क्रम निर्धारण, 8. उपाख्यानक अभिलेख, 9. आत्मकथा।

मानकीकृत परीक्षण- व्यक्ति से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करने के लिये अनेक मनोवैज्ञानिक मानकीकृत परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। ऐसा इसलिये करते हैं कि इनके माध्यम से जो जानकारी प्राप्त होती है वह अधिक विश्वसनीय मानी जाती है। साथ ही मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से व्यक्ति के जीवन में उन बातों का भी ज्ञान होता है जो निर्देशन एवं परामर्श की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

व्यक्ति के सम्बन्ध जानकारी एकत्र करने के लिये प्रायः निम्नलिखित प्रकार के मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को काम में लाया जाता है।

1.बुद्धि-परीक्षण 2.उपलब्धि परीक्षण 3. विशेष योग्यता अथवा अभिरुचि परीक्षण, 4. रुचि परीक्षण

5.व्यक्तित्व परीक्षण।

मनकीकृत परीक्षणों का उपयोग करते समय सावधानी से काम लेना चाहिए और इनकी सीमित उपयोगिता को ध्यान में रखना चाहिए।

अनौपचारिक रूप से जानकारी एकत्र करते समय व्यक्ति के परिवार एवं पड़ौस के लोगों से भी पूछताछ करना अच्छा होता है। व्यक्ति के निकट के लोगों के साथ किस प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध रखता है एंव व्यवहार करता है इसकी भी जानकारी निर्देशन एवं परामर्श की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी होती है।

व्यक्ति अध्ययन एवं उससे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने में प्रक्षेपी प्रविधियॉ सहायक होती है। कुछ लेखको के अनुसार प्रक्षेपी प्रविधियॉ अमानकीकृत प्रविधियॉ के अन्तर्गत होनी चाहिए। लेकिन

आजकल प्रक्षेपी प्रविधियॉं का व्यक्तित्व के अध्ययन में इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि इनका स्थान मानकीकृत परीक्षणों के निकट माना जाने लगा हैं।

9.7 तकनीकी पद

नियुक्ति	Appointment
निदानात्मक	Diagnostic
तथ्य संकलन	Fact-finding
अनुमोदन	Permissiveness
विनोद	Humorous
निशेधात्मक भावना	Negative Feeling
साफल्य	Achievement
प्रमापीकृत	Standardized
अप्रमापीकृत	Non-standardized

9.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न -

वस्तुनिष्ट प्रश्न -

1. परामर्शन सम्बन्ध लक्ष्य पर केन्द्रित रहता है। हॉ/नहीं

2. परामर्शन सम्बन्ध संविदा आधारित गतिविधि होती है। हॉ/नहीं

उत्तरः 1.हॉ 2.नहीं

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है-

क. व्यक्ति के व्यवहारात्मक दोषों को जानने के लिये

ख. व्यक्ति के विकास के लिये

ग. व्यक्ति के समायोजन के लिये

घ. उपरोक्त सभी

2. व्यक्ति अध्ययन में जानकारी चाहिए-

क. सामान्य ख .स्वास्थ्य

ग. सामाजिक पर्यावरण घ. उपरोक्त सभी

3. सूचना एकत्र करने की कितनी विधियॉ है?

क. तीन ख. दो

ग. चार घ. सभी

4. बुद्धि परीक्षणों का उपयोग होता है-

क. छात्रों के लिये ख. नौकरी में चयन के लिये

ग. अधिकारियों की नियुक्ति के लिये घ. उपरोक्त सभी

5. परामर्शदाता की संगति का अर्थ होता हैः-

क. परामर्शदाता और परामर्शी मित्र होते हैं।

ख. परामर्शदाता और परामर्शी की अच्छे लोगों के साथ मित्रता है।

ग. परामर्शदाता के अनुभवों और क्लायंट को संप्रेशित हो रहे परामर्शदाता के अनुभव के मध्य कोई अन्तराल अथवा द्वन्द्व नहीं है।

घ. दोनों पक्ष संविदा के बिन्दुओ पर सहमत है।

6. परामर्शन परिवेश की विशेषता होती हैः-

क. लचीलापन

ख. सन्निकट सम्बन्ध

ग. संलिप्तता

घ. उपरोक्त सभी विशेषताए

उत्तरः-1.घ 2.घ 3.ख 4.घ 5.ग 6.घ

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Anastasi (1959) Psychological testing Newyork: Macmillan co.

2. अमरनाथ राय, मधु अस्थाना, निर्देशन एवं परामर्श न, (संप्रत्यय क्षेत्र उपागम) मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी।

3.डॉ रामपाल सिंह, डॉ राधाबल्लभ उपाध्याय ''शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन'' विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

4.डॉ एस0सी0ओबराय ''शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श'' इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस मेरठ।

5.डॉ सीताराम जायसवाल ''शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श'', अग्रवाल पब्लिकेशन।

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. निर्देशन एवं परामर्शन में साक्षात्कार प्रविधि क्यों अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है?
2. व्यक्ति के अध्ययन की कौन सी विधि आपकी दृष्टि में सबसे अधिक उपयोगी है? कारणों सहित उत्तर दीजिये?
3. साक्षात्कार के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से है? साक्षात्कार को सफल बनाने के लिये आप क्या-क्या सावधानियॅां बरतेंगे? साक्षात्कार की परिसीमाए हैं?
4. सूचनायें प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि एकत्रित सूचनाओं की उपयोगिता उनके रखने के ढंग पर निर्भर करती है। इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

यूनिट 10 -परामर्श के उपागम :-संज्ञातात्मक उपागम ,व्यक्ति केंद्रित उपागम ,परामर्श प्रक्रिया के वृतांत हेतु पद /उपागम (Approaches to counselling: cognative approaches, the person centered approach to assessment and counselling, narrative approach to assessment and counselling)

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3. परामर्श के उपागम

10.4 संज्ञानात्मक उपागम

10.4.1 संज्ञानात्मक उपागम के मूलभूत अभिग्रह

10.4.2 संज्ञानात्मक उपागम में समस्या की उत्पत्ति और अनुरक्षण की व्याख्या

10.4.3 संज्ञानात्मक उपागम में परिवर्तन सम्बन्धी लक्ष्य

10.4.4 संज्ञानात्मक उपागम में परिवर्तन अर्जित करने की प्रविधियॉ

10.5 व्यक्ति-केन्द्रित उपागम

10.5.1 मूलभूत अभिग्रह

10.5.2 समस्याओं की उत्पत्ति एवं अनुरक्षण

10.5.3 परामर्शदाता की दक्षताए एवं परामर्शन नीतियॉ

10.5.4 परामर्शन परिवेश का क्लायंट पर प्रभाव

10.6 परामर्श प्रक्रिया के वृतान्त हेतु पद/उपागम

10.6.1 परामर्श-प्रक्रिया के पद

10.7 सारांश

10.8 तकनीकी पद

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.10 सन्दर्भ सूची

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावनाः-

व्यक्ति की समस्याओं और आवश्यकताओं के रूप अनेक होते है जैसे- लक्ष्य का नियंत्रण, लक्ष्य का चयन, लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामर्थ्य का विकास और बाधाओं का निराकरण। व्यक्ति को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये परामर्शदाता उनके संज्ञान, अनुभूति/संवेग, व्यवहार को प्रभावित करता है तथा इस हेतु अनेक तकनीकों को प्रयुक्त करता है। परामर्शदाता द्वारा प्रयुक्त तकनीक या तकनीकों का समुच्चय उसकी अभिमुखता का विकास समस्याओं की उत्पत्ति और परिवर्तन की व्याख्या प्रस्तुत करने वाले किसी सिद्धान्त के अनुरूप होता है।फेल्थम और हार्टन- ''परामर्शन और मनोचिकित्सा ऐसी गतिविधियॅा हैं जो किसी सिद्धान्त द्वारा रूपरचित, समर्थित होती है। अर्थात् परामर्शन कार्य में सैद्धान्तिक आधार की विशेषता पायी जाती है। परामर्शन के सैद्धांतिक आधारों, तकनीकी भिन्नताओं, प्रक्रिया लक्ष्यों में विविधताए पायी जाती है। जिसे सैद्धान्तिक प्रतिरूप, अभिमुखता, उपागम, सम्प्रदाय, ब्राण्ड नेम्स आदि अनेक रूपों में सम्बोधित किया जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से परामर्शन और मनोचिकित्सा के क्षेत्र में उपागमों/सम्प्रदायों का सम्बन्ध व्यक्तित्व के सिद्धान्तों के साथ रहा है। उपचार और परिवर्तन के तत्व ही व्यक्ति सिद्धान्त की सीमा के बाहर होते थे और शेष समस्त आधार/दृष्टिकोण एक निश्चित व्यक्तित्व सिद्धान्त के भीतर ही पाये जाते थे। हार्पर ने ऐसे 36 सम्प्रदायों का वर्णन किया है। नारक्रॉस और ग्रेन केवेज ने 1959 से 1986 के मध्य के विभिन्न पुनर्मूल्यांकनों का सर्वेक्षण करके पाया कि 400 से अधिक भिन्न या विशिष्ट परामर्शन या मनोचिकित्सा के मॉडल अथवा उपागम प्रचलन में है। विगत एक दो दशकों में यह प्रवृत्ति भी पनपती हुई देखी गयी है कि परामर्शन/मनोचिकित्सा के उपागम/प्रतिरूप आवश्यक रूप में किसी व्यक्तित्व सिद्धान्त के साथ पूर्णतः जुड़ा हुआ नहीं है; यद्यपि सिद्धान्त के कुछ पक्षों को उसमें थोड़े परिवर्तित महत्व के साथ-साथ देखा जा सकता है।

10.2 उद्देश्यः-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- परामर्श उपागम क्यों ?
- व्यक्ति की विश्वदृष्टि , अर्थात् यह कि व्यक्ति वास्तविकता की संरचना कैसे करता है और अपने जीवन के अनुभवों का कारणात्मक रोपण किस प्रकार करता है।
- हम जैसा सोचते हैं वैसे ही होते है। हम जो कुछ है उसका उद्भव हमारे विचारों में कैसे होता है, अपने विचारों से हम संसार की रचना कैसे कर सकते हैं।
- व्यक्ति-केन्द्रित या रोगी केन्द्रित उपचार का विकास मनोविश्लेषणात्मक उपागमों की भांति ही मनोपचार सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर किस प्रकार किया जाता है।

- समस्या की प्रकृति पर परामर्श का प्रकार निर्भर करता है, लेकिन समस्या से क्षेत्रों को सीमित नहीं किया जा सकता। परामर्शदाता किस तरह से समस्याओं को सुलझाने या उनका सामना करने के लिए तैयार रहता है।

10.3. परामर्श के उपागम-

परामर्शन उपागमों के सामान्य तत्व

परामर्शन उपागमों के वर्णन में बहुधा चार तत्वों का समावेश देखा जा सकता है-

i. मूल अभिग्रह या दर्शन
ii. मानव व्यक्तित्व और विकास का औपचारिक सिद्धान्त
iii. नैदानिक सिद्धान्त
iv. परामर्शन/मनोचिकित्सीय संक्रियाए और तकनीकें

मूल अभिग्रह या दर्शन के अन्तर्गत दो प्रकार का वर्णन देखा जा सकता है। प्रथम, व्यक्ति की विश्वदृष्टि, अर्थात् यह कि व्यक्ति वास्तविकता की संरचना कैसे करता है और अपने जीवन के अनुभवों का कारणात्मक रोपण किस प्रकार करता है। कुछ उपागम व्यक्ति के मूल्यों, विश्वासों और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों का भी वर्णन करते है। द्वितीय श्रेणी के अभिग्रह परामर्शन/मनोपचार प्रक्रिया से सम्बन्धित होते हैं। उसके अन्तर्गत परामर्शन सम्बन्धों की विशेषताओं और परामर्शन/मनोचिकित्सा के लक्ष्यों, उद्देश्यों, मूल्यों का वर्णन देखा जा सकता है।

व्यक्तित्व और विकास के औपचारिक सिद्धान्त के अन्तर्गत मानव व्यवहार के संगठन और विकास , विशेषतयः समायोजनात्मक समस्याओं या व्यक्तित्व विकृतियों के कारणों की व्याख्या देखी जा सकती है। इस व्याख्या द्वारा यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति की समस्या का मूल कहॉ पर अवस्थित है और परामर्शन/मनोचिकित्सा द्वारा व्यक्ति के जीवन के किस क्षेत्र में हस्तक्षेप की आवश्यकता है- संज्ञान, भावानुभूति , व्यवहार, विम्ब या अन्तर्वैयक्तिक जीवन क्षेत्र। आधुनिक उपागमों में से अनेक इस पक्ष पर ध्यान नहीं देते हैं क्योंकि उनका चिन्तन इस बिन्दु पर सक्रिय पाया जाता है कि समस्याओं का समाधान किस प्रकार किया जाये या लक्ष्यों को किस प्रकार अर्जित किया जा सकता है।

नैदानिक सिद्धान्त मुख्यतया औपचारिक सिद्धान्त के अमूर्त सम्प्रत्ययों की इस प्रकार व्याख्या करता है कि उनका उपयोग परामर्शन/उपचार कार्यो के क्षेत्र में सरलतापूर्वक किया जा सके। इस प्रकार नैदानिक सिद्धान्त परिवर्तन के नियमों और सन्निहित परिवर्तन प्रक्रिया का वर्णन करता है।

तकनीकी वर्णन के अन्र्तगत परिवर्तन की प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है। विविध उपागम परामर्शी के साथ सम्बन्धों की विशेषता, भावनात्मक अभिव्यक्ति, भावनाओं, के अन्तरण, प्रतिअन्तरण, जीवन प्ररिप्रेक्ष्य एवं अन्र्तदृष्टि के विकास, व्यक्तिगत एवं परिवेशीय बोध, सामर्थ्य विकास, दोष निवारण, पुर्नशिक्षण

जैसी प्रक्रियात्मक तकनीकों का वर्णन प्रस्तुत करते है। इस प्रकार नैदानिक सिद्धान्त का कार्यरूप में कैसे उपयोग किया जायेगा इसका वर्णन अत्यन्त मूर्तरूप में इस पक्ष में किया जाता है।

10.4 संज्ञानात्मक उपागम

परामर्शन एवं मनोचिकित्सा की मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली का आरम्भ में व्यापक प्रभाव क्षेत्र विकसित हो गया किन्तु शीघ्र ही उक्त प्रणाली के समर्थकों एवं अनुयायियों में बीच उपागम के अभिग्रहों के बारे में मतभेद उभरने लगा। मनोविश्लेषणात्मक उपागम के साथ असहमति का स्तर तीव्र होने के साथ-साथ दूसरी मनोवैज्ञानिक उपचार प्रणालियों को विकसित करने का प्रयास भी आरम्भ हो गया। आरोन बेक् ने मनोविश्लेषणात्मक उपागम से असंतुष्ट होकर संज्ञानात्मक उपागम विकसित किया। बेक के विचारों पर तार्किक संवेगात्मक उपागम के प्रणेता अल्बर्ट एलिस की भांति ही ग्रीक, रोमन और पूर्वी दार्शनिकों के विचारों का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। दर्शन के इस क्षेत्र में यह सोच प्रभावशाली पायी गयी है कि हम अपने विश्व और स्वयं के बारे में जैसा चिन्तन करते हैं उसका हमारे संवेग और व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है गौतम बुद्ध ने कहा-''हम जैसा सोचते हैं वैसे ही होते हैं। हम जो कुछ है उसका उद्भव हमारे विचारों में होता है, अपने विचारों से हम संसार की रचना करते है।''

बेक ने 1963 और 1964 में चिन्तन और विषाद के सम्बन्धों पर शोधपत्र प्रस्तुत करके विषाद में नकारात्मक संज्ञान त्रिपद का संप्रत्यय किया। जिसमें यह कहा गया है कि विवाद से पीड़ित व्यक्ति विश्व, भविष्य तथा स्वयं के बारे में नकारात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हैं। विषाद चिन्तन का विकार है। बाद में अन्य मानसिक समस्याओं में भी संज्ञानात्मक विकार प्रदर्शित किया जा सके इसलिये उपचार हेतु संज्ञान के स्तर पर हस्तक्षेप की प्रणाली विकसित की गयी। संज्ञानात्मक उपागम में अनेक व्यवहार हस्तक्षेप तकनीकों को भी सम्मिलित किया गया है। इसलिये इस उपागम का प्रमुख रूप संज्ञानात्मक व्यवहार उपागम को होता है।

10.4.1 संज्ञानात्मक उपागम के मूलभूत अभिग्रहः-

हम सभी लोगों को परिवेश के साथ समायोजन स्थापित करने की आवश्यकता होती है। उपर्युक्त समायोजन स्थापित होने के लिये परिवेश, स्वयं अपने बारे में एवं अन्य लोगों के बारे में यथार्थपूर्ण सूचना की आवश्यकता होती है। हमारी ज्ञानेन्द्रियॉ परिवेश के साथ मध्यस्थता स्थापित करके मौलिक सूचनाए अर्जित करती है। ज्ञानेन्द्रियॉ के स्तर पर प्राप्त सूचनाओं के चिन्तन, तर्क, कल्पना की प्रणालियॉ सम्मिलित होकर हमारे अन्तर व्यक्तियों, परिवेश और घटनाओं के बारे में जिस स्वरूप में विकास करती है उसमें घटना का वस्तुनिष्ट वर्णन ही नहीं अपितु हमारी व्याख्या, मूल्यांकन और निष्कर्ष का समावेश होता है।

संज्ञानों का हमारी अनुभूतियों, व्यवहार और दैहिक अवस्था के साथ सम्बन्ध के बारे में विश्वास इन सिद्धान्त का मूलभूत अभिग्रह है। इस प्रकार यदि सामने उपस्थित व्यक्ति का प्रत्यक्षण/संज्ञान एक आतंकवादी के रूप में हो रहा है। तो व्यक्ति की दैहिक अवस्था प्रभावित होगी। उसकी श्वसन क्रिया और हृदयगति तीव्र हो

जायेगी, व्यक्ति को भय/क्रोध की अनुभूति होगी तथा हमारा व्यवहार पलायन/आक्रमण के रूप में होगा। व्यक्ति उत्पन्न हुए संज्ञान के औचित्य का मूल्यांकन कर सकता है और उसमें संशोधन कर सकता है।

बेक ने व्यक्ति की अनुभूतियों और व्यवहार को प्रभावित करने वाले तीन प्रकार के संज्ञान का वर्णन किया है-

- **सूचना संसाधन-** व्यक्ति को निरन्तर बाहरी परिवेश और आन्तरिक संरचना से सूचनाए प्राप्त होती रहती है जिसको आधार बनाकर हमारा मस्तिष्क उसे संज्ञानात्मक अर्थपूर्णता के रूप में प्रस्तुत करती है।
- **स्वचालित विचार-** व्यक्ति के अनेक संज्ञान स्वतः स्फूर्त होते हैं, इनकी उत्पत्ति आन्तरिक संवाद द्वारा होती है। व्यक्ति के लिये ऐसे संज्ञानों का चेतन बोध प्राप्त होना आवश्यक नहीं होता है।
- **स्कीमा-** स्कीमा ऐसी काल्पनिक संज्ञानात्मक संरचनाए होती हैं जो वर्तमान प्रसंग में आवश्यक सूचनाओं पर ध्यान केन्द्रित करने और आवश्यक सूचनाओं की उपेक्षा करने के लिये अवछनन प्रणाली की भांति हमारी सहायता करती हैं स्कीमा अनकहा नियम या अन्तर्निहित विश्वास होता है। जिसका आरम्भिक अनुभवों के माध्यम से विकास होता है।

10.4.2 संज्ञानात्मक उपागम में समस्या की उत्पत्ति और अनुरक्षण की व्याख्या-

बेक के संज्ञानात्मक प्रतिरूप की अवधारणा यह है कि व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक या सांवेगिक समस्याओं का कारण परिस्थितियों और अनुभव में नहीं, व्यक्ति के विकृत चिन्तन की प्रणाली में निहित होता है।

जब अस्वस्थ या कुसमायोजनात्मक स्कीमा जो कि नकारात्मक, दृढ़ और निरपेक्ष होता है, विकसित और सक्रिय हो जाता है तब सूचना संसाधन में विकृति आ जाती है-सूचना को व्यक्ति के अन्तर्निहित विश्वासों के अनुरूप परिवर्तित कर लिया जाता है या प्रतिकूल सूचनाओं की उपेक्षा कर दी जाती है। बेक ने विकृत सूचना संसाधन के तीन रूपों का वर्णन किया हैः-

1. मनमाना निष्कर्ष - अर्थात् ऐसा संज्ञानात्मक निष्कर्ष जिसका कोई आधार या समर्थन करने वाला साक्ष्य नहीं है।

2. द्विभाजी चिन्तन- चिन्तन की ऐसी शैली जिसमें व्यक्ति सदैव द्विध्रुवीय मूल्यांकन में किसी एक छोर पर पाया जाता है, मध्यवर्ती मूल्यांकन का स्वरूप नहीं पाया जाता है।

3. अधिकारीकरण एवं अल्पीकरण- इस प्रकार का विकार आने पर संज्ञानात्मक प्रक्रिया घटनाओं का मूल्यांकन या तो बढ़ा-चढ़ाकर या अत्यन्त घटाकर प्रस्तुत करती है।

10.4.3 संज्ञानात्मक उपागम में परिवर्तन सम्बन्धी लक्ष्य-

संज्ञानात्मक उपागम का लक्ष्य सुव्यवस्थित प्रक्रिया के माध्यम से सांवेगिक समस्याओं का उपचार और व्यवहार में परिवर्तन स्थापित करना होता है। संज्ञान में परिवर्तन स्थापित करना इस उपागम का प्रथम लक्ष्य होता है। इस कार्य के लिये क्लायंट की सक्रिय सहभागिता आवश्यक होती हैं परिवर्तन के लक्ष्य और प्रक्रिया की निम्न अवस्थायें होती हैः-

- क्लायंट को संज्ञानात्मक प्रतिरूप और संवेग एवं व्यवहार मे विचार की भूमिका के बारे में शिक्षित करना, क्लायंट में समस्या का सम्प्रत्ययन विकसित करना।
- परामर्शदाता क्लायंट को संज्ञानात्मक त्रुटियों, स्वतः स्फूर्त विचार और स्कीमा को चुनौती देने एवं व्यवहार में परिवर्तन की योजना बनाने तथा लक्ष्य निर्धारित करने के लिये सहायता देता है।
- क्लायंट को स्वयं के लिये परामर्शदाता/उपचारक बनने हेतु सहायता दी जाती है।
- क्लायंट के विकृत विचारों में दीर्घकालिक लाभ के लिये परिमार्जन उत्पन्न किया जाता है।
- क्लायंट में उसकी समस्याओं की उत्पत्ति और अनुरक्षण के विषय में अंतरिम परिकल्पनाओं के रूप में विश्लेषण का प्रतिपादन किया जाता है। यह विश्लेषणात्मक प्रतिपादन

  संज्ञानात्मक विकृति, स्वतः स्फूर्त विचार, स्कीमा 2. पूर्वनिहित कारकों अधिगम 3. तात्कालिक कारकों के पदों रूप में तैयार किया जाता है।

10.4.4 संज्ञानात्मक उपागम में परिवर्तन अर्जित करने की प्रविधियॉ-

जिल्ल मिट्टन के अनुसार संज्ञानात्मक परामर्शदाता/उपचारक सक्रिय-निर्देषात्मक परामर्शन पद्धति अपनाते हैं। परामर्शदाता द्वारा संज्ञानात्मक एवं व्यवहार प्रविधियों को प्रयुक्त करने के लिये अच्छे परामर्शन सम्बन्ध की आवश्यकता होती है।संज्ञानात्मक परामर्शदाता का कार्य शिक्षक जैसा होता है अतः उसमें अच्छे शिक्षक के गुण होने चाहिए कि वह परामर्शी को संज्ञान, संवेग, शरीर क्रिया और व्यवहार के सम्बन्धों के बारे में शिक्षित कर सकें। परामर्शदाता में परामर्शी को अपने विचार एवं व्यवहार का प्रबोधक बनाने, उसके औचित्य का परीक्षण करने तथा विकृत एवं गलत ढंग से कार्य कर रहे विश्वास की प्रणाली का परिमार्जन करने के लिये शिक्षित करने की सामर्थ्य होना चाहिए।

10.5 व्यक्ति-केन्द्रित उपागम

व्यक्ति-केन्द्रित या रोगी-केन्द्रित उपचार का विकास मनोविश्लेषणात्मक एवं मनोगत्यात्मक उपागमों की भांति ही मनोपचार सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर कार्ल रोजर्स द्वारा किया गया। यह उपागम जो कि अनेक दृष्टियों से अस्तित्ववादी उपागम के समीप है। आरम्भ में अनिर्देषात्मक प्रणाली के नाम से पुकारा गया किन्तु कालान्तर में इस व्यक्ति केन्द्रित उपागम के रूप में ही प्रसिद्धि मिलीं। रॉजर्स का उपागम अस्तित्ववादी उपागमों के साथ जोड़कर मानववादी उपागम की श्रेणी में रखा जाता है। मानवतावादी उपागम व्यक्तियों में अन्तर्निहित शक्तियों में असीमित विश्वास व्यक्त करता है तथा यह स्वीकार करता है कि व्यक्ति में

अपना स्वस्थ एंव सृजनात्मक विकास सम्भव बनाने की सामर्थ्य होती है। इस प्रकार का उपागम मानव जीवन के बारे में अधिक आषावादी है।

रॉजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त और उपचार में स्व को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह माना जाता है कि जब व्यक्ति के स्व और अनुभवों के मध्य असंगति का विकास हो जाता है जब व्यक्तित्व संरचना विघटित हो जाती हैं जब ऐसे परिवेश का निर्माण किया जाता है कि व्यक्ति को अप्रतिबंधित सम्मान की प्राप्ति हो तब व्यक्ति के स्व और अनुभव के मध्य संगति का विकास होता है तथा मनोपचार का लक्ष्य प्राप्त होता है।

10.5.1 मूलभूत अभिग्रहः-

1. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य समस्त अनुभवों का केन्द्रक होता है। अनुभव के अन्तर्गत वह सब कुछ आता है जो सम्भाव्य रूप में किसी समय उपलब्ध होता है, अनुभवों की समग्रता दृष्य-प्रपंचीय क्षेत्र का गठन करती है। दृष्य-प्रपंचीय क्षेत्र की व्यक्ति की संदर्भ संरचना होती है।
2. व्यक्ति की चेतना या बोध अनुभवों का प्रतीकीकरण है। जिन अनुभवों का प्रतीकीकरण नहीं हो पाता उसे अवप्रत्यक्षण कहा जाता है।
3. व्यक्ति के दृष्य-प्रपंचीय क्षेत्र के एक पृथक भाग को स्व कहा जाता है। स्व या आत्म-सम्प्रत्यय ''मैं'' और ''मुझ'' की विशेषताओं और मैं तथा मुझ के अन्य लोगों एवं जीवन के विविध पक्षों के प्रत्यक्षण, इन प्रत्यक्षणों के साथ संलग्न मूल्यों से बना संगठित, संगतिपूर्ण, सम्प्रत्ययात्मक गेस्टाल्ट है। यह ऐसा गेस्टाल्ट है जो चेतन में बोध उपलब्ध होता है यद्यपि आवश्यक रूप में उसमें विद्यमान नहीं होता। यह एक परिवर्तनशील, तरल गेस्टाल्ट है, एक प्रक्रिया है, किन्तु किसी समय बिन्दु पर यह एक विशिष्ट तत्व होता है।
4. जब व्यक्ति के स्व की रचना करने वाले प्रतीकीकृत अनुभवो मे प्राणी के अनुभव निष्ठापूर्वक प्रतिबिम्बित होते हैं तब व्यक्ति समायोजित, परिपक्व और पूर्णतः प्रकार्यात्मक अवस्था में होता है।
5. ''व्यक्ति के अन्दर एकमात्र मूल प्रवृत्ति और तत्परता होती है- अनुभव कर रहे प्राणी का आत्मीकरण, अनुरक्षण और उन्नयन करना।''
6. प्राणी की आत्मीकरण प्रवृत्ति और स्व आत्मीकरण प्रवृत्ति की एकता सम्भव है। यदि व्यक्ति के स्व और उसके सम्पूर्ण अनुभवों में संगति व्याप्त होती है तो दोनों प्रवृत्तियॉ एकीकृत होती है और यदि स्व तथा अनुभव के बीच संगति का अभाव होता है तो प्राणी के आत्मीकरण की सामान्य प्रवृत्ति और स्व-आत्मीकरण की प्रवृत्ति एक दूसरे से पृथक विपरीत उद्देश्यों के लिये कार्य करते हैं।
7. आत्मीकरण की प्रवृत्ति सामर्थ्यो की सिद्धि और पूर्णता अर्जित करने की दिशा में कार्य करती है। इसका एक प्रकार्य व्यक्ति के अनुभवों के भाग को स्व के बाध के रूप में पृथक करना तथा आत्म-सम्प्रत्यय के रूप में संगठित करना होता है।
8. स्व-आत्मीकरण की प्रवृत्ति आत्म-संप्रत्यय के विकास के पश्चात् प्रकट होती है और उस सम्प्रत्यय के अनुरक्षण का कार्य करती है। स्व-आत्मीकरण प्रवृत्ति के कारण सदैव व्यक्ति अधिकतम प्रकार्यात्मक अवस्था में नहीं पहुचता है क्योंकि मनोवैज्ञानिक रूप में स्वस्थ होने पर भी स्व-

आत्मीकरण की प्रवृत्ति उसी सीमा तक कार्य करती है जहॉ तक कि व्यक्ति की आत्म-संरचना के अनुरक्षण की आवश्यकता होती है।

9. स्व के बारे में जानकारी को आत्म-अनुभव कहा जाता है। जब आत्म-अनुभव का अन्य व्यक्तियों द्वारा मूल्यांकन किया जाता है तब वह बाह्‌य मूल्यांकनों से प्रभावित होने लगता है। जब व्यक्ति आत्म-अनुभव का इस कारण परिहार करने लगता है कि वह आत्म-सम्मान के लिये कम या अधिक उपयुक्त है तब यह माना जाता है कि व्यक्ति ने आदर बोध के लिये शर्तों को अर्जित कर लिया हैं अर्थात् उसका आत्म-सादर अब अप्रतिबंधित नहीं है।
10. व्यक्ति-केन्द्रित उपागम मानव स्वभाव का सकारात्मक एवं आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। किन्तु परिवेश, विषेशतः अन्य लोगों के साथ सम्बन्धों से जुड़े कारकों के फलस्वरूप आत्म-सम्प्रत्यय सकारात्मक या नकारात्मक हो जाता है तथा इस प्रकार व्यक्ति प्रकार्यात्मक रूप में स्वस्थ या अस्वस्थ हो जाता है।
11. लोगों में पूर्ण प्रकार्यात्मकता, सृजन, सामाजिकता एवं संगतिपूर्णता की सामर्थ्य होना स्वीकार किया जाता हैं। अर्थात् व्यक्ति किसी विकृति या उपेक्षा के बिना अपने समस्त अनुभवों को स्वीकार कर सकता है।
12. यह उपागम यह विश्वास करता है कि यदि परामर्शी और परामर्शदाता के मध्य शक्ति और नियंत्रण की भागीदारी का सम्बन्ध स्थापित हो तो व्यक्ति आत्म-निर्देषन की क्षमता अर्जित कर सकता है।
13. लोगों के अन्दर व्यक्तिगत परिवर्तन के लिये संसाधन पाया जाता है। परामर्शन कार्य के लिये आवश्यक सम्बन्धों को विकसित करके ऐसे परिवेश का सृजन किया जा सकता है जिसमें व्यक्ति का संसाधन लक्ष्यों के लिये होने लगता है।

10.5.2 समस्याओं की उत्पत्ति एवं अनुरक्षण-

व्यक्तियों के अन्दर प्राणी-आत्मीकरण और स्व-आत्मीकरण की प्रवृत्तियॉ पायी जाती है। इन दोनों प्रवृत्तियों के मध्य एकता सम्भव है अर्थात् यह कि दोनों प्रवृत्तियों की दिशा और उद्देश्य एक जैसे हो सकते हैं। व्यक्ति के सम्पूर्ण अनुभव तथा अनुभवों का वह भाग जो स्व में अभिव्यक्त होता है, के मध्य संगति द्वारा मानसिक स्वास्थ्य का विकास होता है किन्तु जब दोनों प्रवृत्तियॉ प्रतिद्वन्द्वात्मक रूप में कार्य करती है अर्थात् प्राणी के आत्मीकरण की प्रवृत्ति दूसरी दिशा में कार्य करती है तब दोनों प्रवृत्तियों के मध्य अन्तराल के अनुपात में असंगति व्याप्त हो जाती है।

जीवन के आरम्भिक वर्षों में व्यक्ति के अन्दर सभी अनुभव किसी भी प्रकार की उपेक्षा अथवा विकार के बिना स्वीकार किये जाते है अतः वह पूर्ण संगति की अवस्था में होता है। परिवेश में अन्य लोगों से प्राप्त होने वाली अस्वीकृति, तिरस्कार, उपेक्षा एवं नकारात्मक मूल्यांकन के कारण प्रार्थी के अनुभव और स्व के अनुभव के मध्य दूरी बढ़ने लगती है। यह वह मूल्यांकन विशुद्ध रूप में सकारात्मक होता, बालक/व्यक्ति का सम्मान अप्रतिबंधित होता तो प्राणी और स्व के मध्य दूरी या असंगति की उत्पत्ति नहीं होती। रॉजर्स के शब्दों मेंः- ''यदि कोई व्यक्ति मात्र अप्रतिबंधित सकारात्मक सम्मान का अनुभव करे तब महत्व की शर्तों का

विकास नहीं होगा, आत्म-सम्मान प्रतिबंधित होगा, सकारात्मक सम्मान और आत्म सम्मान की प्राणी के मूल्यांकन से भिन्नता नहीं होगी तथा व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप में समायोजित होगा एवं पूर्णरूपेण कार्य करेगा।'' किन्तु माता-पिता और अन्य महत्वपूर्ण लोग बच्चों का मूल्यांकन कभी सकारात्मक और कभी नकारात्मक रूप में करते हैं। इसके फलस्वरूप बच्चे को यह समझ में आने लगता कि उसके कुछ कार्य उपयुक्त/महत्वपूर्ण होते हैं। जिन्हे अनुमोदन प्राप्त होता है तथा अन्य कार्य महत्वहीन होते हैं, अनुपयुक्त होते है अतः उन व्यवहारों को अस्वीकार किया जाता है। महत्वहीन एवं अनुपयुक्त व्यवहारो से सम्बन्धित अनुभवों की स्व द्वारा उपेक्षा की जाती है। उसे ग्रहण नहीं किया जाता है अथवा उसे तोड़-मरोड़कर विकृत रूप में स्व के अनुभव में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार आत्म-सम्प्रत्यय प्राणी के वास्तविक अनुभवों के अनुरूप नहीं रह जाता है।

उदाहरण के लिए, एक बच्चे को माता-पिता से अच्छा बच्चा रूपी मूल्यांकन प्राप्त हो रहा होता है , वह भोला है, सुन्दर है, प्यारा हैं वह अपने पाठ का अधिगम कर लेता है। उसे पढ़ना अच्छा लगता हैं वह पढ़ता है तो माता-पिता उसको सम्मान देते हैं, प्यार देते है, उसे पुरस्कार देते हैं उसे क्रिकेट खेलना और कार्टून शो देखना पसंद है किन्तु उसके माता-पिता को यह पसन्द नहीं है। उसके इस कार्य को नापसन्द किये जाने के अतिरिक्त उसे ऐसा करने पर तिरस्कृत किया जाता है। दंडित किया जाता है। अब चूंकि इस प्रकार के अनुभव उसके अच्छे-बच्चे रूपी आत्म-सम्प्रत्यय के अनुरूप नहीं है, नये अनुभवों के कारण गन्दे बच्चे रूपी सम्प्रत्यय के विकास की दशा उत्पन्न हो जाती हैं अतः बच्चे का स्व इन नवीन अनुभवों की उपेक्षा करता है या उसे विकृत करता है। यह विकृति यह रूप में हो सकती है।। कि उसके स्व को यह अनुभव हो कि उसे क्रिकेट खेलना पसन्द नहीं है या कार्टून शो मुझे अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार व्यक्ति के स्व को प्राप्त अनुभव निष्ठापूर्वक प्राणी को प्राप्त हुए अनुभव से अलग हो जाता है, दोनों में विसंगति आ जाती है। यह मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन के लिये उपयुक्त नहीं होता हैं।

10.5.3 परामर्शदाता की दक्षताए एवं परामर्शन नीतियॉ-

व्यक्ति-केन्द्रित उपागम में क्लायंट के वास्तविक अनुभवों और स्व के अनुभवों के मध्य व्याप्त विसंगति को दूर करके संगति की अवस्था की पुनर्प्राप्ति हेतु उपयुक्त परामर्शन सम्बन्धों का विकास करके परामर्शन परिवेश का सृजन किया जाता है। परामर्शन परिवेश में क्लायंट को अप्रतिबंधित या अनिर्बाधित सकारात्मक सम्मान/आदर का अनुभव होता हैं। परामर्शदाता परामर्शी को जैसा है वैसा के आधार पर किसी पूर्व शर्त के बिना, परामर्शी के आत्मगत, आन्तरिक संदर्भ संरचना के आधार पर समझता है। अर्थात परामर्शदाता की परामर्शी के बारे में समझ परानुभूति होती है तथा क्लायंट में भी परामर्शदाता के अन्दर उनके लिये व्याप्त सम्मान और समझ की परानुभूति हो रही होती है तथा क्लायंट में भी परामर्शदाता के अन्दर उसके लिये व्याप्त सम्मान और समझ की परानुभूति हो रही होती हैं इस अवस्था का स्वाभाविक परिणाम क्लायंट में संगति की पुनर्स्थापना के रुप में देखा जा सकता है।

स्पष्ट है कि व्यक्ति केन्द्रित उपागम में परामर्शदाता के पास परामर्शन परिवेश के सुजन के लिये आवश्यक दक्षता का होना वांछित है किन्तु अन्य किसी प्रविधि की आवश्यकता नहीं होती है। व्यक्ति केन्द्रित

उपागम का अनुसरण करने वाले कुछ परामर्शदाताओं का यह मत हे कि इस उपागम की सीमा मे रहते हुए भी दूसरी पद्धतियों मे प्रयुक्त अन्य प्रविधियॉ उपयोग में लायी जा सकती है किन्तु अधिकतर परामर्शदाता की दृष्टि में ऐसी प्रविधि के न्यूनतम उपयोग की नीति अधिक उपयुक्त मानी जाती है।

10.5.4 परामर्शन परिवेश का क्लायंट पर प्रभाव-

परामर्शन परिवेश की मर्म दशाओं के अस्तित्व के द्वारा एक ऐसी प्रक्रिया का विकास होता है जिमसें निम्नांकित विशेषताए पायी जाती है-

- क्लायंट उत्तरोत्तर अधिक स्वतंत्रता एवं स्व-संदर्भो की वृद्धि के साथ अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है।
- क्लायंट के स्व के अनुभव में प्राणी के वास्तविक अनुभवों का अधिक सच्चाई, निष्ठा एवं शुद्धता के साथ प्रतीकीकरण होता है।
- परामर्शदाता द्वारा दिये गये अप्रतिबंधित सम्मान के कारण क्लायंट को अपनी पुरानी अनुभूतियों और बोध में व्याप्त उपेक्षाओं, निषेधों एवं विकृतियों को पहचान होती है।
- आत्म-सम्प्रत्यय अब अधिक संगठित होता है, जिसमें उन अनुभवों का भी प्रतीकीकरण सम्मिलित रहता है जिसकी अतीत मे या तो उपेक्षा कर दी गयी थी अथवा व्यक्ति के बोध मे उनका रूप विकृत बना दिया गया था।
- क्लायंट में उत्तरोत्तर परामर्शदाता के बारे में परानुभूति का विकास होता है, क्लायंट मे लिये परामर्शदाता द्वारा दिये जा रहे सम्मान और समझ का क्लायंट को बोध होता है।
- क्लायंट की अपने अनुभवो के प्रति प्रतिक्रिया अब सम्मान/अर्थ की दशाओं के आधार पर कम और प्राणीगत मूल्यांकन प्रक्रिया के आधार पर अधिक होती है।

उपर्युक्त परिवर्तनों के परिणामस्वरूप क्लायंट के व्यवहार एवं मनोदशा में निम्नांकित प्रतिफल देखे जाते हैः-

- परामर्शी में संगति की अधिकता और रक्षात्मक उपागम की कमी पायी जाती है।, समस्या समाधान मे परामर्शी अधिक यथार्थवादी, वस्तुनिष्ट और प्रभावशाली होता हैं।
- परामर्शी को अन्य व्यक्तियों द्वारा अधिकता के साथ स्वीकार किया जाता है।
- परामर्शी के समायोजन में वृद्धि पायी जाती है, असुरक्षा की प्रवृत्ति में कमी आती है।
- उसका व्यवहार अधिक सामाजिक होता है।
- उसका व्यवहार अधिक सृजनात्मक होता है।
- परामर्शी यह स्वीकार करता है कि अपने व्यवहार में व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिये वह स्वयं जिम्मेदार है।

10.6 परामर्श प्रक्रिया के वृतान्त हेतु पद/उपागम-

मिस ब्रैगडन ने निम्नलिखित परिस्थितियों की चर्चा की है जिनमें परामर्श चाहिएः-

- जब विद्यार्थी ने केवल विश्वसनीय सूचनाए ही चाहे, बल्कि वह उन सूचनाओं का रुचिकर व्याख्या चाहता है जिससे उसकी व्यक्तिगत कठिनाइयों का हल निकल सके।
- जब विद्यार्थी को बुद्धिमान सुनने वाले या श्रोता की आवश्यकता होती है जिसका अनुभव उससे अधिक हो, जिसको वह अपनी कठिनाइयों का ध्यान कर सकें। जिससे वह अपनी कार्य योजना के बारे में कुछ सुझाव कर सके।
- जब परामर्शदाता की जो पहुच उन सुविधाओं तक हो जो विद्यार्थी की समस्याओं को सुलझाने में सहायक होती है लेकिन विद्यार्थी की पहुच वहॉ तक न हो।
- जब विद्यार्थी को कोई समस्या हो लेकिन वह इस समस्या से अनभिज्ञ हो और उसके उत्तम विकास के लिये उस समस्या के प्रति उसे सचेत करना हो।
- जब विद्यार्थी समस्या तथा उससे उत्पन्न कठिनाई से परिचित हो लेकिन वह इसे परिभाषित और समझने में कठिनाई अनुभव कर रहा हो।
- जब विद्यार्थी समस्या की उपस्थिति और उसकी प्रकृति से परिचित होता है परन्तु अस्थाई तनाव और विकर्षण के कारण वह समस्या का सामना करने के अयोग्य होता है।
- जब विद्यार्थी उस प्रमुख कुसमायोजन के समस्या या किसी दोष से ग्रस्त हो जो अस्थाई हो और जो किसी विशेषज्ञ के द्वारा अधिक लम्बे समय तक के लिये ध्यानपूर्वक निदान की मांग करता हो।

10.6.1 परामर्श-प्रक्रिया के पद

परामर्श-प्रक्रिया के विलियमसन और डरले ने निम्नलिखित 6 पदों की चर्चा की है-

- विश्लेषण - यह वह प्रक्रिया है जिससे तथ्यों का संकलन किया जाता है ताकि विद्यार्थी का अध्ययन किया जा सके।
- संश्लेषण - इस पद में एकत्रित की गई जानकारी को संगठित किया जाता है।
- निदान - इस पद में समस्या के कारणों के बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।
- पूर्व अनुमान- निदान के उपयोग के बारे मे कथन देने को पूर्व-अनुमान कहते हैं।
- परामर्श- परामर्शदाता और प्रार्थी द्वारा समायोजन के लिये उठाये गये कदमों को इस पद में रखा गया है।
- अनुवर्तन- परामर्शदाता की सेवाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने या नई समस्याओं के हल में विद्यार्थी की सहायता करने के प्रयास इस पद में शामिल रहते हैं।

रोजर्स ने विभिन्न पदों का निम्नलिखित पदों में संक्षिप्तीकरण किया है-

- व्यक्ति सहायता के लिये आता है तथा उसने एक अनुमानित कदम उठा लिया है।
- सहायता-परिस्थिति को प्रायः परिभाषित किया जाता है। प्रार्थी को इस ख्याल से परिचित कराया जाता है कि परामर्शदाता के पास उत्तर नहीं होते। प्रार्थी को स्वयं ही अपने उत्तर ढूंढने होते हैं। परामर्श का समय अपना है यदि वह चाहे।
- परामर्शदाता स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है। यह स्वतंत्र अभिव्यक्ति समस्या के संदर्भ में होती है। वह चिन्ता तथा अपराधी होने की भावना को रोकता है। परामर्शदाता प्रार्थी को यह मनाने का प्रयास नहीं करता कि वह गलती पर है या वह सही है। परामर्शदाता प्रार्थी को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा वह है। वह केवल स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।
- परामर्शदाता नकारात्मक भावानाओं को स्वीकार करता है, उन्हें पहचानता और स्पष्ट करता है। परामर्शदाता को प्रार्थी की भावनाओं का उत्तर देना चाहिए।
- जब व्यक्ति की नकारात्मक भावनाओं को पहचानता है और उन्हें स्वीकार करता है।
- परामर्शदाता सकारात्मक भावनाओं को पहचानता है और उन्हें स्वीकार करता है।
- इससे स्वयं का बोध और अन्तदृष्टि होती है।
- संभावित निर्णयों और संभावित कार्य-दिशा का स्पष्टीकरण ।
- व्यक्ति द्वारा महत्वपूर्ण सकारात्मक क्रियाओं का प्रारम्भ।
- आगे फिर अन्तदृष्टि तथा अधिक उपयुक्त बोध का विकास।
- विकसित स्वतंत्रता की भावना तथा सहायता की घटती हुई आवश्यकता।

परामर्श द्वारा प्रयुक्त प्रविधियॉ विद्यार्थी की विशेषता और व्यक्तित्व के अनुसार होनी चाहिए। विलियमसन ने परामर्श-प्रविधियों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया हैः-

i. **मधुर सम्बन्ध स्थापित करना-** जब पहली बार प्रार्थी परामर्शदाता के पास आता है तो परामर्शदाता को सबसे पहला कार्य होता है कि उसके साथ स्वागतपूर्ण पेश आना चाहिए। उसे आरामदेह स्थिति मे लाकर प्रार्थी को विश्वास में ले लेना चाहिए। मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का मुख्य आधार होता है-परामर्शदाता की योग्यता की ख्याति, व्यक्तिगतता का सम्मान तथा साक्षात्कार से पहले विश्वास और विद्यार्थी के साथ सम्बन्धों को विकसित करना है।
ii. **स्वयं-बोध उत्पन्न करना-** विद्यार्थी या प्रार्थी को स्वयं की योग्यताओं और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट ज्ञान एवं समझ होनी चाहिए। इन सबकी समझ प्रार्थी को इन योग्यताओं और उत्तरदायित्वों के प्रयोग से पहले ही हो जानी चाहिए। इसके लिये परामर्शदाता को परीक्षण-संचालन और परीक्षण अंको की व्याख्या का अनुभव होना आवश्यक है। परीक्षण-अंक निदान और पूर्वानुमान का परामर्श प्रक्रिया में ठोस-आधार प्रदान करते है ।

iii. **क्रिया के लिये कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव-** परामर्शदाता प्रार्थी के लक्ष्यों, उसकी अभिवृत्तियो या दृष्टिकोणों आदि से प्रारम्भ करता है तथा अनुकूल और प्रतिकूल आंकड़ों या तथ्यों की ओर संकेत करता है। वह साक्षियों या प्रमाणों को तोलता है और वह इस तथ्य को समझता है कि वह विद्यार्थी को कोई विशेष सुझाव क्यों दे रहा है। विलियमसन का मानना है कि परामर्शदाता को अपने दृष्टिकोण का कथन निश्चितता से करना चाहिए।

परामर्शदाता प्रत्यक्ष सुझाव या सलाह देने से नहीं डरता क्योंकि विद्यार्थी आंकड़ों का उपयोग नहीं समझ सकता है।

- **प्रत्यक्ष सलाह-** इसमें परामर्शदाता निर्भय होकर अपनी राय बता देता है। इस प्रकार की पद्धति बड़े कठोर मस्तिष्क वाले लोगों के लिये उपयुक्त है जो किसी भी क्रिया या गतिविधि का विरोध करते हैं तथा फेल होने से भी डरते।
- **विधि-** यह विधि तब लाभकारी होती है जब आंकड़े स्पष्ट रूप से कोई निश्चित विकल्प की ओर इंगित करते हैं। परामर्शदाता प्रमाणों का केवल विश्लेषण करता है और विकल्पित क्रियाओं के परिणामों को देखता है।
- **व्याख्यात्मक विधि-** व्याख्यात्मक विधि परामर्श में सबसे अधिक वांछित विधि है। इसमें परामर्शदाता ध्यानपूर्वक लेकिन धीरे-धीरे निदानात्मक आंकड़ों को समझता है और उन संभावित स्थितियों की ओर संकेत करता है जिनमें विद्यार्थी की शक्तियों या क्षमताओं का प्रयोग किया जा सकता हो। इसमें आंकड़ों के उपयोग को सविस्तार और ध्यानपूर्वक तर्क सहित समझाया जाता है। इसके पश्चात प्रार्थी के निर्णय या रुचि को जानकर साक्षात्कार इस निर्णय को लाकर करने के लिये प्रत्यक्ष सहायता प्रदान कर सकता है। इस सहायता में उपचारात्मक कार्य और शैक्षिक या शिक्षण नियोजन का कार्य सम्मिलित होते हैं।
- **अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग-** कोई भी परामर्शदाता सभी प्रकार की विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। उसे अपनी सीमाओं को पहचानना चाहिए तथा उसे विशिष्टीकृत सहायता के स्रोतों से सहायता प्राप्त करने की सलाह देनी चाहिए।

इन उपरोक्त प्रविधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य परामर्श प्रविधियॉ भी हैं जो निम्नलिखित हैः-

i. **मौन धारण**- कभी-कभी कई परिस्थितियों में मौन रहकर किसी की बात को सुनना बोलने से अधिक प्रभावशाली होता है। जब प्रार्थी अपनी समस्या का वर्णन कर रहा होता है तब परामर्शदाता मौन धारण कर लेता है। इससे प्रार्थी को यह विश्वास हो जाता है कि परामर्शदाता प्रार्थी की बात को बड़े गौर से सुन रहा है तथा उस पर गंभीरता से विचार कर रहा है।

ii. **स्वीकृति-** परामर्शदाता प्रार्थी की बात को अस्थाई स्वीकृति दे। कई बार परामर्शदाता कुछ शब्द इस प्रकार से कह देता है कि उनसे यह मालूम पड़ जाता है कि प्रार्थी जो कुछ कह रहा है उसे वह स्पष्टतः समझ रहा है। परन्तु इन शब्दों को परामर्शदाता इस तरह कहता है कि जिससे प्रार्थी के बोलने के

धारा प्रवाह में कोई रूकावट नहीं आती। उदाहरणार्थ- ठीक है, बहुत अच्छा हूँ इत्यादि। कई अवसरों पर परामर्शदाता अपनी स्वीकृति प्रदान करने के लिये कई शब्द नहीं कहता, केवल स्वीकारात्मक ढंग से सिर ही हिला देता है।

iii. **स्पष्टीकरण -** कई अवसरों परामर्शदाता को चाहिए कि वह प्रार्थी की बातों का या उस दिये गये वर्णन का स्पष्टीकरण करे। परामर्शदाता का यह कर्तव्य है कि वह प्रार्थी को इस बात से परिचित करा दे कि वह उसे समझ रहा है। तथा स्वीकार करता है। परन्तु कभी-कभी परामर्शदाता को यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के वर्णन का स्पष्टीकरण कर दे किन्तु स्पष्टीकरण करते समय प्रार्थी को किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती का आभास न हो।

iv. **पुनःकथन -** स्वीकृति और पुनरावृत्ति दोनों ही प्रार्थी को यह बोध होता है कि परामर्शदाता उनकी बात को समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। पुनरावृत्ति के द्वारा परामर्शदाता उसी बात को दोहराता है कि जिसे प्रार्थी ने वर्णित किया है परन्तु परामर्शदाता पुनःकथन के समय किसी प्रकार का संशोधन या स्पष्टीकरण प्रार्थी के मापन में नही करता है।

v. **प्रश्न पूछना-** प्रार्थी को अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की प्रेरणा देने के लिये परामर्शदाता को कुछ प्रश्न पूछने चाहिए। ये प्रश्न प्रार्थी के वक्तव्य को अंश समाप्त होने के पश्चात ही पूछे जाने चाहिए।

vi. **हास्य रस-** परामर्श के दौरान प्रार्थी के तनाव दूर करने के लिये तथा वार्तालाप को रुचिकर बनाने के लिये हास्य-रस का प्रयोग करना भी एक आवश्यकता सी बन जाता है।

vii. **सारांश स्पष्टीकरण** - प्रार्थी के वक्तव्य का कुछ भाग लाभकारी नहीं हो सकता। इसके कारण समस्या स्वयं ही प्रार्थी को अस्पष्ट दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में परामर्शदाता के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के भाषण को संक्षिप्त करें तथा उसका संगठन करें जिससे विद्यार्थी समस्या को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकें। परामर्शदाता का प्रयास यही रहना चाहिए कि वह कभी अपनी ओर से विचार न जोड़े।

viii. **विश्लेषण -** प्रार्थी की समस्या के लिये परामर्शदाता समाधान प्रस्तुत करने की पहल कर सकता है। लेकिन परामर्शदाता प्रार्थी से उस हल पर अमल नहीं करवा सकता। परामर्शदाता प्रार्थी पर ही छोड़ देता है। कि वह उस समाधान को स्वीकार करे या अस्वीकार करे या उसमें कुछ संशोधन करें इस सम्बन्ध में प्रार्थी पर किसी प्रकार का दवाब नहीं डाला जाता।

ix. **व्याख्या या विवेचनाः-** परामर्शदाता को प्रार्थी के वक्तव्य की ही विवेचना या व्याख्या करने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ना चाहिए। परामर्शदाता व्याख्या द्वारा प्रार्थी के वक्तव्य का परिणाम निकालता है। इन निष्कर्षों को निकालने में अकेला प्रार्थी असमर्थ रहता है। यहॉ यह बात ध्यान देने योग्य है कि परामर्शदाता द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अन्य परीक्षणों द्वारा निकाले निष्कर्षों से मेल खा सकते हैं और नहीं भी।

x. **परित्याग-** कई बार प्रार्थी जो कुछ सोचता या कहता है वह त्रुटिपूर्ण होता है। इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण विचार धाराओं को त्यागना चाहिए। इसका परित्याग करने के लिये परामर्शदाता को बड़ी सावधानी

से काम लेना चाहिए ताकि प्रार्थी विद्रोही प्रवृत्ति का न हो जाये और इस परित्याग का प्रार्थी उल्टा अर्थ न निकाल ले।

xi. **आश्वासन -** परामर्श की सबसे महत्वपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष से जुड़ी प्रविधि के रूप में आष्वासन प्रदान करने से विद्यार्थी की समस्या हल होने की आशा बंध जाती है। आश्वासन द्वारा परामर्शदाता प्रार्थी के कथनों को स्वीकार भी करता है और स्वीकृति के साथ-साथ अनुमोदित या समर्थन प्रदान करता है।आश्वासन के समान प्रभाव दिखाई देत हैं। आश्वासन को स्वीकृति से अधिक विस्तृत या व्यापक माना जाता है। अतः आश्वासन भी सम्मिलित होती है।

10.7 सारांश

व्यक्ति की समस्याओं और आवश्यकताओं के रूप अनेक होते है जैसे- लक्ष्य का नियंत्रण, लक्ष्य का चयन, लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामर्थ्य का विकास और बाधाओं का निराकरण। व्यक्ति को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये परामर्शदाता उनके संज्ञान, अनुभूति/संवेग, व्यवहार को प्रभावित करता है तथा इस हेतु अनेक तकनीकों को है। आरोन बेक् 1921-ने मनोविश्लेषणात्मक उपागम से असंतुष्ट होकर संज्ञानात्मक उपागम विकसित किया। बेक के विचारों पर तार्किक संवेगात्मक उपागम के प्रणेता अल्बर्ट एलिस की भांति ही ग्रीक, रोमन और पूर्वी दार्शनिकों के विचारों का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। दर्शन के इस क्षेत्र में यह सोच प्रभावशाली पायी गयी है कि हम अपने विश्व और स्वयं के बारे में जैसा चिन्तन करते हैं उसका हमारे संवेग और व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है गौतम बुद्ध ने कहा-’’हम जैसा सोचते हैं वैसे ही होते हैं। हम जो कुछ है उसका उद्भव हमारे विचारों में होता है, अपने विचारों से हम संसार की रचना करते है।‘‘

बेक ने व्यक्ति की अनुभूतियों और व्यवहार को प्रभावित करने वाले तीन प्रकार के संज्ञान का वर्णन किया है-

1. सूचना संसाधन
2. स्वचालित विचार
3. स्कीमा

बेक के संज्ञानात्मक प्रतिरूप की अवधारणा यह है कि व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक या सांवेगिक समस्याओं का कारण परिस्थितियों और अनुभव में नहीं, व्यक्ति के विकृत चिन्तन की प्रणाली में निहित होता है।

जब अस्वस्थ या कुसमायोजनात्मक स्कीमा जो कि नकारात्मक, दृढ़ और निरपेक्ष होता है, विकसित और सक्रिय हो जाता है तब सूचना संसाधन में विकृति आ जाती है-सूचना को व्यक्ति के अन्तर्निहित विश्वासों के अनुरूप परिवर्तित कर लिया जाता है या प्रतिकूल सूचनाओं की उपेक्षा कर दी जाती है। बेक ने विकृत सूचना संसाधन के तीन रूपों का वर्णन किया हैः-

1. मनमाना निष्कर्ष

2. द्विभाजी चिन्तन

3. अधिकारीकरण एवं अल्पीकरण

व्यक्ति-केन्द्रित या रोगी-केन्द्रित उपचार का विकास मनोविश्लेषणात्मक एवं मनोगत्यात्मक उपागमों की भांति ही मनापचार सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर कार्ल रोजर्स द्वारा किया गया। यह उपागम यह विश्वास करता है कि यदि परामर्शी और परामर्शदाता के मध्य शक्ति और नियंत्रण की भागीदारी का सम्बन्ध स्थापित हो तो व्यक्ति आत्म-निर्देशन की क्षमता अर्जित कर सकता है।

स्पष्ट है कि व्यक्ति केन्द्रित उपागम में परामर्शदाता के पास परामर्शन परिवेश के सृजन के लिये आवश्यक दक्षता का होना वांछित है किन्तु अन्य किसी प्रविधि की आवश्यकता नहीं होती है। व्यक्ति केन्द्रित उपागम का अनुसरण करने वाले कुछ परामर्शदाताओं का यह मत है कि इस उपागम की सीमा मे रहते हुए भी दूसरी पद्धतियों मे प्रयुक्त अन्य प्रविधियॉ उपयोग में लायी जा सकती है किन्तु अधिकतर परामर्शदाता की दृष्टि में ऐसी प्रविधि के न्यूनतम उपयोग की नीति अधिक उपयुक्त मानी जाती है।

परामर्श के विभिन्न उपागमों के अपने भिन्न-भिन्न उद्देश्य है जो कि उनकी अपनी मानव स्वभाव की धारणा के विश्लेषण पर आधारित है फिर भी ये सभी उपागम परामर्श के क्षेत्र में सकारात्मक पारस्परिक संबंधों को आधार मानती है।

10.8 तकनीकी पदः-

रोपण	Attribution
मूलभूत अभिग्रह	Basic Assumption
अनुरक्षण	Maintenance
उत्पत्ति	Origin
परामर्शन नीतियॉ	counselling Strategies
विरत	Non-judgemental
परानुभूति	Empathic
वृतान्त	Narrative
विश्लेषण	Analysis
संष्लेशण	Synthesis
निदान	Diagnosis

अनुवर्तन	Follow Up
नियोजन	Planning
आष्वासन	Assurance

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न -

वस्तुनिष्ट प्रश्न

1. प्रतिरूप अधिगम संज्ञानात्मक व्यवहार उपचार की पद्धति में सम्मिलित किया जाता है।
   हॉ/नहीं
2. संज्ञानात्मक उपागम के विकास में बेक की भूमिका सर्वप्रमुख है।
   हॉ/नहीं
3. व्यक्ति-केन्द्रित उपागम निर्देशात्मक प्रविधि है।
   हॉ/नहीं
4. रोजर्स का व्यक्ति के सामर्थ्य के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण है।
   हॉ/नहीं

उत्तरः 1.नहीं 2.हॉ 3.नहीं 4.हॉ

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. सॉकरेटिक प्रश्न पृच्छा एक प्रविधि के रूप में किस उपागम में प्रयुक्त की जाती है।

क. गेस्टाल्ट उपागम ख. संज्ञानात्मक उपागम

ग. अस्तित्ववादी उपागम घ. मानवतावादी उपागम

2. परामर्शन में समूह कार्य की तकनीक होती है।

क. मनोनाटक ख. इनकाउन्टर ग्रुप

ग. टी-गुरप तकनीक घ. सभी

3. व्यक्ति में विश्व, भविष्य और स्वयं के बारे में नकारात्मक संज्ञान के कारण विषाद होता है। यह विचार किस मनोवैज्ञानिक का हैः

क. ऑरोन बेक ख. ड्रायरेन

ग. फ्रायड घ. रोजर्स

4. "जब व्यक्ति के स्व और अनुभव के मध्य असंगति का विकास हो जाता है तब व्यक्तित्व संरचना विघटित हो जाती है और परामर्शन परिवेश में अप्रतिबंधित सम्मान के अनुभव के माध्यम से संगति का विकास किया जा सकता है" यह किस उपागम से सम्बन्धित हैः

क. अस्तित्ववादी उपागम ख. गेस्टाल्ट उपागम

ग. व्यक्ति-केन्द्रित उपागम घ. संज्ञानात्मक-विष्लेशात्मक उपागम

उत्तरः 1ख 2.घ 3.क 7.ग

10.10 सन्दर्भ सूची

1. Anastasi (1959) Psychological testing Newyork: Macmillan co.
2. Beck, J.S. 1995, Coglitive Therapy : Basic and Beyond, N.Y. : Guilford.
3. Kochhar, S.K. (1984) Guidance and Counselling in Colleges and Universities New Delhi : Sterling Publisher Pvt. Ltd.
4. अमरनाथ राय, मधु अस्थाना, निर्देषन एवं परामर्शन, (संप्रत्यय क्षेत्र उपागम) मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी।
5. डॉ रामपाल सिंह, डॉ राधाबल्लभ उपाध्याय ''शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन'' विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. डॉ. एस0सी0ओबराय ''शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श'' इंटरनेशनल पब्लिकेशन हाऊस मेरठ।
7. डॉ सीताराम जायसवाल ''शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श'', अग्रवाल पब्लिकेशन।

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्शन के संज्ञानात्मक उपागम के विविध पक्षों का वर्णन प्रस्तुत कीजिए।
2. "हम जैसा सोचते है वैसे ही होते है" (बुद्ध)। इस कथन का परामर्शन एवं मनोचिकित्सा के संदर्भ में संज्ञानात्मक उपागम में सार्थकता की समीक्षा कीजिए।
3. व्यक्ति के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण रोजर्स के व्यक्ति-केन्द्रित उपागम का मूल आधार है। इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
4. परामर्शन प्रक्रिया में परामर्शन के मूल्यांकन के महत्व पर प्रकाश डालिए।

परामर्शदाता की भूमिका पर एक निबन्ध लिखो।

इकाई11- निर्देशित, अनिर्देशित एवं चयनात्मक परामर्श, बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार परामर्श (Directive] Non Directive and elective Counselling, Child Protection and child right Counselling)

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 निर्देशित परामर्श
11.3.1 निर्देशित परामर्श की अवधारणऍ
11.3.2 निर्देशित परामर्श के चरण
11.3.3 निर्देशित परामर्श की विशेषताऍ
11.3.4 निर्देशित परामर्श के लाभ
11.3.5 निर्देशित परामर्श की सीमायें
11.4 अनिर्देशित परामर्श
11.4.1 अनिर्देशित परामर्श की अवधारणायें
11.4.2 अनिर्देशित परामर्श के चरण
11.4.3 अनिर्देशित परामर्श की विशेषतायें
11.4.4 अनिर्देशित परामर्श के लाभ
11.4.5 अनिर्देशित परामर्श की सीमायें
11.5 समन्वित अथवा सारग्राही परामर्श
11.5.1 समन्वित परामर्श के चरण
11.5.2 समन्वित परामर्श की विशेषतायें
11.5.3 समन्वित परामर्श के लाभ
11.5.4 समन्वित परामर्श की सीमायें
11.6 बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार
11.6.1 असुरक्षित/अति संवेदनशील बाल का अर्थ
11.6.2.1.1 शोषित बालकों का परामर्श
11.6.4 असक्षम बालकों का परामर्श
11.6.5 औषधि व्यसन का परामर्श

11.6.6 सारांश
11.6.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
11.6.8 सन्दर्भ सूची
11.6.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना :–

मनुष्य एक सभ्य समाज का प्राणी है। वर्षो से मानव स्वभाव इस दिशा में कार्य करता रहा जिसमें व्यक्तियों की सहायता हो सके। बीसवीं शताब्दी के मध्य में कार्ल रोजर्स के व्यक्तित्व मनोचिकित्सा एवं परामर्श सम्बन्धी सिद्धान्त और तकनीकों के विकास के बाद इस क्षेत्र में नई क्रान्ति आदि। परामर्श सेवा व्यक्ति को अपनी विभिन्न समस्याओं का अपने स्तर पर समाधान करने हेतु समर्थ बनाती है। परामर्श व्यक्ति के आत्मबोध, आत्म निर्देशन और आत्म उन्नयन में सहायक होता है। परामर्श कार्य को प्रशिक्षित परामर्शदाता द्वारा पूर्ण किया जाता है। परामर्शदाता अनेक समस्याओं के समाधान हेतु अनेक प्रकार की उपचारात्मक प्रणाली अपनाता है परामर्श एक बहुआयामी प्रक्रिया होती है। जिसमें अनेक उपागमों एवं प्रविधियों को प्रयुक्त करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, समस्याओं का समाधान अथवा उपचार द्वारा व्यक्ति के जीवन को सहज, उद्देश्यपूर्ण एवं सन्तोषप्रदायी बनाने का प्रयास किया जाता है। निर्देशन एवं सहायता है जो किसी व्यक्ति को अपनी समस्याओं को सुलझाने योग्य बनाने के लिए दी जाती है, निर्देशन सहायता क्रमबद्ध, सुनियोजित तथा सुसंगठित होती है। प्रस्तुत इकाई में आप निर्देशित, अनिर्देशित एवं समन्वित परामर्श के बारे में अध्ययन करेंगे साथ ही बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार के बारे में एवं अतिसंवेदनशील (असुरक्षित) बालकों के परामर्श विधियों का अध्ययन करेंगें।

11.2 उद्देश्य :–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- निर्देशित परामर्श का अर्थ समझ पायेंगें
- निर्देशित परामर्श की अवधारणायें, चरण, विशेषताये एवं लाभ–हानि को समझ पायेंगें
- अनिर्देशित परामर्श की अवधारणायें, चरण, विशेषताये एवं लाभ–हानि को समझ पायेंगें
- सुग्राही परामर्श की चरण, विशेषतायें, लाभ व सीमायें जान सकेंगें
- बाल अधिकार एवं बाल संरक्षण का अर्थ समझ सकेंगें
- असुरक्षित/अति संवेदनशील बालकों के परामर्श को जान सकेंगे।

परामर्श के प्रकार (Types of Counselling)

परामर्श प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श के तीन प्रमुख प्रकार हैं, जो कि निम्नलिखित है।

1. निर्देशित या परामर्श –केन्द्रित (Directive or Counsellor Centred)
2. अनिर्देशीय या प्रार्थी–केन्द्रित या अनुमत परामर्श (Non-Directive or Client Centred or)
3. समन्वित परामर्श (Eclectic Counselling)

11.3 निर्देशित परामर्श–केन्द्रित परामर्श (Directive or Counsellor Centred)

इसमें परामर्शदाता का अधिक महत्व होता है, वह प्रार्थी की समस्याओं के समाधान के लिए उपाय बताता है और निर्देश देता है। निर्देशित परामर्श परामर्शदाता के इर्दगिर्द घूमता है। वह मैत्री और सहायता द्वारा मधुर–समबन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। इसमें परामर्शदाता बहुत सक्रीय होता है और वह अपने स्वयं के दृष्टिकोण और भावनाएँ स्वतंत्र रूप से प्रकट करता रहता है। वह प्रार्थी की अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करता है। इसमें परामर्शदाता प्रमापीकृत प्रश्नों की एक श्रृंखला (Series of Standardized Question) बनाता है तथा प्रत्येक का संक्षिप्त उत्तर तय करता है। वह प्रार्थी का अभिव्यक्ति और भावनाओं का व्यक्त करने की आज्ञा नहीं देता। एक विशेषज्ञ के तौर पर वह नेतृत्व करता है, मूल्यॉकन करता है और सुझाव या सलाह देता है।

इस इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिनिसोटा विश्वविद्यालय के ई0जी0 विलियमसन है। इसमें परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान (Diagnose) करता है तथा समस्या के बारे में बताता है।

11.3.1 निर्देशीय परामर्श की अवधारणाएँ

1. **सलाह देने की सक्षमता (Competency in giving advice)–** परामर्शदाता के पास प्रशिक्षण, अनुभव और सूचना होती है। वह समस्या को समझता है और उसके समाधान के बारे में सलाह देने के लिए सक्षम होता है।
2. **परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है (Counselling as an Intellectual Process)–** परामर्श प्राथमिक रूप से बौद्धिक प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के

व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्षों की बजाए बौद्धिक पक्षों पर बल देती है। यदि कोई कुसमायोजित होता है तो उसकी बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए उसे परामर्श दिया जाता है।

3. **परामर्श के उद्देश्य समस्या–समाधान स्थिति के रूप में** (Counselling objectives as Problem Solving Situation)–परामर्श के उद्देश्य समस्या–समाधान स्थिति के माध्यम से उपलब्ध किए जाते है।
4. **प्रार्थी की समस्या–समाधान में अक्षमता** (Client's Incapability of Solving the process)–इस परामर्श की यह अवधारणा भी है कि प्राथी में सदा ही समस्या के समाधान की क्षमता नहीं होती। इसलिये उसे परामर्श दाता की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार के परामर्श में प्रार्थी को परामर्शदाता के अधीन कार्य करना होता है न कि उसके साथ मिलकर। परामर्शदाता उसकी समस्या का समाधान करने हेतु स्वयं सक्रीय रहता है।

विलियमसन (Williamson)– के अनुसार, इस प्रकार के निर्देशन की मूलभूत धारणाएँ निम्नलिखित है।

1. इस परामर्श का लक्ष्य है– व्यक्ति के व्यक्तित्व का सभी दिशाओं में विकास में सहायता करना।
2. यह परामर्श व्यक्ति की विशेषता (Uniqueness)–को मानता है।
3. यह परामर्श वांछनीयता (Desirability)–पर आधारित है न कि परामर्श को व्यक्ति पर थोपना।
4. यह परामर्श केवल तभी दिया जाना चाहिए जब विद्यार्थी किसी समस्या का सामना करें और वह स्वयं इसका समाधान न कर पाए। परामर्श इस दृष्टि से उपचारात्मक होता है।
5. इस परामर्श में आपसी सम्बन्ध निष्पक्ष (Neutral)– होते है।
6. इस परामर्श प्रार्थी की समस्या के बारे में स्वयं की धारणा पर केन्द्रित होता है।
7. परामर्श प्रार्थी की मर्यादा का सम्मान करता है।
8. परामर्श एक बौधिक प्रक्रिया है
9. अपने प्रशिक्षण, अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर परामर्शदाता समस्या के समाधान के लिए अच्छी सलह कर सकता है।

इस प्रकार विलियमसन परामर्शदाता को अध्यापक के रूप में देखता है जिसका कर्त्तव्य है व्यक्ति को स्वयं की क्षमताएँ, दृष्टिकोण और रूचियों को

समझने योग्य बनाना, स्वयं की अभिप्रेरणा और जीवन–प्रविधियों को पहचानना आदि।

11.3.2 निर्देशीय परामर्श के चरण (Steps in Directive Counselling)

निर्देशीय परामर्श के निम्नलिखित चरण है :–

(i) **विश्लेषण (Analysis)** इसमें स्थिति या प्रार्थी के बारे में आकड़े और सूचनाएँ इकट्ठी की जाती है जिन्हें एक सत्य और विश्वसनीय आधार के रूप में परामर्श–प्रक्रिया में प्रयुक्त किया जा सकता है। विश्लेषण के लिए इन यंत्रों (Tools) का प्रयोग किया जाता है

(a)संचित अभिलेख (Cumulative Records)
(b) साक्षात्कार (Interview)
(c)समय विभाजन फार्म (Time distributions from)
(d) आत्मकथा (Autobiography)
(e)उपारव्यानक रिकॉर्ड (Anecdotal Record)
(f) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Tests)

इसके अलावा सभी ऑकड़ों के एकीकरण (Integration) के लिए केस–हिस्ट्री (Case History) विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें पारिवारिक इतिहास, मनोरंजनात्मक रूचियॉ और आदतें आदि शामिल होती है।

(ii) **संश्लेषण (Synthesis)** इसमें प्राप्त ऑकड़ों का इस प्रकार से संक्षिप्तीकरण और संगठन किया जाता है, जिससे विद्यार्थी की सम्पत्ति, उत्तरदायित्व, समायोजन और कुसमायोजनों का पता चलता है।

(iii) **निदान (Diagnosis)** इसके अन्तर्गत समस्या के रूप में जो ऑकडे दिये होते है उनकी व्यवस्था की जाती है। इसमें विद्यार्थियों की विशेषताओं, दुर्बलताओं और दायित्वों को भी शामिल किया जाता है।

निदान में निम्नलिखित तीन मुख्य पद होते है

(a)समस्या की पहचान करना (Indentifcation of problem)
(g) कारणों को ढूँढ़ना (Discovering the causes)
(h) पूर्वानुमान (Prognosis)

(iv) **पूर्वानुमान (Prognosis)** इस प्रकार किसी भी समस्या की पहचान करके, उसके कारणों को ढूँढकर फिर उसके पूर्वामान द्वारा उसे निर्देशित किया जाता है।

(v) **परामर्श या उपचार (Counselling or Treatment)** जब परामर्शदाता प्रार्थी की सहायता करता है, तो इसमें कई प्रश्नों के उत्तर दिए जाते है। इन प्रश्नों के उत्तर प्रार्थी स्वयं ही अपने लिए देता है, जैसे–मैं स्वयं में ये परिवर्तन किस प्रकार कर सकता हूॅ ? इसका दूसरा विकल्प क्या हो सकता है ? यदि ऐसा ही चलता रहा तो भविष्य में विकास कैसा होगा ? आदि। इसके पश्चात् उसे उपचार या परामर्श दिया जाता है।

(vi) **अनुवर्तन (Follow-up)** इसके अन्तर्गत परामर्श–प्रक्रिया की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि विद्यार्थी की परामर्श के माध्यम से क्या क्या उपलब्धियॉ रही। उसे कितना फायदा हुआ ?

11.3.3 निर्देशीय परामर्श की विशेषताएॅ (Characteristic of Directive Counselling)

1. प्रक्रिया में परामर्शदाता मुख्य्य भूमिका होती है।
2. वह प्रार्थी को सलाह प्रदान करता है।
3. इस प्रक्रिया में केन्द्र–बिन्दु व्यक्ति नहीं, बल्कि समस्या है।
4. प्रार्थी परामर्शदाता के अधीन कार्य करता है न कि साथ में।
5. इस परामर्श में, जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है वे प्रत्यक्ष, प्रभावी और व्याख्यात्मक होती है।
6. परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की बजाय बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल देता है।

11.3.4 निर्देशीय परामर्श के लाभ (Advantages of Directive Counselling)

1. यह विधि समय की दृष्टि से लाभकारी है। इसमें समय की बहुत बचत होती है।
2. इस प्रकार के परामर्श से समस्या पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा व्यक्ति पर कम।
3. परामर्शदाता प्रार्थी को प्रत्यक्ष रूप से देख सकता है।

4. परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष पर बल देता है।

5. इस प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रार्थी की सहायता के लिए शीघ्र ही उपस्थित हो जाता है, जिससे उसे प्रसन्नता होती है।

11.3.5 निर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Directive Counselling)

1. इस प्रक्रिया में प्रार्थी अधिक निर्भर (Dependent) होता है और वह अपनी समस्याओं का समाधान करने के भी अयोग्य होता है।
2. इसमें प्रार्थी परामर्शदाता से कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो पता, यह उत्तम और प्रभावी निर्देशन नहीं है।
3. इस प्रकार के निर्देशन में यह अभाव रहता है कि व्यक्ति स्वयं का कोई निर्णय नहीं ले सकता है।
4. परामर्शदाता प्रार्थी को भविष्य में गलतियों को करने से बचाने में असमर्थ रहता है।
5. विद्यार्थी के बारे में जानकारियों का अभाव रहता है जिससे गलत परामर्श सम्भव है।

11.4 अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी केन्द्रित या अनुमत परामर्श(Non-Directive of Client-Centred)

अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी–केन्द्रित परामर्श के मुख्य कार्ल आर0रोजर्स (Carl Rogers) है। इस सिद्धान्त का विकास बहुत वर्षो में हुआ है। इसलिए इस प्रकार के परामर्श में कई क्षेत्र शामिल होते रहे जैसे– व्यक्तित्व का विकास, सामूहिक नेतृत्व, शिक्षा एवं अधिगम (Learning), सृजनात्मकता (Creativity), पारस्परिक सम्बन्ध (Interpersonal Relations) इस सिद्धान्त के अनुसार स्वयं व्यक्ति में इतनी क्षमता होती है िकवह अपनी समस्याओं का समाधान खुद कर सकता है। परामर्शदाता का कार्य तो केवल इतना ही है कि ऐसा वातावरण प्रदान करें जिसमें प्रार्थी वृद्धि (Growth) के लिए स्वतन्त्र होता है ताकि वह जैसा चाहे वैसा ही व्यक्ति बन सके। इसमें व्यावसायिक और शैक्षिक समस्याओं के संवेगात्मक पक्षों को महत्व दिया जाता है।

प्रार्थी–केन्द्रित परामर्श प्रार्थी के इर्द–गिर्द घूमता है। इसमें प्रार्थी को वार्तालाप करने के लिए और स्वयं के दृष्टिकोणों, भावनाओं और विचारों को

अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसमें परामर्शदाता अधिकतर निष्क्रिय (Passive) ही रहता है। वह प्रार्थी के विचारों, भावों, भावनाओं और अभिव्यक्तियों में हस्तक्षेप नहीं डालता। परामर्शदाता प्रार्थी की बातचीत करने में पूरी सहायता करता है। शुरूआत में परामर्शदाता प्रार्थी के साथ मधुर संबंध बनाने का प्रयास करता है और धीरे–धीरे विश्वास की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के परामर्श में मुक्त अन्त प्रश्न (Open-End Questions) ही पूछे जाते है। ये प्रश्न पूर्ण रूप से रचित नहीं होते। परामर्शदाता का अधिकतर समबन्ध प्रार्थी द्वारा बताई गई संवेगात्मक विषय–वस्तु के साथ से होता है। इसमें प्रार्थी अपनी भावनाओं एवं विचारों को खुलकर प्रकट करता है।

जब प्रार्थी उत्तर दे रहा होता है। उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वह अपनी बात खुलकर बताये। जिस प्रकार के प्रश्न परामर्शदाता प्रार्थी से पूछता है उससे प्रार्थी यह महसूस करने लगता है कि परामर्शदाता वास्तव में ही व्यक्तिगत तौर पर प्रार्थी के विचारों का सम्मान करता है और साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी में रूचि ले रहा है। अनिर्देशीय परामर्श में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार दिया जाता है कि वह खुलकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करे। इस प्रकार के परामर्श में निदानात्मक यंत्रों (Diagnostic Instruments) का या तो बहुत ही कम प्रयोग होता है या फिर होता ही नहीं। इसमें प्रार्थी अपनी बुद्धि या समझ (Understanding) से कार्य कर सकता है। इसमें बौद्धिक पक्षों की अपेक्षा संवेगात्मक या भावात्मक पक्षों पर बल दिया जाता है।

11.4.1 अनिर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाऍ

(Basic Assumptions of Non-Directive Counselling)

1. व्यक्ति की मर्यादा में विश्वास (Belif in the dignity of man)–रोजर्स (Rogers) व्यक्ति की मान–मर्यादा में सशक्त विश्वास रखता है। वह व्यक्ति को स्वयं निर्णय लेने में सक्षम मानता है तथा ऐसे करने के उसके अधिकतर को स्वीकार करता है। व्यक्ति अपने निणर्यों में चाहें सही हो या गलत उनमें विश्वास करता है।
2. वास्तवीकरण की ओर प्रवृत्ति (Tendency oward actualization)–रोजर्स के प्रारम्भिक लेखों में इस बात पर बल दिया गया है कि व्यक्ति या प्रार्थी की वृद्धि और विकास की क्षमता व्यक्ति की वह आवश्यक विशेषता है जिस पर परामर्श और मनोचिकित्सा (Psychotherapy) विधियॉ निर्भर करती है। रोजर्स के अनुसार व्यक्ति की वंशानुक्रम प्रवृत्ति (Inherent Tendency) में वृद्धि

(Growth), समायोजन (Adjustment), सामाजीकरण (Socialization), स्वतंत्रता आदि दिशाएँ सम्मिलित है।

3. व्यक्ति विश्वास योग्य है (Man is Trustworthy)– रोजर्स व्यक्ति को बुनियादी तौर पर अच्छा और विश्वास के योग्य मानता है। कभी–कभी व्यक्ति बहुत बार अविश्वसनीय ढंग से भी व्यवहार करता है। व्यक्ति कुछ शक्तियों (Urges) के साथ पैदा होता है जिन पर नियंत्रण करना आवश्यक है यदि स्वस्थ व्यक्तित्व–विकास होने देना है।
4. रोजर्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि से विवेकशील होता है तथा सही अथवा गलत का निर्णय ले सकता है
5. जीवन लक्ष्य में स्वतंत्रताः– प्रार्थी अपने जीवन के उद्देश्य को निर्धारित करने में स्वतंत्र है, चाहें परामर्शदाता की, राय कुछ भी हो
6. अधिकतम सन्तोष : प्रार्थी अपने उद्देश्य को जब स्वयं चुनता है तो उसे अधिकतम संतोष की प्राप्ति होती है।
7. स्वतन्त्र निर्णय क्षमता का विकास :– परामर्श प्रक्रियाा के थोडे समय बाद प्रार्थी स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता विकसित कर लेता है।

जीवन के लक्ष्यों का चयन

1. वह अपने जीवन के लक्ष्यों का चयन स्वयं करे।
2. प्रार्थी को यदि अवसर दिया जाता है तो वह उन लक्ष्यों का चयन करेगा जिससे उसे महान सम्भावित प्रसन्नता प्राप्ति हो।
3. परामर्श–परिस्थिति में उपयुक्त संक्षिप्त समय में इस बिन्दु (Point) पर पहुॅच जाना चाहिए जहॉ से प्रार्थी स्वतंत्र रूप से कार्य करने के योग्य हो सके।
4. किसी व्यक्ति को उपयुक्त ढंग से समायोजित होने में संवेगात्मक गड़बड़ी (Emotional Disturbance) ही प्रारम्भिक रूप से रोकती है।

11.4.2 अनिर्देशीय परामर्श के चरण (Steps in Non-Directive Counselling)

कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) ने अनिर्देशीय परामर्श के निम्नलिखित चरण (Steps) बताए है।

1. समस्यात्मक परिस्थिति को परिभाषित करना (Defining the problematic situation)–सर्वप्रथम परामर्शदाता को समस्यात्मक परिस्थिति को परिभाषित करना होता है।

2. भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति (Free Expression of feeling)– इसके पश्चात् प्रार्थी को इस बात के प्रति जागरूक किया जाता है कि प्रार्थी अपनी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर सकता है तथा परामर्शदाता इस बात की स्वीकृति देता है।
3. सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं का वर्गीकरण (Classification of Positive & Negative Feeling)–जब प्रार्थी अपनी भावनाओं को व्यक्त कर देता है उसके बाद उसके नकारात्मक और सकारात्मक भवनाओं की पहचान करनी है और उनका वर्गीकरण होता है।
4. धीरे–धीरे प्रार्थी में सूझ बूझ या अन्तर्दृष्टि का विकास होने लगता है और इसके बाद परामर्शदाता उसकी नई भावनाओं के बाने में चिन्हत करता है।
5. परामर्श स्थिति समाप्त करना (Termination of Counselling Situation)–इन उपरोक्त चरणों के पश्चात् परामर्शदाता उस स्थिति या बिन्दु (Point) की तलाश में रहता है जहॉ से परामर्श स्थिति को समाप्त किया जा सके। इसके अनुसार प्रार्थी या परामर्शदाता इस समाप्ति का सुझाव दे सकते है। जब दोनों को यह लगने लगे कि परामर्श के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो रहें है।

11.4.3 अनिर्देशीय परामर्श की विशेषतायें

1. यह प्रार्थी केन्द्रित परामर्श (Client Centered Counselling) है।
2. यह इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि व्यक्ति में इतनी क्षमता और शक्ति होती है जिससे कि उसकी वृद्धि और विकास हो सके ताकि वह व्यक्ति वास्तविकता में परिस्थितियों का सामना कर सके।
3. इस परामर्श में परामर्शदाता सबसे अधिक निष्क्रिय होता है।
4. व्यक्ति जैसा है उसे वैसा ही स्वीकार किया जाता है और वह अपने किसी भी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में स्वतंत्र होता है।
5. इसके द्वारा मनोवैज्ञानिक समायोजन में सुधार होता है।
6. इसके प्रयोग से मनोवैज्ञानिक तनाव कम होते है।
7. इस प्रकार के परामर्श से सुरक्षात्मकता में कमी आती है।
8. प्रार्थी का व्यवहार संवेगात्मक रूप से अधिक परिपक्व माना जाता है।
9. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श से सम्बन्धित शोध के द्वारा ये पता चला है कि प्राथमिक स्कूल के विद्वार्थियों को यदि इस तरह का परामर्श दिया जाये तो उनमें पठन सुधार देखने को मिलता है।
10. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श में परामर्शदाता का लक्ष्य होता है कि वह प्रार्थी के स्वयं के संगठन और कार्यशीलता में परिवर्तन लायें

11. इस परामर्श की विचारधारा निर्देशीय परामर्श (Directive Counselling) के बिल्कुल उल्टी है।
12. इस परामर्श में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रार्थी या व्यक्ति पर ही रहता है।

11.4.4 अनिर्देशीय परामर्श के लाभ (Advantages of Non-Directive Counsellign)

1. इस परामर्श से प्रार्थी में समस्या–समाधान की योग्यता उत्पन्न होना निश्चित है चाहें यह प्रक्रिया बहुत धीमी हो।
2. प्रार्थी–केन्द्रित विचारधारा होने के कारण अन्य अनावश्यक गतिविधियों और परीक्षणों अदि से बचाव हो जाता है।
3. इसमें समस्या को प्रार्थी के अचेतनमन के स्तर से चेतनमन के स्तर पर लाते है। जिससे वह तनाव मुक्त होता है।
4. इस प्रकार का परामर्श बहुत लम्बी अवधि तक के लिए अपने प्रभाव छोड़ता है।

11.4.5 अनिर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Non-Directive Counsellign)

1. इसमें प्रार्थी को अपने वर्तमान दृष्टिकोणों की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति की आज्ञा होती है, लेकिन इसमें यह बताने का प्रयास नहीं किया जाता है कि ये वर्तमान दृष्टिकोण क्यों होते है।इसमें भूतकाल के बारे में कोई खोज नहीं ,कोई सुझाव नहीं है।
2. परामर्शदाता का लचीलेपन की आज्ञा का अभाव भी इस परामर्श की एक कमी है।
3. इसमें बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि उद्दीपक स्थिति (Stimulus Situation) और वातावरण की प्रकृति व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करती है।
4. प्रार्थी–केन्द्रित परामर्श सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत सी परामर्श–परिस्थितियॉ सफलतापूर्वक नहीं आती।
5. प्राथी के साधनों (Resources), निर्णयों और बुद्धिमत्ता पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।
6. सभी समस्याएँ केवल बोलकर ही हल नहीं हो सकती।
7. यह सभी स्कूलों में संभव नहीं क्योंकि परामर्शदाता को कई विद्यार्थियों को देखना होता है।
8. कई बार परामर्शदाता की निष्क्रियता से प्रार्थी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में झिझक महसूस करता है।

11.5 समन्वित परामर्श (Ecletic Counselling)

अर्थ (Meaning)

कई बार कई परामर्शदाता न तो निर्देशीय परामर्श की विचारधारा से सहमत है और न ही अनिर्देशीय परामर्श की विचारधारा से। ऐसी परिस्थिति में परामर्शदाता एक अन्य प्रकार के परामर्श का विकास करने में सफल हुए। यह विचारधारा निर्देशीय और अनिर्देशीय (Directive & Non-directive Counselling) परामर्श की विचारधाराओं के मध्य का परामर्श है। इसी मध्य के परामर्श की विचारधार को ही 'समन्वित परार्श' या 'समाहारक परामर्श' या ''संकलक परामर्श'' (Eclectic Counselling) कहा जाता है।

इस प्रकार के परामर्श में परामर्शदाता न तो अधिक सक्रिय (Active i.e. Directive Counselling) होता है और न ही अधिक निष्क्रिय (Passive i.e. Non-directive) होता है। इस प्रकार के परामर्श में पहले व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसके व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा ही किया जाता है। उसके बाद परामर्शदाता उन प्रविधियों (Techniques) का चयन करता है जो व्यक्ति के लिए अधिक उपयोग या सहायक रहेगी।

इस परामर्श–प्रक्रिया में परामर्शदाता पहले निर्देशीय परामर्श विधि के अनुसार शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि को शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि का अनुसरण कर सकता है या इसके विपरीत–जैसा स्थिति चाहें। इसमें प्रविधियॉ परिस्थिति और प्रार्थी के अनुसार होती है। इस प्रकार के परामर्श में जो प्रतिधियॉ प्रयोग की जाती है– वे हैं पुनः विश्वास (Reassurance), सूचना प्रदान करना (Giving Information), केस–हिस्ट्री (Case History), परीक्षण (Testing) इत्यादि।

इस प्रकार इस समन्वित परामर्श (Eclectic Counselling) में दोनो, परामर्शदाता और प्रार्थी सक्रिय और सहयोगात्मक होते है। दोनों बारी–बारी में वार्तालाप करते है और संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते है।

11.5.1 समन्वित परामर्श के चरण (Steps in Eclectic Counselling)

समन्वित परामर्श के मुख्य चरण निम्नलिखित है।

1. प्रार्थी की आवश्यकताओं और व्यक्तित्व की विशेषताओं का अध्ययन (Study of the needs & Personality Characteristics of client)– इसके अन्तर्गत परामर्शदाता सबसे पहले प्रार्थी की आवश्यकताओं के बारे में छानबीन

करता है। इसके बाद वह व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं के बारें में जानकारी एकत्रित करता है।

2. प्रविधियों का चयन (Selection of Techniques)– इसके बाद आवश्यकतानुसार उपयुक्त प्रविधियों (Techniques) का चयन किया जाता है तथा उनका प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों का प्रयोग व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार ही किया जाता है। ताकि परिणाम सही प्राप्त हो सकें।
3. प्रविधियों का प्रयोग (Application of Techniques)– जिन प्रविधियों को चुना जाता है उनकी उपयोगिता प्रार्थी की परिस्थिति के अनुसार ही देखी जाती है और परिस्थिति अनुसार उनका प्रयोग किया जाता है।
4. प्रभावशीलता का मूल्यांकन (Evaluation of Effectiveness)– इसके अन्तर्गत प्रभावशीलता का मूल्यांकन विभिन्न विधियों से किया जाता है।
5. परामर्श की तैयारी (Preparations for Counselling)–प्रार्थी की समस्या व स्थिति के अनुसार परामर्श की आवश्यक तैयारी की जाती है।
6. प्रार्थी और अन्य व्यक्ति की राय प्राप्त करना (Opinion of the Client & Other Related People)–परामर्श सम्बन्धी कार्यक्रम एवं अन्य उद्देश्यों के लिए प्रार्थी तथा उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों से राय प्राप्त की जाती है और तब उसे आगे बढाया जाता है।

11.5.2 समन्ति परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Eclectic Counselling)

समन्वित परामर्श की विशेषताएँ निम्नलिखित हैः–

1. इसमें वस्तुनिष्ठ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।
2. परामर्श के शुरू में प्रार्थी की सक्रियता वाली प्रविधियों का प्रयोग अधिक होता है और इसमें परामर्शदाता निष्क्रिय होता है।
3. इसमें कार्य–कुशलता एवं उपचार प्राप्त करने को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है।
4. इसमें प्रार्थी के व्यय को ध्यान में रखा जाता है।
5. इस प्रकार के परामर्श में समस्त विधियों और प्रविधियों के प्रयोग के लिए परामर्शदाता में व्यावसायिक कुशलता एवं दक्षता का होना अनिवार्य होता है।
6. प्रार्थी की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही निर्णय लिया जाता है कि निर्देशीय विधि का प्रयोग किया जाए या अनिर्देशीय विधि का।
7. प्रार्थी को अवसर उपलब्ध कराया ताकि वह स्वयं समस्या का हल खोज सके।

11.5.3 समन्वित परामर्श के लाभ (Advantage of Eclectic Counselling)

1. यह परामर्श प्रार्थी के लिए लाभदायक होता है।
2. इसमें परामर्शदाता पहले उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करता हैं
3. इस परामर्श में दोनों का परस्पर सहयोग होता है।
4. इसमें प्रार्थी के संवेगात्मक एवं बौद्धिक पक्ष दोनों पर ध्यान दिया जाता है।

11.5.4 समन्वित परामर्श की विशेषताएँ

समन्वित परामर्श की सीमाएँ हैः–

1. कुछ लोगों का कहना है कि परामर्श का यह प्रकार अस्पष्ट और अवसरवादी है।
2. निर्देशीय और अनिर्देशीय प्रकार के परामर्शों को मिश्रित नहीं किया जा सकता।
3. इसमें यह प्रश्न उठता है कि प्रार्थी को कितनी स्वतन्त्रता प्रदान की जाए? इसके बारे में कोई निश्चित नियम नहीं हो सकता।

11.6 बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार

भारत में 1974 में एक राष्ट्रीय पालिसी बनाई गयी। इसके अन्तर्गत ये प्रावधान रखा गया कि जन्म से पहले एवं बाद में अर्थात् बच्चे की वृद्धि अवधि में उसके शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक विकास हेतु पर्याप्त सेवाओं की आवश्यकता है। बाल अधिकारों की सुरक्षा के लिए भारत सरकार ने 29 दिसम्बर 2006 को भारत के राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन हुआ।

इस आयोग के निम्नलिखित दायित्व हैः–

- बच्चों के अधिकारों के संरक्षण के लिए सुझाये गये उपायों की निगरानी व जॉच करना।
- आतंकवाद, हिंसा, दंगों, घरेलु हिंसा, तस्करी, एच0आई0वी0/एड्स, शोषण, अश्लील साहित्य से प्रभावित कारकों की जॉच करना और उसके लिये उपचारात्मक उपायों को बताना।
- समाज के विभिन्न वर्गो के बीच बाल अधिकार एवं संरक्षण साक्षरता का प्रचार–प्रसार करना। इसके अन्तर्गत उन श्रोतो पर ध्यान केन्द्रित करना है जो कुछ परिस्थितियों में पिछडे है।

बाल अधिकार एवं बाल संरक्षण में अन्तर

इन दोनों अवधारणाओं के बीच अन्तर को समझना महत्वपूर्ण है।

बाल अधिकार, सिद्धान्तों या आदर्शो का एक समूह है। जबकि बाल संरक्षण एक प्रणाली है, जिसके द्वारा एक बच्चें के अधिकारों का प्रयोग किया जा सकता है।

बाल अधिकार के प्रकार

1. जीवन जीने का अधिकारः— पहला हक जीने का होता है, फिर खाने—पीने का। चाहे लडका हो या लड़की।
2. संरक्षण का अधिकारः— शोषण से रक्षा का अधिकार। एक बच्चे का शोषण, का अधिकार घर—परिवार एवं बाहर।
3. सहभागिता का अधिकारः—एक बच्चे को अधिकार होता है कि वह स्वयं से जुडे हुए मुददों के बारे में फैसला लें। इसके अन्तर्गत अपने भावों की अभिव्यक्ति, सूचना आदि आते है। प्रत्येक बच्चे का ये अधिकार होता है कि अपने मूलभूत अधिकार एवं उसकी स्थिति को जानें।
4. विकास का अधिकारः— इसके अन्तर्गत बच्चों का संवेगात्मक, मानसिक, शारीरिक विकास का अधिकार है। संवेगात्मक विकास पर्याप्त एवं स्नेह के द्वारा मानसिक विकास, शिक्षा एवं शिक्षण के द्वारा शारीरिक विकास खेलकूद, मनोरंजन एवं पोषण के द्वारा पूरा होता है।

11.6.1 असुरक्षित/अतिसंवेदनशील बाल का अर्थ

वह बाल जो स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ हो, उसे अतिसंवेदनशील बाल की श्रेंणी में रखा जाता है। इस प्रकार का बच्चा बचाव नहीं कर सकता और परिस्थितियों से मुकाबला करने में असमर्थ होता है। जैसे बाल शोषण, गली के बच्चे, असक्षम बच्चे और औषधि व्यसन आदि। असुरक्षा अथवा अतिसंवेदनशीलता को शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इसके लिए कई कारक जिम्मेदार होते है जो निम्न प्रकार से हैः—

1. आयु (Age) : वह बच्चे जिनकी उम्र 06 वर्ष से कम हो, वह ज्यादा सुरक्षा के लिये आश्रित होते है।
2. शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता (Physical & Mental Disabilities) :वह बच्चे जो किसी भी शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता से ग्रस्त होते है, वह ज्यादा अपेक्षित होते है। समाज द्वारा उन्हें हीन भावना से देखा जाता है।
3. शक्तिहीनता (Powerlessness) : यदि बच्चे को उसके परिवार एवं समाज के द्वारा शक्ति/उत्साह नहीं दिया जाता है और उनके अधिकारों को पूरा करने की जिम्मेदारी नहीं दी जाती है वह असुरक्षित एवं संवेदनशील होते है। अर्थात् शक्ति अथवा शक्तिहीनता बच्चे को बाहरी वातावरण एवं परिस्थितियों से प्राप्त होती है।
4. अदृश्य (Inviseble) : वह बच्चे जो समाज के या परिवार द्वारा बहिकृत होते है, जिनकी कोई पहचान नहीं होती है, वह अधिक असुरक्षित होते है। इस प्रकार से आपने असुरक्षित/अतिसंवेदनशील बच्चों के कारकों का पढा, इसी आधार पर इन बच्चों को परामर्श दिया जाता है जो निम्न प्रकार से हैः—

11.6.1 **शोषित बालकों का परामर्श :–** बाल शोषण की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार के अन्तर्गत एक गम्भीर मुद्दा है। विभिन्न प्रकार के शोषण में 05 से 12 वर्ष के उम्र के बच्चे शोषण एवं दुव्यर्वहार के सबसे अधिक शिकार होते है। इन शोषणों में शारीरिक, यौन एवं भावनात्मक शोषण शामिल होता है। इन स्थितियों में बच्चे एवं परामर्शदाता के बीच परिपक्व सम्बन्ध स्थापित होने चाहिए ताकि उसे जो आघात पहॅुचा है, उसे परामर्शदाता पुनःस्थिति में लाने का प्रयास कर सके। सर्वप्रथम आशा एवं विश्वास दिलाना होता है। इसके बाद जब इन मुददों पर परामर्शदाता की एक उपयुक्त सूझ/समझ स्थापित हो जाती है तब बह बच्चे के घरवालों से सम्पर्क करता है और उन्हें सम्बन्धित उपचार योजना को बताता है जिसमें हफ्तें एवं महिने का समय लग सकता है। बच्चे को पुनःस्थिति में लाने हेतु परिवार वालों के विशेष सहयोग की आवश्यकता होती है अर्थात् स्नेह एवं सही देखभाल।

इसके अलावा परामर्शदाता एक समूह सत्र भी आयोजित करता है, जिससे यह लाभ होता है कि जो शोषित बालक है उसे अपनी तरह के बालकों का साथ मिलता है और सभी की भावनायें, समस्यायें, एक प्रकार की होती है जिससे वह स्वयं को अकेला महसूस नहीं करता है।

इसके अलावा शारीरिक शोषण बालक की आयु, प्रकार पर निर्भर करता है कि उसे किस तरह की उपचार विधि प्रदान की जाये। इसके लिए मनोविश्लेषण, खेल उपचार विधि, संज्ञानात्मक–व्यवहार चिकित्सा, विश्रान्ति विधि आदि है।

1. अक्षम बालकों का परामर्श :– जब बालकों में शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की अक्षमता हो तो उसे अक्षम बालकों की श्रेणी में रखा जाता है। इसके कई कारण हो सकते है।
   1. संक्रमति बिमारियॉ
   2. बाल्यकाल में संक्रमण
   3. पोषण की कमीं
   4. पूर्व मातृत्वता
   5. अन्तजार्तीय विवाह

   इन बालकों में शारीरिक अक्षमता के साथ–साथ मानसिक प्रभाव भी देखने को मिलते है। इनके परामर्श हेतु निम्न विधियॉ प्रयुक्त की जा सकती है।
   1. सामूहिक परामर्श
   2. व्यक्ति प्रबन्धन
   3. पुर्नवास परामर्श
   4. पारिवारिक परामर्श

2. व्यवहारात्मक चिकित्सा (Behavioural Consultation) इसमें माता–पिता, एवं Care Taker को यह सहायता दी जाती है कि वह किस तरह से प्रार्थी को प्रोत्साहित करे और समाज में सफलता प्राप्त कर सके।
3. पारिवारिक सहायता एवं शिक्षा :– इसके अन्तर्गत असक्षम बालकों के माता–पिता को उनसे सम्बन्धित सूचना दी जाती है और उन्हें उस समस्या अथवा बीमारी के बारे में अवगत कराया जाता है ताकि बालक को वह पर्याप्त सहायता दे सके। इसके साथ ही शिक्षा द्वारा बालक की मानसिक स्थिति को भी सुधारा जा सकता है। इसके अलावा निम्न प्रकार की अन्य सेवायें भी दी जाती है

1. चिकित्सकीय व्यवहारात्मक सेवाय– जब बालक की स्थिति अत्यधिक गम्भीर होती है और उसे चिकित्सालय में भर्ती करवाने की स्थिति आ जाती है तब इस सेवा का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ ही माता–पिता को भी पर्याप्त परामर्श दिया जाना सुनिश्चित होता है।
2. व्यवहारात्मक जीवन कोचिंग (Behavioural Life Coaching) बाल्यावस्था, जिसे संक्रमण अवस्था भी कहा जाता है, उस समय इस कोचिंग के द्वारा उसे विकासात्मक कौशल सिखाये जाते है। जिससे वह आत्मनिर्भर बन सके एवं अपनी अक्षमता के कारण उसकी हीन भावना को निकाला जा सके
3. औषधि व्यसन का परामर्श (Counselling of drug addiction) : वह नशीले पदार्थ जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से हानिकारक है। जिनसे क्षणिक प्रसन्नता प्राप्त होती है, इन पदार्थो का अधिक उपयोग (Drug abuse) कहलाता है। औषधि व्यसन वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति शरीर संचालन हेतु मादक पदार्थो या औषधियों पर निर्भर हो जाता है।

   इनमें मुख्य पदार्थ है:– धूम्रपान, चरस, गॉजा, अफीम, कोकीन, मर्फिन के इन्जेक्शन, शराब। इन व्यसनों का पता चलने पर इनका उपचार संभव हो पाता है।

   व्यवहार चिकित्सा के अन्तर्गत परामर्श मनोविश्लेषण, सामूहिक एवं परिवार चिकित्सा आदि इसके उपचार हेतु प्रयोग किये जाते है।

   बालकों में इन व्यसन की लत होने पर सर्वप्रथम परामर्श की मुख्य भूमिका होती है। इसके द्वारा व्यवहार में सकारात्मक सुधार अथवा बदलाव देखे जाते है।

   परामर्श के निम्न उद्देश्य होते है।

   1. संज्ञानात्मक :– समस्या को समझना एवं समाधान
   2. व्यवहारात्मक :– नई आदतों को विकसित करना और पुरानी आदतों को छोड़ना।
   3. परिवारिक :– पारिवारिक सदस्यों को समस्या से अवगत कराना और उनसे सहयोग की अपेक्षा करना। इस तरह की समस्या से जूझ रहे बालक को

संवेगात्मक सहयोग की आवश्यकता होती है जो उसे पारिवार वालों से प्राप्त होती है।

यूनिसेफ मानता है कि बाल संरक्षण बच्चों के दुरूपयोग, शोषण, हिंसा एवं अपेक्षा का निवारण करता है। यह बच्चों को अपने अस्तित्व एवं विकास के अन्य अधिकारों तक पहुॅचने की अनुमति भी देता है। बाल संरक्षण यह सुनिश्चित करता है कि बच्चों के पास निर्भर होने के लिए एक सुरक्षा जाल है और यदि वे किसी जोखिम या असुरक्षित परिस्थिति में आ जाते है तो उन्हें बचाने एवं उनकी देखभाल की पूरी जिम्मेदारी सरकार की योजना के अन्तर्गत आती है। सरकार द्वारा एकीकृत बाल संरक्षण योजना (ICPS) चलाई गयी है। जिसके मुताबिक संरक्षण का अर्थ है बच्चों के बचपन को सुरक्षित रखना एवं जो बच्चे कमजोर है तो उनकी यह कमजोरी उन्हें किसी हानिं एवं हानिकारक परिस्थितियों से बचाकर की जा सकती है।

11.7 सारांश

प्रकृति एवं परामर्शदाता की भूमिका के अनुसार परामर्श के मुख्य तीन प्रकार होते हैः–

1. निर्देशित परामर्श 2. अनिर्देशित परामर्श 3. समन्वित परामर्श

- निर्देशित परामर्श के मुख्य प्रवर्तक ई0जी0 विलियमसन थे।
- निर्देशित परामर्श का केन्द्र बिन्दु परामर्शदाता होता है अर्थात् उसकी मुख्य भूमिका होती है।
- वह सक्रिय रहता है तथा अपने स्वयं के दृष्टिकोण एवं भावनायें स्वतंत्र रूप से प्रकट करता है।
- अनिर्देशित परामर्श के मुख्य प्रवर्तक कार्ल आर रोजर्स है।
- इस परामर्श में प्रार्थी केन्द्र होता है और उसे उसके विचारों, भावनाओं को अभिव्यक्त करने को प्रोत्साहित किया जाता है।
- रोजर्स के अनुसार व्यक्ति की मर्यादा मे विश्वास, व्यक्ति विश्वास योग्य एवं बुद्धि से अधिक विवेकशील है।
- परामर्श का तीसरा प्रकार समन्वित परामर्श है। इसमें प्रार्थी एवं परामर्शदाता दोनों की भूमिका होती है।
- इसमें परामर्शदाता न तो सक्रिय होता है और ना ही निक्रिष्य।
- भारत में 1974 में एक राष्ट्रीय पालिसी बनाई गयी।
- 2006 में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन हुआ।
- बाल अधिकार के निम्नलिखित प्रकार हैः जीवन जीने का अधिकार, संरक्षण का अधिकार, सहभागिता का अधिकार एवं विकास का अधिकार

- असुरक्षित एवं अतिसंवेदनशील वह बालक है जो स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ हो।
- इन बालकों के परामर्श निम्न प्रकार के है : शोषित बालकों का परामर्श, अक्षम बालकों का परामर्श, औषधि व्यसन का परामर्श

11.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नः

सत्य/असत्य में उत्तर दीजिये :–

1. निर्देशित परामर्श के प्रवर्तक कार्ल रोजर्स थे।
2. निर्देशित परामर्श में परामर्शदाता की मुख्य भूमिका होती है।
3. अनिर्देशित परामर्श को प्रार्थी केंन्द्रित परामर्श भी कहते है।
4. सुग्राहि परामर्श में प्रार्थी केन्द्र बिन्दु होता है।
5. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन 2006 में हुआ।
6. परामर्श एक बौद्धिक प्रकिया है।
7. अनिर्देशित परामर्श का अन्तिम चरण अनुवर्तक है।
8. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श की अवधारणा है कि व्यक्ति विश्वास योग्य है।

उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. असत्य
8. सत्य

11.9 सन्दर्भ सूचीः–

1. बाल मनोविज्ञान (1995) डा0 प्रफुल्ल एन0 दबे, डा0 विपिन सिंह रायजादा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. निर्देशन एवं परामर्शन (2005) अमरनाथ राय, मधु अस्थाना, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. https://hi.m wekipedia.org
4. https://wikaspedia.org
5. IGNOUS (2005) Counselling Psychology MPCE-021
6. शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका (2015) राधाबल्लभ उपाध्याय, सीताराम जायसवाल, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्श से आप क्या समझते है? निर्देशित परामर्श की विशेषतायें, अवधारणायें बताइये।
2. अनिर्देशित परामर्श के चरण, अवधारणायें एवं लाभ–सीमाओं को बताइये।
3. सुग्राही (समन्वित) परामर्श के चरण एवं विशेषताओं को लिखिये।
4. बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार में अन्तर बताइये एवं असुरक्षित बालकों के परामर्श विधियों पर प्रकाश डालिये।

इकाई 12. परामर्श:- समाधान-केंद्रित, एकीकृत, एच आई वी /एड्स और लत/चिंता (Counseling:- Solution-focused, Integrated, HIV/AIDS and Addiction/Anxiety)

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 समाधान केन्द्रित **चिकित्सा** परामर्श

12.4 समाधान-केंद्रित चिकित्सीय प्रक्रिया

12.5 समाधान-केंद्रित चिकित्सा के मूल सिद्धांत

12.6 समाधान-केंद्रित चिकित्सा के सामान्य घटक

12.7 समाधान-केंद्रित चिकित्सा का अन्य उपचारों के साथ जुड़ाव

12.8 समन्वयवादी परामर्श

12.9 एच. आई. वी/एड्स परामर्श

12.10 एच आई वी/एड्स में मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप

12.11 व्यसन/चिंता परामर्श

12.12 सारांश

12.13 शब्दावली

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.15 संदर्भ

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने निर्देशित एवं अनिर्देशित परामर्श के बारे मे जाना| प्रस्तुत इकाई में आप समाधान केन्द्रित परामर्श,समन्वयवादी परामर्श का अध्ययन करेंगे साथ ही एच आई वी/एड्स परामर्श एवं व्यसन/चिंता परामर्श के बारे में जानेंगे|

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- परामर्श के विशिष्ट प्रकारों की गिनती कर सकेंगे।
- समाधान केन्द्रित परामर्श की व्याख्या कर सकेंगे।
- समन्वयवादी परामर्श को स्पष्ट कर सकेंगे।

- एच आई वी/एड्स परामर्श का वर्णन कर सकेंगे।
- व्यसन/ध्चिंता परामर्श को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विभिन परामर्शों में प्रयुक्त उपचारों को स्पष्ट कर सकेंगे।

12 .3 समाधान केन्द्रित परामर्श

समाधान केन्द्रित परामर्श (SFBT), जिसे केवल सॉल्यूशन-फोकस्ड थेरेपी भी कहा जाता है, एक स्पष्ट-आधारित मनोचिकित्सा दृष्टिकोण है जिसे स्टीव डे शजर (1940-2005), और इनसो किम बर्ग (1934-2007) और 1970 के अंत में उनके सहयोगियों(मिल्वौकी, विस्कॉन्सिन में) ने शुरू किया था। इसकी मान्यता यह है कि प्रार्थी स्वयं परामर्श के उद्देश्य का चयन करेगा तथा परिवर्तन में प्रयुक्त होने वाले संसाधनों को स्वयं ही धारण करता हैं। परामर्शदाता विशिष्ट, लघु व सकारात्मक पदों में विवरण को प्रोत्साहित करता हैं। विवरण समस्या की अनुपस्थिति के बजाय समाधान की उपस्थिति का समर्थन करता हैं। पूर्व घटित घटनाओं को रोकने के बजाय नयी शुरुआत का समर्थन करता हैं। परामर्शदाता प्रार्थी के लक्ष्यों की ओर प्रार्थी के स्वयं के सन्दर्भ ढाँचा के अनुसार कार्य करने में सम्मानपूर्ण, दोषारोपण न करने वाला तथा सहकारी मुद्रा को अपनाता हैं।

12.4 समाधान-केंद्रित को सूचित करने वाले मूल सिद्धांत:

- यह समस्या-समाधान के बजाय समाधान-निर्माण पर आधारित है।
- चिकित्सी का ध्यान अतीत की बजाय ग्राहक के वांछित भविष्य पर होना चाहिए
  समस्याओं या वर्तमान संघर्ष।
- ग्राहकों को वर्तमान उपयोगी व्यवहारों की आवृत्ति बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है
- हर समय कोई समस्या नहीं होती है। अपवाद हैं - अर्थात, जब समस्या हो सकता है, लेकिन ऐसा नहीं किया जा सकता है - जिसका उपयोग ग्राहक और चिकित्सक द्वारा समाधानों को रोकने के लिए किया जा सकता है।
- चिकित्सक ग्राहकों को व्यवहार के वर्तमान अवांछित पैटर्न, संज्ञान और बातचीत जो ग्राहकों के प्रदर्शनों की सूची के भीतर हैं के लिए विकल्प खोजने में मदद करते हैं,
- कौशल निर्माण और व्यवहार चिकित्सा हस्तक्षेप से भिन्न, यह मॉडल मानता है कि समाधान व्यवहार पहले से ही ग्राहकों के लिए मौजूद हैं।
- यह कहा जाता है कि परिवर्तन की छोटी वृद्धि से परिवर्तन की बड़ी वृद्धि की अगुवाई करती है।
- ग्राहकों के समाधान, ग्राहक या चिकित्सक द्वारा पहचान की गई समस्या से सीधे संबंधित नहीं होते हैं|
- समस्याओं का निदान और उपचार हेतु ग्राहक को आमंत्रित करने के लिए चिकित्सक का संवादात्मक कौशल आवश्यक है|

Corey, 1985 के अनुसार “Solution-Focused Brief Therapy differs from traditional treatment in that traditional treatment focuses on exploring problematic feelings, cognitions, behaviors, and/or interaction, providing interpretations, confrontation, and client education (Corey, 1985).

इसके विपरीत, एसएफबीटी ग्राहकों को भविष्य हेतु एक वांछित दृष्टि विकसित करने में मदद करती है, जिसमें समस्या हल हो जाती है, और ग्राहक-विशिष्ट का सह-निर्माण करने के लिए संबंधित ग्राहक अपवादों, शक्तियों, और संसाधनों का पता लगाना और बढ़ाना। इस प्रकार प्रत्येक ग्राहक लक्ष्यों, रणनीतियों, शक्तियों और संसाधनों की उनकी अपनी उभरती परिभाषाओं के आधार पर समाधान के लिए अपना रास्ता खुद ढूंढता है| यहां तक कि उन मामलों में जहां ग्राहक समाधान के लिए बाहरी संसाधनों का उपयोग करने के लिए आते हैं, उन संसाधनों की प्रकृति को परिभाषित करने व वे कैसे उपयोगी होंगी इसका वह स्वयं नेतृत्व करता है।

12.5 समाधान-केंद्रित चिकित्सीय प्रक्रिया:

एसएफबीटी एक दृष्टिकोण है जो समस्याओं के निदान और उपचार पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय ग्राहकों को कैसे बदलता है, इस पर केंद्रित है। जैसे, यह परिवर्तन की भाषा का उपयोग करता है। समाधान-केंद्रित साक्षात्कारों में उपयोग किए जाने वाले हस्ताक्षर प्रश्नों का उद्देश्य एक चिकित्सीय प्रक्रिया स्थापित करना है जिसमें व्यवसायी ग्राहकों के शब्दों और अर्थों (ग्राहकों के लिए क्या महत्वपूर्ण है, वे क्या चाहते हैं, और संबंधित सफलताएं), को सुनते और आत्मसात करते हैं फिर ग्राहकों के प्रमुख शब्दों और वाक्यांशों से जोड़कर अगला प्रश्न तैयार करते और पूछते हैं| चिकित्सक फिर से सुनना और आत्मसात करना जारी रखते हैं क्योंकि ग्राहक फिर से उनके संदर्भ के फ्रेम से उत्तर देते हैं, इस प्रकार फिर से ग्राहक की प्रतिक्रियाओ से जुड़कर अगला सवाल तैयार करते और पूछते हैं| यह प्रक्रिया सुनने, आत्मसात करने, जुड़ने की निरंतर प्रक्रिया के माध्यम से होती है। ग्राहक जवाब देता है, चिकित्सक और ग्राहक(client) साथ मिलकर नए और परिवर्तित अर्थों का और समाधानों का निर्माण करते हैं।

संचार शोधकर्ता McGee, Del Vento, and Bavelas (2005) वर्णन करते हैं- This process as creating new common ground between practitioner and client in which questions that contain embedded assumptions of client competence and expertise set in motion a conversation in which clients participate in discovering and constructing themselves as persons of ability with positive qualities that are in the process of creating a more satisfying life.

12.6 समाधान-केंद्रित चिकित्सा के सामान्य घटक:

अधिकांश मनोचिकित्सा बातचीत (conversation) पर आधारित होती है SFBT में इन वार्तालापों के लिए तीन मुख्य सामान्य तत्व हैं।

पहला; इसमें सर्व समावेशी विषय होते हैं, SFBT वार्तालाप ग्राहक की चिंताओं पर केंद्रित होते हैं ग्राहकों के लिए कौन और क्या महत्वपूर्ण हैं, एक पसंदीदा भविष्य की दृष्टि; ग्राहकों के अपवाद,शक्ति, विजन

से संबंधित साधन,समाधान प्राप्त करने हेतु ग्राहक के प्रेरणा स्तर एवं आत्मविश्वास का मापन, और पसंदीदा भविष्य तक पहुँचने की ग्राहकों की प्रगति के लिए चल रही स्केलिंग को प्राथमिकता दी जाती है।

दूसरा, जैसा कि पिछले भाग में संकेत दिया गया है एसएफ **समाधान-केंद्रित(SF)** वार्तालाप में सह-निर्माण या ग्राहकों में नए अर्थों की एक चिकित्सीय प्रक्रिया शामिल है। यह प्रक्रिया काफी हद तक चिकित्सक द्वारा निर्धारित की जाती है, जिसमें ग्राहकों द्वारा पिछले पैराग्राफ में व्यक्त किए गए परिणाम से कनेक्ट बातचीत के विषयों के बारे में पूछा जाता है

तीसरा, चिकित्सक कई विशिष्ट प्रतिक्रिया और प्रश्नावली तकनीकों का उपयोग करते हैं जिसमें ग्राहकों को एक पसंदीदा भविष्य की दृष्टि का निर्माण करने और अपनी पिछली सफलताओं पर आकर्षित करने, ताकत, और संसाधन उस दृष्टि को एक वास्तविकता बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है| विशिष्ट, ठोस और यथार्थवादी लक्ष्यों की स्थापना SFBT का एक महत्वपूर्ण घटक है।

भविष्य में अलग-अलग ग्राहक(client) क्या चाहते हैं, इसके बारे में समाधान केंद्रित(SF) वार्तालाप के माध्यम से लक्ष्य तैयार और प्रवर्धित किया जाता है।

नतीजतन, एसएफबीटी में, ग्राहक लक्ष्य निर्धारित करते हैं। एक बार एक प्रारंभिक सूत्रीकरण होने के बाद, चिकित्सा लक्ष्यों से संबंधित अपवादों पर ध्यान केंद्रित करती है, ग्राहक अपने लक्ष्यों या समाधान के कितने करीब हैं, नियमित रूप से इसकी स्केलिंग करती है कि और अपने पसंदीदा वायदा तक पहुंचने के लिए उपयोगी अगले चरणों का सह-निर्माण करते हैं।

12.7 SFBT का अन्य उपचारों के साथ जुड़ाव

SFBT योग्यता-आधारित, लचीलापन-उन्मुख मॉडल के समान है, जैसे प्रेरक संवर्द्धन साक्षात्कार के कुछ घटक (Miller & Rollnick, 2002; Miller, Zweben, DiClemente, & Rychtarik, 1994).

एसएफबीटी और संज्ञानात्मक-व्यवहार थेरेपी के बीच कुछ समानताएं भी हैं, एसएफबीटी और संज्ञानात्मक-व्यवहार थेरेपी के बीच कुछ समानताएं भी हैं, हालांकि बाद वाले मॉडल में चिकित्सक असाइनमेंट में परिवर्तन और कार्य करते हैं, जबकि SFBT चिकित्सक ग्राहकों को अपने स्वयं के पिछले अपवाद व्यवहार और / या परीक्षण व्यवहारों को करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो ग्राहक के विवरण का हिस्सा हैं।

एसएफबीटी और संज्ञानात्मक-व्यवहार थेरेपी के बीच कुछ समानताएं भी हैं, हालांकि बाद वाले मॉडल में चिकित्सक असाइनमेंट में परिवर्तन और कार्य करते हैं, जबकि एसएफबीटी चिकित्सक ग्राहकों को अपने स्वयं के पिछले अपवाद व्यवहार और / या परीक्षण व्यवहारों को करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो ग्राहक के उनके लक्ष्य का विवरण का हिस्सा हैं। एसएफबीटी में नैरेटिव थैरेपी (जैसे, Freedman & Combs, 1996) की कुछ समानताएं हैं, जिसमें दोनों एक गैर-पैथोलॉजी रुख अपनाते हैं, ग्राहक केंद्रित होते हैं, और दृष्टिकोण के हिस्से के रूप में नई वास्तविकताओं को बनाने का काम करते हैं।

एसएफबीटी किसी भी दृष्टिकोण के अंतर्निहित दर्शन और मान्यताओं के संदर्भ में सबसे अधिक भिन्न है जिनमे "काम करने के लिए" या इसे हल करने के लिए एक समस्या पर गहन ध्यान

देने की आवश्यकता है,या जिनमें वर्तमान व भविष्य के बजाय अतीत पर ज्यादा जोर दिया जाता है|

12.8 समन्वयवादी परामर्श

विगत कुछ दशकों से परामर्शन के क्षेत्र में विभिन्न उपागमों के समन्वयन का प्रचलन बढ़ा हैं। अनेक समन्वयवादी उपागमों का विकास हुआ तथा अनेक पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ। समन्वयन की दिशा में यह प्रगति एक आन्दोलन का रूप ले चुकी हैं। होलेंडर्स (2003) इस आन्दोलन के कारण के रूप में निम्नवत पाँच आधुनिक प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हैं।

1. परामर्शन के क्षेत्र की परिपक्वता- होलैंडर्स समन््वंयन की दिशा में हो रही प्रगतियों को परामर्शन मनोविज्ञान की परिपक्वता की एक स्वाभाविक परिणति मानते हैं।

2. अस्त व्यस्त दशा से सुव्यवस्था की दिशा में अग्रसर होना- उपागमों की बढती हुई संख्या जहाँ उस क्षेत्र की बढती परिपक्वता एवं संवृद्धि की परिचायक है, वहीं इस क्षेत्र के अस्त व्यस्त रूप को प्रस्तुत करती है जिससे बचने/बचाने के लिए परामर्शदाता समन्वय की दिशा में, संघटन की दिशा में कार्य करने लगे। होलैंडर्स की इस विषय में प्रतिक्रिया यह है कि अभी तक इस दिशा में प्रगति मात्र आरंभिक है और अभी तक इस प्रवृत्ति द्वारा उपागमों की संख्या में वृद्धि मात्र ही हुयी हैं। वास्तविक समन्ववयन अभी बाकी प्रतीत होता हैं।

3. गुरु परंपरा से दूर उपागमों की समालोचनात्मक व्याख्या की दिशा में बढ़ते कदम परामर्शन के क्षेत्र में फ्रॉयड, राजर्स, युंग, स्किनर जैसे मुख्य धारा के उपागमों को विकसित करने वाले परामर्शदाताओं की दशा गुरु जैसी हो गयी जिसके अनुयायी उनके द्वारा सुझाये गए मार्ग का अन्धानुकरण करने लगे, किन्तु वैज्ञानिक या दार्शनिक सोच वाले परामर्शदाताओं को इन उपागमों की समालोचनात्मक व्याख्या एवं मूल्यांका की आवश्यकता का अनुभव हुआ। पॉल (1967) ने परामर्शदाताओं से आग्रह किया कि उपागमों की सीमारेखा से बाहर निकलें, उपागमों के विषय में पूछें कि "किसके द्वारा कौन-सा उपचार इस व्यक्ति की इस विशिष्ट समस्या के लिए किन विशिष्ट दशाओं में अधिक प्रभावशाली होगा?

4. व्यक्तिगत लक्ष्य अनुसरण की अपेक्षा सामूहिक वृत्तियात्मक जिम्मेदारी पर बल- जैसे-जैसे परामर्शन के क्षेत्र का प्रसार हुआ परामर्शदाताओं को वृत्तियात्मक संगठनों के माध्यम से अधिकार पत्र की व्यवस्था द्वारा नियंत्रित किया जाने लगा। इस कारण जहाँ परामर्शदाताओं को कोई उपागम अपनाने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है वही सामूहिक जिम्मेदारी, एक कूपरे के विचारों को सुनने और लोगों के हित में एककूपरे के समीप आकर कार्य करने का आग्रह भी प्रस्तुत होता हैं।

5. दार्शनिक परिवेश- बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में दार्शनिक चिंतन के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों, विशेषतः उत्तर आधुनिकतावाद का प्रभाव परामर्शन उपागमों के समन्वयन के रूप में भी प्रकट हुआ। उत्तर आधुनिकताबाद के कारण ऐसे सामाजिक वैचारिक परिवेश की रचना हुई जिसके कारण परामर्शन मनोविज्ञान के क्षेत्र में समन्वचयन एक प्रभावशाली आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ हैं।

1. संज्ञानात्मक-विश्लेषणात्मक उपचार (**Cognitive Analytic Therapy**) संज्ञानात्मक

विश्तेषणात्मक उपागम का विकास एंथानी राइल (**Anathony Ryle, 1927**) द्वारा 1980 एवं 1990 के दशक में किया गया। राइल ने इस विषय में तीन पुस्तकों- **Cognitive-Analytic Therapy 19990; Cognitive-Analytic Therapy: Developments in Therepy and Practices (Edited), 1995; Cognitive-Analytic Therapy Borderline Personality Disorders: the Method and the Model 1997;** का लेखन/संपादन किया. यह सिद्धांत संक्षिप्त नाम **CAT** रूप में जाना जाता हैं।

राइल के उपागम में अनेक प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं- 1. केली का व्यक्तिगत निर्मित उपागम **¼Personal construct approach);** 2. अलेक्जेंडर और फ्रेंच की मनोगात्यात्मक समस्याओं में सक्रिय हस्तक्षेप में रूचिय 3. मार्डी हारिडोज द्वारा मन की अवस्थाओं का रेखाचित्र के माध्यम से चित्रणय और 4. अनेक उपागमों द्वारा सामान्य पुनरावृत्ति की जाने वाली अंतर्वैयक्तिक प्रविधियों की पहचान. इस उपागम के विकास में एक मुख्य विषय यह था कि सार्वजनिक क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवा के लिए कम से कम समय में उपयोग में लाये जा सकने वाले उपागम को विकसित किया जायेगा।

अन्य अल्प-अवधि वाले उपागम की तरह इसमें भी ‘‘प्रार्थी के लिए’’ या ‘‘प्रार्थी के साथ’’ की तुलना में ‘प्रार्थी द्वारा‘ की निति अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं।

संज्ञानात्मक विश्लेषणात्मक उपचार/परामर्शन प्रणाली के तीन चरण होते हैं- वर्णन, पहचान/प्रत्यभिज्ञा और संशोधन।

प्रथम अवस्था में, जो बहुधा एक ओर से चार सत्रों तक चलती हैं। परामर्शदाता प्रार्थी के इतिहास का वर्तमान समस्याओं के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से अध्ययन करता हैं। प्रार्थी को परामर्शन के मुख्य बिंदु को समझने में सहायता दी जाती हैं। परामर्शदाता समस्या निरूपण के बाद पुनर्निरूपण पत्र लिखता है जिसमें प्रार्थी आवश्यक संशोधन करता है तथा यह जान पाता है कि परामर्शदाता उसे किस सीमा तक समझ रहा हैं। आपने जीवन की कथा को इस प्रकार प्रस्तुत किये जाने से परामर्शी के अतीत के साथ संपर्क घटाने में सहायता मिलती है तथा अपनी कथा में संशोधन करने की क्रिया में सशक्तिकरण का बोध होता हैं। पत्र में अधिगम सम्बन्धी आवश्यकताओं का भी वर्णन किया जाता हैं।

समस्या का वर्णन और अतीत एवं वर्तमान अनुभवों से इसका सम्बन्ध स्पष्ट हो चुकने के पश्चात प्रत्यभिज्ञा चरण का आरम्भ होता हैं। इस चरण में प्रार्थी वर्णन को अर्थपूर्णता प्रदान करने के लिए संघर्ष करता हैं। यह समझने का प्रयत्न करता है कि ‘‘क्या हो रहा है’’, ‘‘क्या चल रहा है’’. व्यक्ति के अवलोकन आत्म को सशक्त किया जाता है जिसके आधार पर घटनाओं के क्षितिज पर विचार करते हुए यह समझने का प्रयत्न किया जाता है कि (प्रार्थी द्वारा) वह प्रक्रियात्मक प्रतिक्रिया पर किस प्रकार नियंत्रण स्थापित कर सकता हैं।

उक्त प्रत्यक्षण के विकास के पश्चात संशोधन कार्य आरम्भ होता है जहाँ नए विकल्पों का अन्वेषण किया जाता है, प्रक्रिया के बंद चक्रव्यूह को तोडा जाता है तथा नए निर्णय अपनाये जाते हैं।

संज्ञानात्मक विश्छेषणात्मक उपागम में उपचार का संयुक्त रूप में मूल्यांकन किया जाता हैं। सत्रों (प्रायः सोलह) के अंत में चेतन अभिप्राय पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता हैं। परामर्शदाता अपनी अन्य सहयोगी क्षमताओं स्वप्न विश्लेषण, सृजनात्मक कला, अंतर्वैयक्तिक अन्वेषण और गेस्टाल्ट संपर्क का भी

उपयोग कर सकता हैं। इस प्रकार का अवसर मनोपचारक और प्रार्थी की सृजनात्मकता को फलीभूत होने का अवसर प्रदान करता हैं। परामर्शदाता प्रार्थी के साथ किसी प्रकार के कार्य के उद्देश्य को स्पष्ट करने की आवश्यकता आने पर स्पष्टीकरण भी देता हैं।

CAT की प्रक्रिया आत्म-प्रत्यावर्तन प्रतिरूप में देखी जा सकती हैं। यह प्रक्रिया प्राप्त लाभ को बनाये रखने में सहायक होती हैं। व्यक्ति जीवन की संभावनाओं के प्रति खुला दृष्टिकोण अपनाता है तथा निरंतर आत्म-प्रत्यावर्तन करते रहता हैं।

2. बहुआयामी उपचार **(Multimodal Therapy)**

लजारस **(Arnold Lazarus, 1932)** का प्रशिक्षण मनोविश्लेषणात्मक, मनोगत्यात्मक और व्यक्ति केन्द्रित सिद्धांत एवं प्रणाली में हुआ था और 1958 में उन्होंने सर्वप्रथम व्यवहार चिकित्सक और व्यवहार उपचार पदों का एक शैक्षिक पत्र में उपयोग किया। लजारस ने व्यवहार उपचार प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के अनुवर्ती अध्ययन में यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि उनमें समस्या की पुनरावृत्ति अन्य व्यक्तियों जिन्होंने व्यवहार उपचार के साथ संज्ञानात्मक प्रविधियों का भी लाभ प्राप्त किया था, की तुलना में अधिक थी। अतः 1970 के दशक में लजारस संज्ञानात्मक-व्यवहारात्मक प्रविधियों की एक व्यवस्थित विस्तृत श्रृंखला का उपयोग किये जाने के लिए वकालत करने लगे। अपने अनुवर्ती अध्ययनों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि परामर्शन से प्राप्त लाभों के अनुरक्षण में कई प्रविधियों के सम्मिलित उपयोग का योगदान किया जाना उपयोगी होता हैं। इस ध्येय से लजारस ने बहुआयामी उपचार उपागम विकसित किया जिसमें मानव व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की व्यापक रूप में पहचान करके उपचार पर बल दिया जाता हैं।

प्रविधियों एवं हस्तक्षेपों का उपयोग परामर्शदाता और प्रार्थी की विशेषताओं एवं दक्षताओं, परामर्शन सम्बन्ध और प्राविधि की विशिष्टता के आधार पर किया जाता हैं। अनेक संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक प्रविधियों के अतिरिक्त अन्य उपागमों, जैसे गेस्टाल्ट उपागम की प्रविधियों (रिक्त स्थान विधि) का भी उपयोग किया जाता हैं। एक 15 पृष्ठीय बहुआयामी जीवन वृतांत अनुसूची **(Multimodel life history inverntory-MLHI)** तैयार की जाती है जिसमें आवश्यक सूचनाएं प्रार्थी द्वारा सत्रों के मध्य में घर पर भर ली जाती हैं। इसका एक दूसरा भाग होता है जो उस समय उपयोग में लिया जाता है जब प्रयुक्त प्रविधि विफल हो जाती हैं। लजारस (1989) ने 1 से 7 बिंदु मापन के आधार पर एक संरचनात्मक रूपरेखा भी तैयार करने का सुझाव दिया जिसमें प्रार्थी सैट आयामों पर अपना आत्तमनिष्ठ मूल्यांकन प्रस्तुत करता हैं। स्टेफेन पामर (1996, 2000) के अनुरूप प्रयुक्त प्रविधियों की चित्रण तालिका निम्नवत प्रस्तुत हैं।

तालिकाः बहुआयामी उपचार में बहुधा प्रयुक्त होने वाली तकनीकें

(Frequently used techniques in multimodal therapy and training)

आयाम (Modality	**तकनीकें एवं हस्तक्षेप (Techniques and interventions)**
व्यवहार (Behaviour)	व्यवहार पूर्वाभ्यास (Behaviour rehearsal) रिक्त कुर्सी (Empty Chair) प्रदर्शन कार्यक्रम (Exposure Programme)

	स्थिर भूमिका चिकित्सा (Fixed role therepy) प्रतिरूपण (Modelling) विरोधाभासी आशय (Paradoxial intention) मनो-नाटक (Psychodrama) प्रबलन कार्यक्रम (Reinforcement Programme) प्रतिक्रिया निरोधन/मूल्य (Response prevention/cost) जोखिम अनुभव (Risk training experience) आत्म निरीक्षण एवं आलेख (Self monitoring and recording)
भाव (Affect)	उद्दीपक नियंत्रण (Stimulus controle) शर्म-आक्रमण (Shame attacking) क्रोध प्रदर्शन/प्रबंधन (Anger expression/management) चिंता प्रबंधन (Anxiety management अनुभूति पहचान (Feeling identification)
संवेदना (Sensation)	जैव पुनर्निविशन (Bio-feed back) सम्मोहन (Hypnosis) ध्यान (Meditation) विश्रांति प्रशिक्षण (Relaxation Training) संवेदी केन्द्रण प्रशिक्षण (Sensate focus training) देहली प्रशिक्षण (Threshold training)
बिम्ब (Imagery)	भविष्य विरोधी आघात बिम्ब (Anti future shock imagery) सहचरित बिम्ब (Associated imagery) विकर्षणात्मक बिम्ब (Aversive imagery) सामंजस्यीकरण बिम्ब (Coping imagery) काल्पनिक प्रदर्शन (Imaginal exposure) विधेयात्मक बिम्ब (Positive imagery) तार्किक सांवेगिक बिम्ब (Rational motive imagery) काल प्रक्षेपण बिम्ब (Time Projection imagery)
सज्ञान (Cognition)	बिबलियोथेरेपी (Biblio-therapy) त्रुटिपूर्ण अनुमानों को चुनौती (Challenging faulty inferences) संज्ञानात्मक रिहेर्सल (Cognitive rehearsal)

	सामंजस्यकारी कथन (Coping statements) मिथ्या धारणाओं में सुधार (Corrective misconceptions) विवादास्पद अतार्किक विश्वास (Disputing irrational beliefs) केन्द्रण (Focusing) विधेयात्मक आत्म कथन (Positive self statements) समस्या समाधान प्रशिक्षण (Problem solving training) तार्किक मतान्तरण (Rational proselytization) आत्मस्वीकृति प्रशिक्षण (Self acceptance training) चिंतन विराम (Thought stopping)
अन्तःवैयक्तिक (Interpersonal)	आग्रह प्रशिक्षण (Assertion training) संचार प्रशिक्षण (Communication training) अनुबंध (Contracting) स्थिर भूमिका चिकित्सा (Fixed role therapy) मित्रता/आत्मीयता प्रशिक्षण (Friendship/intimacy training) श्रेणीकृत यौनिक उपागम Graded sexual approaches) विरोधाभासी आशय (Paradoxial intentions) भूमिका वहन (Role play) सामाजिक कौशल प्रशिक्षण (Social skill training)
औषधि/जैविक ((Drug/Biology)	मदिरा न्यूनीकरण कार्यक्रम (Alchohol reduction programme) जीवन शैली परिवर्तन, उदा0 व्यायाम, पौष्टिक भोजन आदि (Life style changes, e.g. exercise, nutrition etc.) चिकित्सक या अन्य विशेषज्ञ को संदर्भित (Reffered to physicians or other specialists) धूम्रपान विराम कार्यक्रम (Stop smoking programme) भार में कमी तथा अनुरक्षण कार्यक्रम (Weight reduction and maintenance programme)

3. दक्ष-सहयोगी मॉडल (Skilled Helper Model)

दक्ष-सहयोगी मॉडल का विकास गेरार्ड ईगन **(Gerard Egan, 1975)** से सतत करते आ रहे हैं। आरम्भ में गेरार्ड ने बैयक्तिक एवं समूह कार्य की दशाओं से सहयोगी (परामर्शदाता) के लिए संचाण/सम्प्रेषण दक्षताओं का वर्णन किया। गेरार्ड का यह विचार था कि ''जीवन की समस्याओं की व्याख्या मात्र (जैसा कि उनके उपागमों में होता है) एक अपर्याप्त प्रयास हैं। इनका यह विश्वास था कि सामाजिक दशाओं एवं

प्रणालियों के प्रभावों एवं अवसरों का समुचित प्रबंधन सहायता की प्रक्रिया के माध्यम से किया जा सकता हैं। (**Mary Connor, 2000**)

दक्ष-सहयोगी मॉडल सहायता देने वाली तीन अवस्थाओं वाली प्रक्रिया हैं। इन तीन अवस्थाओं को आरम्भ में अन्वेषण, बोध और कार्यवाही कहा गयाद्य आगे चलाकर गेरार्ड (तृतीय संस्करण, 1986) ने इन अवस्थाओं को वर्तमान परिदृश्य, वरीय परिदृश्य और कार्यवाही - नए परिदृश्यक की लाइन पर प्राप्ति कहा। गेरार्ड (2001) ने तीसरी अवस्था को ‘‘वहाँ पहुँचना’’ (**Getting there**)कहा हैं।

दक्ष-सहयोगी मॉडल समन्वयात्मक एवं पारसैद्धान्तिक हैं (**Connor,** 2000) यह मॉडल राजर्स के व्यक्तिगत केन्द्रित उपागम के तत्वों का उपयोग करता है किन्तु इसके मुख्य बल संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक है जिसमें बैंडूरा, बेक, इल्लिस, सेलिगमैन और स्ट्रोंग का प्रभाव परिलक्षित होता हैं। ईगन ने इस मॉडल को ’समस्या प्रबंधन मॉडल‘ या सहायता के लिए प्रारूप’ के रूप में प्रस्तुत किया।

ईगन (1990) ने प्रार्थी को चुनौती देने पर अधिक बल दिया और माना कि ऐसा करके यह अपेक्षा की जा सकती है कि प्रार्थी कार्यवाही के लिए अधिक जिम्मेदारी स्वीकार करेगा ईगन ने यह भी स्पष्ट किया कि यह मॉडल सहायता का सिद्धांत प्रस्तुत करता है न कि सहायता की रूपरेखा। प्रकाशन के पांचवें संस्करण (1994) में ईगन ने स्वीकार किया है कि यह मॉडल व्यवस्थित विभिन्न -दर्शन ग्राही हैं। दक्ष-सहयोगी मॉडल का छठां संस्करण 1998 और सतावन संस्करण 2001 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत विवरण इस मॉडल की मेरी कोनर्स (2000) द्वारा की गयी व्यवस्था के अनुरूप हैं।

प्रार्थी में परिवर्तन उत्पन्न हो उसके लिए सहायक में कुछ विशेषताएं होनी चाहिए जैसे- निष्ठा (genuineness), सम्मान (respect), एवं परानुभूति (empathy), कान्नर (ब्वददवतए 2000) ने प्रभावशाली कार्यकारी सम्बन्ध के विकास की आवश्यकता, जिसमें सहयोग एवं चुनौती की उपयुक्त मात्रा हो, को महत्वपूर्ण बताया हैं। सहायता एवं परिवर्तन की तीनों अवस्थाओं में संबंधों की जीवन्तता आवश्यक बताई गयी हैं।

प्रथम अवस्था में प्रार्थी अपना वृतांत प्रस्तुत कर सके उसके लिए उसे सहयोग की आवश्यकता होती हैं। ध्यान देना, सुनना, सार संक्षेप करते रहना, अनुभूतियों का प्रत्यावर्तन, छानबीन और स्पष्टीकरण की माँग जैसी दक्षताओं की आवश्यकता होती हैं। अंध-क्षेत्रों की पहचान के लिए परानुभूति चुनौती द्वारा ही समस्या की उपयुक्त व्याख्या या संसाधनों एवं अवसरों के अनुपयोग या अल्प-उपयोग की दशा जैसे प्रार्थी के अंध-क्षेत्रों की पहचान संभव हो पाती हैं। प्रथम अवस्था के लिए परामर्शदाता (सहायक) की आवश्यक दक्षताओं में विषयों पर केन्द्रण, प्राथमिकताओं के निर्धारण एवं उत्तोलन का अन्वेषण की दक्षता की गणना की जाती हैं।

परिदृश्य की रूपरेखा विकसित करने के लिए सृजन एवं कल्पना की क्षमता होनी चाहिए, परामर्शदाता अनेक प्रकार से प्रार्थी के पार्श्वचिंतन को प्रोत्साहित कर सकता हैं। इसके लिए ड्राइंग, निबंध, चित्रांकन या मस्तिष्क उद्वेलन की क्रियाओं को प्रयुक्त किया जा सकता हैं। इन सबके पीछे यह प्रयास निहित होता है कि किसी प्रकार प्रार्थी के लिए संभावनाओं का द्वार खुले, वह अकल्पनीय के विषय में कल्पना करने

लगे और वास्तविक संभावनाओं का अनुकरण होने लगे। परामर्शदाता के अन्दर यह दक्षता होनी चाहिए कि वह प्रार्थी की महत्वपूर्ण इच्छाओं को प्रोत्साहित करे तथा बाधित करने वाले कर्तव्यों को दूर करे।

इस मॉडल के द्वितीय चरण की पूर्ति हेतु लक्ष्य निर्धारण एवं लक्ष्य के प्रति समर्पण के परीक्षण की दक्षता उपयोगी होती हैं। इस दृष्टि से SMART (Specific Measurable Achievable, Realistic goal stated within a Time frame) को अच्छी रणनीति माना जाता हैं। लाभ हानि मूल्यांकन विधि द्वारा उपयुक्त लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता हैं।

तृतीय अवस्था के लक्ष्य को प्राप्त कर सकने में सहायक सिद्ध हो पाने के लिए परामर्शदाता/दक्ष सहायक में प्रार्थी के मस्तिष्क को उद्वेलित कर उसके लिए सर्वोपयुक्त योजना का चयन कर पाने की दक्षता होनी चाहिए, इस अवस्था में शक्ति क्षेत्र विश्लेषण जैसी विधियों का उपयोग किया जाता हैं। इस प्रकार के विश्लेषण द्वारा यह निर्धारित करके कि लक्ष्य प्राप्ति में कौन कारक सकारात्मक सहायक या नकारात्मकध् बाधक हैं। सकारात्मक घटकों को मजबूत करने और नकारात्मक घटकों को क्षीण करने का उपाय किया जा सकता हैं। चुनौतियों की पूर्व जानकारी से व्यक्ति को पूर्व तैयारी का अवसर प्राप्त होता हैं। अतः परामर्शदाता चुनौतीपूर्ण मार्ग के विश्लेषण जैसी विधियों का उपयोग करता हैं।

परामर्शदाता के लिए मूल्यांकन दक्षता की पूरी प्रक्रिया में आवश्यकता होती हैं। परामर्शदाता में सदैव स्वतः स्फूर्ति शैली में प्रार्थी के साथ होने की दक्षता होनी चाहिए, उसमें यह क्षमता होनी चाहिए कि सहायता प्रारूप का लचीलेपन के साथ उपयोग किया जा सकेद्य मूल्यांकन की क्षमता सर्वाधिक आवश्यक दक्षता होती है जिसके आधार पर वह प्रार्थी में हो रहे परिवर्तन का मूल्यांकन एवं अनुश्रवण करता हैं। इन दक्षताओं के साथ परामर्शदाता इस मॉडल का बुद्धिमत्ता एवं निष्ठा पूर्वक उपयोग करता है, यंत्रवत ढंग से नहीं।

4. पार-सैद्धांतिक उपागम (**Trans-Theoretical Approach**)

प्रोशास्का एवं डिक्लिमेंट (Prochaska and Diclemente) पार सैद्धांतिक उपागम को विकसित करने के लिए 1970 एवं 1980 के दशकों में अमेरिका में सामान्यतः अनुभूत उस बेचैनी को महत्वपूर्ण कारण मानते हैं जिसके अंतर्गत प्रचलित मनोपचार प्रणालियों को संकुचित एवं अनम्य बताया गया। प्रायः सभी उपागम अपनी प्रणाली को उपयुक्त बताते हुए एक सैद्धांति ढाँचा भी विकसित कर लेते हैं। प्रोशास्का ने 1977 में विविध उपागमों के सामान्य तत्वों का सर्वेक्षण आरम्भ किया और 1984 में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी उपागमों में परिवर्तन के लिए मूलतः दस पृथक प्रक्रियाओं का प्रार्थी में परिवर्तन के लिए उपयोग करते हैं। बाद में प्रोशास्का एवं डिक्लिमेंट (1986, 1992) ने इस आधार का विस्तार, विकास एवं शोधकार्य संपन करके पार-सैद्धांतिक उपागम प्रस्तुत किया। यह उपागम प्रार्थी में परिवर्तन के लिए व्यावहारिकता पर बल देता हैं।

यह उपागम परिवर्तन की प्रक्रिया को मनोपचारी ढंग से, प्रकट हुई समस्याओं के विविध स्तरों के साथ समन्वित करता हैं। इसमें परिवर्तन की (i) प्रक्रियाओं (process), (ii) अवस्थाओं (stages) और (ii) स्तरों का वर्णन किया गया हैं।

परिवर्तन की दस प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है-

1 चेतनशीलता का उत्थान- अपने एवं समस्याओं के बारे में सूचना विस्तार,

2 आत्म-मुक्ति- चयन, परिवर्तन के लिए विश्वास और समर्पण,

3 सामाजिक-मुक्ति- समाज में व्यवहार के लिए विकल्पों का बोध एवं विकल्प-बुद्धि,

4 प्रति अनुबंधन- समस्या व्यवहार के विकल्पं प्रस्तुत करना,

5 उद्दीपक नियंत्रण- समस्या व्यवहार बढ़ाने वाले उद्दीपकों का परिहार एवं प्रतिरोध,

6 आत्म-पुनर्मूल्यांकन- समस्या के सन्दर्भ में अपने विचार और अनुभूति का पुनर्मूल्यांकन,

7 परिवेशीय पुनर्मूल्यांकन- भौतिक परिवेश पर अपनी समस्या के प्रभाव का मूल्यांकन ,

8 पुनर्बलन प्रबन्धन- परिवर्तन के लिए स्वयं को पुरस्कृत करना या पुरस्कार पाना,

9 नाटकीय अभिव्यक्ति- समस्या और समाधान सम्बन्धी अनुभूतियों का अनुभव करना/अभिव्यक्त करना,

10 सहायता सम्बन्ध- सहायता करने वालों के प्रति खुलापन रखना एवं विश्वास करना।

परिवर्तन की चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है-

1 विचार पूर्ण अवस्था- समस्या का बोध नहीं,

2 विचार अवस्था- समस्या का बोध होना,

3 कार्य अवस्था- परिवर्तन के लिए निश्चयन, परिवर्तन के लिए कार्य करना,

4 अनुरक्षण अवस्था- परिवर्तन को सबल करना तथा नयी दक्षताओं का विकास।

परिवर्तन के लिए पाँच स्तरों का भी वर्णन किया गया है-

1 लक्षण/पारिस्थितिक- समस्याओं की प्रस्तुत विशेषताएं,

2 कुसमयोजनात्मक संज्ञान अनुपयुक्त विचार एवं विश्वास,

3 वर्त्तमान अंतर्वैयक्तिक द्वन्द- सम्बन्ध समस्याएं,

4 परिवाए/ व्यवस्था द्वन्द- तात्कालिक व्यवस्था की समस्याएँ,

5 आतंरिक द्वन्द- स्व के अन्दर की समस्याएँ।

प्रायः प्रथम स्तर की समस्या के लिए व्यावहारिक हस्तक्षेप, कुसमयोजनात्मक संज्ञान परिवर्तन के लिए संज्ञानात्मक प्रविधियाँ, तीसरे और चैथे (अंतर्वैयक्तिक/पारिवारिक द्वंदों) स्तर के लिए व्यवस्थागत हस्तक्षेप तथा व्यक्ति के स्व के अन्दर की समस्याओं के लिए मनोचिकित्सा की निति अपनाई जाती हैं।

विभिन्न अवस्थाओं में से पूर्व विचार अवस्था के लिए शिक्षा, सेल्फ मॉनिटरिंग, अन्वेषण, तादात्मीकरण की विधियां प्रयुक्त की जाती हैं। कार्य अवस्था के लिए संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक हस्तक्षेप विधियाँ प्रयुक्त करके आत्म-प्रभाव का संवर्धन किया जाता हैं। अनुरक्षण अवस्था के लिए वैकल्पिक पुनर्बलन प्रणाली, नयी जीवन शैली, प्रति अनुबंधन, उद्दीपक नियंत्रण और आतंरिक द्वंदों के समाधान की प्रविधियों/विधियों को प्रयुक्त किया जाता हैं।

12.9 एच. आई. वी/एड्स परामर्श

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के युग में मानव जीवन के लिए दीर्घकाल तक टी0 बी0, मलेरिया कैंसर तीन अविजित चुनौतियाँ मानी गयी जिनसे बचाव के कारगर उपाय विकसित करने के क्रम में अभी भी प्रयास जारी हैं। तब तक एच आई वी/एड्स के रूप में एक नयी चुनौती प्रकट हो गयी जिसके विषय में आरम्भ में यह माना गया कि किसी व्यक्ति को एड्स होना उसके लिए मृत्यु दण्ड के आदेश पर हस्ताक्षर कर दिए जाने जैसा हैं। हालाँकि आज स्थिति इतनी विकराल नहीं है किन्तु समस्या अभी भी गंभीर बनी हुई हैं।

एड्स (AIDS: Acquired Immune Deficieny Syndrome) रोग प्रतिरोध की हमारी स्वाभाविक क्षमता को निर्बल बनाने वाला अर्जित रोग संलक्षण हैं। एड्स के फलस्वरूप जब रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है तब हम रोगों को तीक्रता से ग्रहण करने लग जाते हैं। एड्स का संक्रमण HIV (Human Immuno-deficiency Virus½ श्रेणी के विषाणु के मानव शरीर में प्रवेश करने से होता हैं। एच आई वी का संक्रमण विषमलिंगी या समलिंगी यौनिक सम्बन्ध स्थापित करने अथवा एच आई वी संक्रमित व्यक्ति के रक्त का स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में संचार से होता हैं।

एच आई वी/एड्स का उपचार अभी भी जन-सामान्य के लिए सहज व सुगम नहीं हो पाया हैं। एच आई वी/एड्स से बचाव के लिए आकर्षक एवं सरल उपाय का अभाव, उपचार के लिए औषधियों का अभाव, इनके अतिरिक्त इस रोग के साथ जुड़े लांछना तथा जीव के लिए गंभीर खतरों के कारण पीड़ित व्यक्ति, उसके परिवार, सम्बन्धियों एवं मित्रों के समक्ष मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक स्तरों पर अनेक गंभीर संकट उत्पन्न होते हैं अतः इन सभी लोगों के लिए विविध स्तरों पर परामर्शन आवश्यक हो जाता हैं।

एड्सः व्यक्ति के लिए शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं सामाजिक आघात

एच आई वी/एड्स संक्रमित व्यक्ति को शारीरिक चुनौतियों के अतिरिक्त जीवन के सभी आयामों पर संकट का सामना करना पड़ता हैं। कुछ प्रमुख चुनौतियों को निम्नवत प्रस्तुत किया गया है -

1 व्यक्ति समाज एवं परिवार द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाता है, उसे सामाजिक लांछन का सामना करना पढ़ता हैं।

2 व्यक्ति अपनी दशा के लिए अत्यधिक आत्मग्लानि, पापबोध से पीड़ित देखा जाता हैं।

3 प्रायः पीड़ित व्यक्ति को नौकरी से अलग कर दिया जाता है और इस प्रकार उसे आर्थिक क्षति उठानी पड़ती हैं।

4 पीड़ित व्यक्ति के समक्ष नयी समायोजनात्मक चुनौतियाँ प्रकट होती हैं।

5 व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थ्य के विकास में इच्छा शक्ति की भूमिका होती हैं। एड्स से पीड़ित व्यक्ति में प्रायः जीवन के लिए इच्छा शक्ति का आभाव पाया जाता हैं।

12.10 एच आई वी/एड्स में मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप

एच. आई. वी./एड्स से प्रभावित व्यक्ति संक्रमण की पहचान होने के समय से ही अनेक समस्याओं का सामना कराता हैं। प्रथम उसे यह लगता है कि उसके मृत्यु दण्ड के आदेश की पुष्टि हो चुकी हैं। द्वितीय, वह सामाजिक/नैतिक स्तर पर लांछित किया जाता हैं। तृतीय, परिवार, मित्रों, सहकर्मियों आदि द्वारा सामाजिक स्तर पर बहिष्कृत कर दिया जाता हैं। यहाँ तक की उस व्यक्ति के उपचार से सरोकार रखने वाले लोग भी उपेक्षा करते हैं। चतुर्थ, उपचार की ऊँची कीमत के कारण उसके समक्ष आर्थिक संकट प्रकट होता हैं। उक्त सभी के संयुक्त प्रभाव का सामना कर पाने के लिए पीड़ित व्यक्ति को परामर्शन सहायता की आवश्यकता होती हैं। व्यक्ति की पहली आवश्यकता ऐसे स्वैच्छिक संगठनों के विषय में जानकारी प्राप्त करना होता है जो उसे विभिन्नप स्तरों पर सहायता प्रदान कर सकते हैं। वस्तुतः एच आई वी/एड्स की जाँच होने से पहले ही मनोवैज्ञानिक परामर्शन की आवश्यकता समुत्पन्न हो जाती है क्योंकि पहले तो व्यक्ति को एच आई बी/एड्स की जाँच सम्बन्धी विचार/प्रस्ताव के साथ ही समायोजित होना पड़ता है तथा परीक्षणोंपरांत आने वाली किसी अशुभ सूचना का सामना कर पाने के लिए भी तैयार होना पड़ता हैं। परीक्षण से पूर्व सभी प्रार्थियों को मनोवैज्ञानिक परामर्शन एक नियमित प्रक्रिया के अधीन आवश्यक रूप से उपलब्ध कराया जाना चाहिएद्य (Bernard Ratigan, 2000). ऐसा परीक्षण कराने के विचार मात्र से अधिकतर व्यक्तियों में संवेगिक संकट प्रकट हो जाता हैं। ऐसे व्यक्ति भी एच आई वी/एड्स के भय से ग्रसित पाए जाते हैं जोकि संक्रमण मुक्त होते हैं। ऐसा भय मनोविक्षिप्तता या मनोग्रस्तता बाध्यता का परिणाम भी हो सकता हैं। ऐसे प्रार्थी के लिए संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक उपचार पद्धति उपयुक्त मानी जाती हैं। एच. आई. वी./एड्स से पीड़ित व्यक्तियों के समक्ष जब अलग-थलग कर दिए जाने का संकट आता है तब परामर्शदाता का कर्त्तव्य उपलब्ध सेवाओं का सदुपयोग सहज बनाना होता हैं।

एच आई वी/एड्स के उपचार के लिए अनेक ऐसी कारगर औषधियों का अब विकास हो चुका है जो जीवन की संभावना को प्रबल करते हैं। किन्तु ऐसा पाया गया है कि जिन व्यक्तियों में स्वयं को मनोवैज्ञानिक स्तर पर संगठित करने की सामर्थ्य होती है वे उपचार अधिक अच्छे ढंग से स्वीकार करते हैं। परामर्शन सहायता के फलस्वरूप व्यक्ति लम्बी आयु से सम्बंधित चुनौतियों का सामना कर सकता हैं।

एच. आई. बी./एड्स परामर्शन/उपचार के क्षेत्र में मानवतावादी, संज्ञानात्मक अस्तित्ववादी एवं सर्वाग उपागम अधिक प्रयुक्त होता हैं। प्रार्थी को जिस प्रकार परिवार/प्रणालीगत स्तर पर सहायता की आवश्यकता होती है उसे देखते हुए सर्वांग उपागम की उपयोगिता महत्वपूर्ण हो सकती हैं। चूँकि समस्या का मौलिक समाधान विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा किया जाना होता है अतः परामर्शदाता/मनोपचारक को कार्यदल के सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य करने की आवश्यकता होती हैं।

एच. आई. वी. संक्रमित व्यक्ति परीक्षणोंपरांत सर्वप्रथम परिणाम के बारे में अविश्वास की प्रतिक्रिया से आरम्भ करता है किन्तु तत्पश्चात यह पूरी तरह टूट जाने की अवस्था में पहुँचता हैं। परामर्शन कार्य द्वारा उसे अपनी दशा का सृजनात्मक रूप में सामना करते हुए लम्बी आयु तक सफलता पूर्वक जीवन यापन करने की दशा में सहायता दी जा सकती हैं। व्यक्ति के समक्ष जीवन के संकट के फलस्वरूप खतरे एवं चुनौतियाँ दोनों ही प्रकट होती हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए निराशा, असहायता जैसी नकारात्मक अनुभूतियाँ उपयुक्त नहीं होती हैं। सामाजिक स्तर पर क्या उचित और अनुचित है इस विषय का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता हैं। व्यक्ति के लिए आत्मग्लानि एवं लज्जा की अनुभूति से बाहर आने की आवश्यकता होती हैं। मनोपचार/परामर्शन के अंतर्गत इस विषय में कार्य किया जा सकता हैं। प्रार्थी के लिए समग्र प्रयास में गोपनीयता अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं।

कुछ प्रार्थी द्वारा आत्महत्या, ऐच्छिक मृत्यु की माँग जैसे विचार प्रस्तुत किया जा सकता है, वे अपनी वसीयत तैयार कराना चाहते हैं। ऐसे सन्दर्भ में परामर्शन कार्य का उद्देश्य लम्बी आयु के लिए संघर्ष हेतु प्रार्थी को तैयार करना होना चाहिए क्योंकि जीवन समापन एवं जीवनोपरांत विषयों पर विचार-विमर्श से उपचार एवं समायोजन कार्य प्रभावित होता हैं।

12.11 व्यसन/चिंता परामर्श

व्यसन या औषधि व्यसन वर्त्तमान समाज के लिए, विशेषकर हमारी युवा पीढ़ी के लिए एक गंभीर चुनौती हैं। यह चुनौती प्राचीनकाल से अस्तित्व में रही है किन्तु अब औषधि व्यसन की वृत्ति व्यापक होकर भयावह रूप धारण कर चुकी है, अतः अधिक चिंतनीय हैं। इस समस्या के विवरण में औषधि व्यसन, औषधि निर्भरता, औषधि या पदार्थ कुप्रयोग पयोग जैसे विविध शीर्षक प्रकट होते हैं।

"कोई औषधि (प) साधारणतः ऐसे पदार्थ के रूप में परिभाषित की जाती है जिसका सेवन पोषण के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से किया जाता है तथा इसकी विवेचना उस दशा में की जाती है जब इसका सेवन हमें व्यसन की ओर ले जाता है तथा हमारी शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक कुशलता में पर्याप्त कमी आती हैं। (Phil and Peterson, 1992). इस प्रकार औषधि व्यसन साधारणतः व्यक्ति द्वारा चिंता, तनाव या पीड़ा के प्रतिरोध के लिए अथवा आनंदानुभूति के लिए बिना किसी उपचारात्मक उपयोग के अथवा चिकित्सकीय परामर्श के बिना स्वयं के स्तर पर किया जाने वाला उपयोग हैं। औषधि उपयोग से आरम्भ हुआ व्यवहार औषधि दुछपयोग में परिवर्तित हो जाता है एवं लम्बे समय तक दुषपयोग होने पर दुरूपयोग में लायी जा रही औषधि के लिए निर्भरता उत्पन हो जाती है, व्यक्ति में उस औषधि की लत लग जाती है, व्यक्ति औषधि व्यसनी बन जाता हैं।

औषधि व्यसन के कारण

औषधि व्यसन के कारणों को प्रस्तुत करने वाले मॉडलों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है-

(i) बायोपैथोलॉजिकल जेनेटिक मॉडल

(ii) साइकोपैथोलॉजिकल तथा पर्सनालिटी मॉडल एवं

(iii) सोशल तथा बिहेवियरल मॉडल. (राखी श्री0 एवं आर0एस0 सिंह, 1993).

बायोपैथोलॉजिकल जेनेटिक मॉडल के अनुसार जेनेटिक विकृति सम्बन्धी कारणों से औषधि व्यसन की संभावना बढ़ जाती हैं। इस मॉडल के दूसरे रूप में औषधि व्यसन का कारण दैहिक कारकों में निहित बताया गया हैं। गूड़विन एवं उसके सहयोगियों ने पाया कि जैविक पिता में मद्यपान की आदत होने पर बच्चों में उन्हीं परिवारों द्वारा गोंद लिए गए बच्चों की तुलना में मद्यपान की संभावना चार गुना अधिक थी। दैहिक सहचरों के आधार पर औषधि व्यसन की मात्र में वृद्धि की व्याख्या संभव हो पायी है किन्तु यह व्याख्या करना संभव नहीं हो पाया है कि आखिरकार कोई व्यक्ति औषधि व्यसन क्यों करता हैं।

साइकोपैथोलॉजिकल तथा पर्सनालिटी मॉडल में व्यक्तित्व की विशेषताओं अर्थात व्यक्तित्व शीलगुणों को औषधि व्यसन की प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी बताया गया हैं। इसके अनुसार व्यक्तित्व में निहित व्यक्तित्व शीलगुण या मनोविकृति व्यक्ति में ऐसे संवेग विकसित करते हैं जिनके प्रभाव में (जिससे मुक्त होने के लिए) व्यक्ति औषधियों का दुरुपयोग करता हैं। इस सिद्धांत के अनुसार औषधि व्यसन व्यक्ति के व्यक्तित्व में निहित मनोवैज्ञानिक विकृति का एक लक्षण मात्र हैं। इस प्रकार इस मॉडल के अनुसार औषधि व्यसन की समस्या का समाधान करने के लिए अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक विकृति को दूर किया जाना चाहिए,

सोशल तथा बिहेवियरल मॉडल के अनुसार औषधि व्यसन सामाजिक परिवेश के प्रभाव में सीखा गया व्यवहार हैं। हमारे समुदाय/समूह द्वारा अनेक प्रकार के व्यवहारों का प्रबलन (Reinforcement) अनेक व्यवहारों के सीखने का आधार होता हैं। मद्यपान एवं औषधि व्यसन ऐसे ही समाज अधिगमित व्यवहार हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक, व्यावसायिक समारोहों में औषधि व्यसन का बढ़ता प्रचलन इसी व्याख्या के अनुरूप घटित हो रही घटना हैं।

यदि उपर्युक्त सैद्धांतिक प्रारूपोंध् मॉडल्स में निहित चरों को सूचीबद्ध किया जाय तो शोध अध्ययनों में प्रकट होने वाले औषधि व्यसन के प्रमुख निर्धारक अधोवर्णित श्रेणी के हो सकते हैं-

1 औषधि की सहज उपलब्धता- औषधियों के सहज उपलब्धता का कारण आर्थिक लाभ, अपराध जगत का लाभय किसी व्यक्ति, समूह या समुदाय को पथभ्रष्ट करने की राजनीती में निहित हो सकता है किन्तु निश्चय ही सहज उपलब्धता औषधि व्यसन को बढ़ावा देती हैं।

2 औषधि सेवन का धर्मध्पंथ की मान्यता के अनुरूप होना- कतिपय धार्मिक/पंथिक समूहों के लिए गाँजा, चरस, भाँग, पान, मद्यपान का उपयोग उनके अनुष्ठान का अंग होता है अथवा सदस्यों के द्वारा उन पदार्थों के सेबन को स्वीकृति मिली होती हैं। इस प्रकार की धार्मिक स्वीकार्यता औषधि सेवन को प्रोत्साहित करती हैं।

3 प्रतिरूप अधिगम (**Model learning**)- हमारे युवाओं पर प्रमुख सामाजिक प्रतिरूपों (नेता, अभिनेता, मॉडल, ऐतिहासिक पात्र) का गहरा प्रभाव पड़ता हैं। बच्चे एवं युवक मॉडल के व्यवहार का अनुकरण की प्रणाली द्वारा अधिगम करते हैं। यदि बच्चों/युवकों को वास्तविक जीवन संपर्क द्वारा अथवा चलचित्र के माध्यम से मॉडल को औषधि सेवन करते हुए देखा जाता है तो उनके अन्दर ऐसे व्यवहार कि सम्भावना प्रबल हो जाती हैं।

4 समूह का दबाव (**Peer Pressure**)- किशोरावस्था में हम अपने मित्रों को अन्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। यदि संपर्क में रह रहे मित्रों में औषधि व्यसन का प्रचलन है तो उनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दबाव में व्यक्ति औषधि दुरूपयोग आरम्भ कर देता हैं।

5 कुंठा एवं द्वन्द- व्यक्तित्व से सम्बंधित चरों में कुंठा एवं द्वन्द तथा इनके कारन उत्पन्न चिंता एवं तनाव ऐसे प्रमुख मनोवैज्ञानिक चर हैं जिनकी अधिकता होने पर व्यक्ति के लिए औषधि व्यसन की दिशा में अग्रसर होने की प्रायिकता बढ़ जाती हैं। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन की समस्याओं का प्रत्यक्ष समाधान नहीं कर पाता है तब उन समस्याओं के कारण उत्पन्न हो रहे नकारात्मक संवेगों से बचने के लिए व्यक्ति औषधि सेवन की दिशा में अग्रसर हो जाता हैं।

6 उत्तेजना का अन्वेषण- जुकरमैन (Zuckerman, 1979, 1983, 1999) ने व्यक्ति में उत्तेजना अन्वेषण आयाम का वर्णन किया हैं। कुछ लोग इस प्रवृत्ति के कारण अत्यधिक उत्तेजित करने वाले खेल, करतब या ऐसी ही अन्य गतिविधियों में सम्मिलित होते पाए जाते हैं। ऐसे ही एक अन्य शोध (Frank H. Farley, 1990) ने मनोवाज्ञानिक अभिप्रेरणा का टाइप-टी सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें टी का अर्थ रोमांच अन्वेषण हैं। इस प्रकार की विशेषताओं का गहरा सम्बन्ध औषधि व्यसन से हैं।

7 कल्पनालोक की विचरणशीलता- कुछ लोग वास्तविक जीवन से दूर अवास्तविकता से सम्बंधित संसार का अन्वेषण करना चाहते हैं। इस प्रयत्न में व्यक्ति हैलुसिनोजेन के सेवन की ओर अग्रसर होता हैं।

8 विद्रोह का स्तर- कुछ व्यक्ति व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उनके द्वारा वर्जित पदार्थों के सेवन की दिशा में अग्रसर होते हैं।

9 दुष्प्रभाव के विषय में अज्ञानता- कुछ बच्चे/युवक औसधियों के कुषप्रभाव को भली प्रकार नहीं जानते हैं और अज्ञानतावश औषधियों का उपयोग आरम्भ करते हैं जो दुरूपयोग और व्यसन में परिवर्तित हो जाता हैं।

10 दर्द निवारक के रूप में दुरुपयोग- कुछ लोग अपनी शारीरिक थकान की अनुभूति को दूर करने के लिए औषधियों के उपयोग/दरुपयोग की आदत विकसित कर लेते हैं।

11 पार्थक्य/बिलगाव- पोप एवं अन्य (1990) ने अमेरिकियों समाज के कॉलेज विद्यार्थियों में औषधि व्यसन का अध्ययन किया. इस अध्ययन में यह प्रकट हुआ कि पार्थक्य के आधार पर 1969 में औषधि सेवन करने वालों को औषधि सेवन नहीं करने वालों से अलग किया जा सका.

औषधि व्यसन के बचाव के उपाय-

औषधि व्यसन से बचाव के उपाय निम्नवत प्रस्तुत हैं-

औषधि व्यसन का आरम्भ औषधि उपयोग से होता है और परिहार या बचाव के लिए औषधि उपयोग की प्रक्रिया आरम्भ होने के लिए जिम्मेदार कारकों के प्रभाव को नियंत्रित अथवा सिमित करना होगा। किशोरों एवं नवयुवकों को औषधि के अवैध सेवन के लिये निर्धारित दण्ड एवं शारीरिक कुप्रभाव के विषय में शिक्षित किये जाने की आवश्यकता होती हैं। जब बच्चे सांवेगिक असुरक्षा की अवधि में हों तब उन्हें समुचित सां वेगिक संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

औषधि व्यसन से बचाव के लिए कुछ सकारात्मक प्रयास भी महत्वपूर्ण हो सकते हैं। पार्थक्य (Alienation) औषधि व्यसन का कारण बन जाता हैं। पार्थक्य का विपरीत घटक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शामिल होना होता हैं। अतः किन्हीं जीवन क्षेत्रों में सहभागिता बढाने के प्रयत्न किये जा सकते हैं जिससे यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि पार्थक्य में कमी आएगी और इस प्रकार औषधि व्यसन की सं भावना को कम किया जा सकेगाद्य योग एवं ध्यान जैसी प्रणालियों का अभ्यास करते हुए स्वास्थ्य को विकसित करने के प्रयास में सम्मिलित होने पर युवक स्वतः स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाने वाले तत्वों से अपना बचाव करने लगेंगे।

औषधि व्यसन की समस्या के लिए उपचार-

गपी एवं वुड्स (2000) ने औषधि व्यसन के उपचार हेतु नार्कोटिक एनानिमस/अल्कोहलिक एनानिमस उपागम, क्षति न्यूनीकरण उपागम एवं मनोवैज्ञानिक परामर्शन उपागम का वर्णन किया हैं। अल्कोहलिक एनानिमस और उसके प्रारूप के आधार पर विकसित नारकोटिक्स एनानिमस के उपचारात्मक उपागम में सम्मिलित प्रमुख प्रविधियाँ कुछ बातों पर विशेष ध्यान देती है-

(i) उपचार प्रक्रिया में किसी व्यक्ति को ‘‘व्यसनी‘ जैसा नामकरण नहीं दिया जाना चाहिए,

(ii) शरीर में विद्यमान औषधि अवशेष के विषैले एवं आपूर्ति की माँग उत्पन्न करने वाले प्रभाव को डीटोक्सिफीकेशन (क्मजवगपपिबंजपवद) के माध्यम से दूर करना चाहिए

(iii) यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि व्यक्ति स्वयं को नियंत्रित कर पाने में अक्षम है,

(iv) व्यक्ति द्वारा किसी उपचारक या मनोपचारक को अधिक सक्षम व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए,

(v) व्यक्ति की उपचार प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी प्रोत्साहित की जानी चाहिए

(vi) प्रार्थी व्यक्ति को अपनी कमियों की जानकारी होनी चाहिए तथा उसे दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए

(vii) उपचारात्मक प्रक्रिया में सम्पूर्ण परिवार को सम्मिलित किया जाना चाहिए

(viii) उपचार प्रक्रिया को अनेक आयामोंः साईकियाट्रिक, साइकोलॉजिकल, आध्यात्मिक, सामाजिकः पर ध्यान देना चाहिए,

(ix) उपचार प्रक्रिया दीर्घकालिक होनी चाहिए, जिसमें जीवन के लिए आशा का तत्व सम्मिलित होना चाहिए।

(x) ऐसे व्यक्तियों में अपने जैसे अन्य व्यक्तियों की सहायता करने के लिए समर्पण/वचनबद्धता होनी चाहिए।

क्षति न्यूनीकरण उपागम का अभिग्रह यह है कि औषधि का दुरुपयोग करने वाले व्यक्तियों का उपचार उनकी शर्तों पर किया जाना चाहिएद्य इसके प्रथम चरण में औषधि सेवन की मात्रा को स्थिर किया जाता है अर्थात मात्रा को बढ़ने से रोका जाता हैं। अगले चरण में स्थिर मात्रा को घटाया जाता हैं। प्रायः उपचार की पूरी अवधि में मनोपचार प्रदान किया जाता हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं की भी सहायता ली जाती है तथा समस्या केन्द्रित निर्देशात्मक परामर्शन प्रक्रिया में उनकी सहभागिता हो सकती है, यद्यपि कि इस उपागम की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह प्रक्रिया व्यक्ति को औषधि व्यसन की वर्त्तमान

मात्रा को बनाये रखने के लिए प्रोत्साहित करती है किन्तु दूसरी दृष्टि से विचार करने पर यह प्रक्रिया कहीं अधिक यथार्थवादी प्रकट होती हैं।

औषधि व्यसन के मनोपचार हेतु मुख्यतः संज्ञानात्मक-व्यवहारात्मक उपागम एवं आरईबीटी (REBT) उपागम का उपयोग किया जाता हैं। अनुबंधन आधारित प्रक्रियाओं की श्रेणी में

(i) प्रच्छन्न विलोप (Covert extinction)

(ii) विरुचिकारक प्रति अनुबंधन (Aversive counter conditioning) एवं

(iii) प्रच्छन संवेदीकरण (Convert sensitization)

प्रमुख लाभकारी प्रविधियां हैं। (फहमिदा जैदी एवं आर एस सिंह, 1993)।

औषधि व्यसन उपचार प्रक्रिया का एक अन्तरंग पक्ष पुनरावृत्ति की समस्या का प्रबंधन है (Marlatt and Grdon 1985). यदि किसी व्यक्ति की यह जीवन शैली बन गयी है कि वह जीवन की समस्याओं तथा तनाव का सामना करने से बचाता है तथा औषधि सेवन के शरण में तनाव से विश्रांति का अन्वेषण करता है तो उसके द्वारा उपचारोपरांत पुनः सेवन आरम्भ किये जाने की संभवना प्रबल होती हैं। ऐसे व्यक्ति को तनाव प्रबंधन सीखना, जीवन की समस्या का डटकर सामना करने की प्रवृत्ति विकसित करना उपयोगी होगा.

12.12 सारांश

समाधान केन्द्रित परामर्श विधि के अधिगामोपरांत परामर्शदाता अपने अनुभव के आधार पर स्वयं की विधि/पैटर्न विकसित करता है तथा प्रयोग करता हैं। यद्यपि कि वाद्य यन्त्र बजाना सीखने की भाँती इसमें भी बुनियादी कौशलों से शुरू करना अनिवार्य होता हैं। ठीक इसी प्रकार साक्षात्कार का प्रवाह महत्वपूर्ण हैं। यदि कोई परामर्शदाता अजूबा प्रश्न, या मापनी या प्रतिशत प्रयोग करता है तो परामर्शदाता बिना पारंपरिक अनुक्रम का अनुकरण किये एक बार में ही प्रकरण पर पहुँच सकता हैं। मापनियों या उद्देश्यों से सम्बंधित प्रश्नों के उत्तर इतने विस्तृत एवं सकारात्मक हो सकते हैं कि अजूबा प्रश्नों की आवश्यकता ही न हो।

उत्तर आधुनिकतावाद के कारण ऐसे सामाजिक वैचारिक परिवेश की रचना हुई जिसके कारण परामर्शन मनोविज्ञान के क्षेत्र में समन््वायन एक प्रभावशाली आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ हैं।

इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले परामर्शन प्रारूपों में से प्रमुख प्रारूप निम्नवत हैं-

1.संज्ञानात्मक-विश्छेषणात्मक उपागम

2. बहुआयामी उपचार

3. दक्ष-सहयोगी प्रतिरूप

4. पार-सैद्धांतिक उपागम

एच आई वी संक्रमित व्यक्ति परीक्षणोंपरांत सर्वप्रथम परिणाम के बारे में अविश्वास की प्रतिक्रिया से आरम्भ करता है किन्तु तत्पश्चात यह पूरी तरह टूट जाने की अवस्था में पहुँचता हैं। परामर्शन कार्य द्वारा उसे अपनी दशा का सृजनात्मक रूप में सामना करते हुए लम्बी आयु तक सफलता पूर्वक जीवन यापन करने की दशा में सहायता दी जा सकती हैं। व्यक्ति के समक्ष जीवन के संकट के फलस्वरूप खतरे एवं चुनौतियाँ दोनों ही प्रकट होती हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए निराशा, असहायता जैसी नकारात्मक अनुभूतियाँ उपयुक्त नहीं होती हैं। सामाजिक स्तर पर क्या उचित और अनुचित है इस विषय का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता हैं। व्यक्ति के

लिए आत्मग्लानि एवं लज्जा की अनुभूति से बाहर आने की आवश्यकता होती हैं। मनोपचार/परामर्शन के अंतर्गत इस विषय में कार्य किया जा सकता हैं। प्रार्थी के लिए समग्र प्रयास में गोपनीयता अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं।

कुछ प्रार्थी द्वारा आत्महत्या, ऐच्छिक मृत्यु की माँग जैसे विचार प्रस्तुत किया जा सकता है, वे अपनी वसीयत तैयार कराना चाहते हैं। ऐसे सन्दर्भ में परामर्शन कार्य का उद्देश्य लम्बी आयु के लिए संघर्ष हेतु प्रार्थी को तैयार करना होना चाहिए क्योंकि जीवन समापन एवं जीवनोपरांत विषयों पर विचार-विमर्श से उपचार एवं समायोजन कार्य प्रभावित होता हैं।

औषधि व्यसन उपचार प्रक्रिया का एक अन्तरंग पक्ष पुनरावृत्ति की समस्या का प्रबंधन है (Marlatt and Grdon, 1985). यदि किसी व्यक्ति की यह जीवन शैली बन गयी है कि वह जीवन की समस्याओं तथा तनाव का सामना करने से बचाता है तथा औषधि सेवन के शरण में तनाव से विश्रांति का अन्वेषण करता है तो उसके द्वारा उपचारोपरांत पुनः सेवन आरम्भ किये जाने की संभवना प्रबल होती हैं। ऐसे व्यक्ति को तनाव प्रबंधन सीखना, जीवन की समस्या का डटकर सामना करने की प्रवृत्ति विकसित करना उपयोगी होगा।

12.13 शब्दावली

- **MSFBT:** Solution Focused Brief Therapy (समाधान केन्द्रित संक्षिप्त उपचार)
- एच आई वी **(HIV)** Human Immuno-deficiency Virus
- एड्स **(AIDS)** Aquired Immune Deficiency Syndrome
- औषधि व्यसनः औषधि व्यसन साधारणतः व्यक्ति द्वारा चिंता, तनाव या पीड़ा के प्रतिरोध के लिए अथवा आनंदानुभूति के लिए बिना किसी उपचारात्मक उपयोग के अथवा चिकित्सकीय परामर्श के बिना स्वयं के स्तर पर किया जाने वाला उपयोग है।

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाधान केन्द्रित परामर्श से आप क्या समझते हैं? समाधान केन्द्रित परामर्श के सन्दर्भ को प्रभावित करने वाली मान्यताओं का वर्णन कीजिये।

2. समन्वयवादी परामर्श क्या है? इसमें प्रयुक्त उपागमों पर प्रकाश डालें।

3. एच आई वी/एड्स परामर्श से आप क्या समझते हैं? एच आई वी/एड्स में मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप के महत्त्व को स्पष्ट कीजिये।

4. औषधि व्यसन को स्पष्ट कीजिये तथा इस समस्या के उपायों का वर्णन कीजिये।

12.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

- चौहान, विजयलक्ष्मी एवं जैन, कल्पना (2014), निर्देशन एवं परामर्श, अंकुर प्रकाशन, उदयपुर,
- राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.

- राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.

2. सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- चौहान, विजयलक्ष्मी एवं जैन, कल्पना (2014), निर्देशन एवं परामर्श, अंकुर प्रकाशन, उदयपुर,
- राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
- राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
- अस्थाना, निधि एवं अस्थाना, बिपिन (2013-14), निर्देशन और उपबोधन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.

इकाई 13— अवसाद, व्यक्तित्व और लिंग पहचान विकृति के लिए संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन (तनाव संरोपण, आत्म-अनुदेशात्मक, आत्म प्रंबधन, समस्या समाधान) (Cognitive Behavior Modification (Stress Inoculation, Self-Instructional, Self management, Problem Solving) for Depression, Personality and Gender Identity Disorder)

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा – अवसाद व्यक्तितव व लिंग पहचान विकृति

13.4 तनाव संरोपण प्रशिक्षण

13.5 आत्म –अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण

13.6 आत्म – प्रबन्धन

13.7 समस्या समाधान चिकित्सा

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.11 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन ,संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का ऐसा उपागम है जो नकारात्मक स्व बातचीत तथा सकारात्मक स्व बातचीत पर ध्यान केन्द्रित करता है । संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा का उद्देश्य जीवन की दिशा को नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर ले जाना होता है । इस संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा में डोनाल्ड मेकेनबाम का महत्वपूर्ण योगदान है ।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

1–तनाव संरोपण को समझ सकेगे ।

2– आत्म –अनुदेशात्मक को समझ सकेगे ।

3 – आत्म प्रबंधन को समझ सकेगें ।

4 – समस्या समाधान को समझ सकेगे ।

13.3 संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा – अवसाद व्यक्तितव व लिंग पहचान विकृति

संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा क्लाइट या व्यक्ति के स्व संवाद पर ध्यान केंद्रित करती है । माइकेनबाम के अनुसार व्यक्ति का स्व –संवाद व्यक्ति के व्यवहार को उतना ही प्रभावित करता है जितना उस व्यक्ति का अन्य लोगों से किया गया संवाद ।

संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा का मुख्य केन्द्र बिन्दु इस बात पर है कि क्लाइट को अपने चिंतन , भावना , व्यवहार तथा दूसरों पर पडने वाले प्रभाव के बारे में जागरूक होना चाहिये ।

बेक के संज्ञानात्मक चिकित्सा के समान इस उपागम की भी मुख्य अभिग्रह है कि सभी दुखद संवेग कुसमायोजित विचारों का परिणाम है । माइकेनबम के उपागम में संज्ञानात्मक पुनर्सरचना बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में व्यवहार परिवर्तन क्रमिक होता है । इसमें पहले क्लाइट स्व – निरीक्षण करता है । इसमें क्लाइट को खुद से संवाद करना होता है । इसके पश्चात क्लाइट को नवीन आंतरिक संवाद करना सिखाया जाता है । इसके पश्चात क्लाइट नयी योग्यता को सीखता है ।

लिंग पहचान विकृति , अवसादी व्यक्तित्व का इलाज संज्ञानात्मक व्यवहार सुधार चिकित्सा के द्वारा आसानी से किया जा सकता है ।

अवसादी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की रूचि जीवन से पूर्णता समाप्त हो चुकी होती है । उसकी भूख कम हो जाती है , नींद अव्यवस्थित हो जाती है दैनिक कार्यों में उसका मन नहीं लगता है ।

संज्ञानात्म व्यवहार सुधार चिकित्सा के द्वारा सर्वप्रथम उन्हें ये सीखाया जाता है कि वे नकारात्मक विचारों तथा भावनाओं से पीडित नहीं है बल्कि वे अपने नकारात्मक स्व संवाद द्वारा अवसाद बढाने में योगदान दे रहे है ।

लिंग पहचान विकृति के बारे में क्ण्ैण्ड.5 में कहा है कि लैंगिक पहचान विकृति एक तरह से व्यक्ति के जन्मजात लिंग तथा उसके द्वारा अनुभव किये जाने वाले लिंग के बीच असंगतता है । वे पुरूष या महिला जो इससे ग्रस्त होते है वे अपने को सामाजिक परंपरा में फिट नहीं पाते है । इससे उनके परिवार व कार्यस्थल में उन्हें अनेक प्रकार तनाव का सामना करना पडता है । इसकी वजह से कभी –कभी ये आत्महत्या तक कर लेते है ।

संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा द्वारा इस बीमारी से ग्रस्त लोगों में स्वयं को लेकर संवाद का प्रशिक्षण दिया जाता है । इसके द्वारा उन्हें अपने विचार , भावनाओं ,कार्यो , शारीरिक प्रतिक्रियाओं के बारे में संवेदनशीलता बढाने का प्रशिक्षण दिया जाता है । जैसे जैसे संज्ञानात्मक सुधार चिकित्सा बढती जाती है , वैसे वैसे क्लाइट अपनी समस्या को नये प्रकाश में देखने लगता है तथा संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा के प्रशिक्षण द्वारा धीरे धीरे वह अपनी लैंगिक भूमिका के बारे में स्वयं से सकारात्मक संवाद करने लगता है ।

13.4 तनाव संरोपण प्रशिक्षण

तनाव संरोपण प्रशिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण अंग संरोपण है। इसका उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक– मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है। संरोपण से तात्पर्य इय बात से है कि चिकित्सक रोगी को तनाव का प्रतिरोध करने के लिये वैसे ही तैयार करता है, जैसे चिकित्सक रोगियों को किसी बीमारी के प्रभाव से बचने के लिये टीका लगाता है।

मनोवृत्ति परिवर्तन के क्षेत्र में मैकगुयेर डबहनूतम 1964 ने यह देखा कि व्यक्ति को यदि पहले से ही किसी अभिवृत्ति संबंधित सूचना प्रदान कर दी जाये तो व्यक्ति सूचना के प्रभाव से सुरक्षित या 'संरोपित' कर सकता है।

चिकित्सा तथा मनोवृत्ति संरोपण में व्यक्ति का प्रतिरोध ऐसे पर्याप्त मजबूत उद्दीपक को प्रदान किये जाने से जो प्रतिरोध प्रकमों को उत्पन्न कर सकता है तथा सुरक्षा प्रक्रम को उत्पन्न करता है, व्यक्ति में प्रतिरोध प्रक्रम को बढ़ावा देता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण सिद्धान्त के अनुसार क्लाइट को यदि तनाव का मध्यम स्तर प्रदान किया जाये तो इससे व्यक्ति की प्रतिरोध क्षमता तथा स्वयं की प्रतिरोधक क्रियाशैली पर विश्वास उत्पन्न होता है। तनाव संरोपण विश्वास उत्पन्न करता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग व्यक्ति की तत्परता को बढ़ावा है तथा श्रेष्ठता को विकसित करता है।

सैद्धान्तिक आधार :– तनाव संरोपण प्रशिक्षण सिद्धान्त लेजारस व फोकमैन द्वारा प्रदान किये गये तनाव तथा प्रतिरोध क्षमता के संयोजन के दृष्टिकोण पर आधारित है। इस माडल के अनुसार तनाव तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति पर आरोपित मार्ग व्यक्ति के पास उपलब्ध संसाधनों (व्यक्ति, परिवार, समूह या समुदाय) से अधिक होती है ऐसा खासतौर पर तब अधिक होता है जब व्यक्ति के कल्याण को निरीक्षित किया जाता है।

तनाव के संबंधात्मक प्रक्रम उन्मुखी दृष्टिकोण के संज्ञानात्मक भावत्मक मूल्यांकन प्रक्रम तथा प्रतिरोध **देता** है।

समन्व्यक दृष्टिकोण के अनुसार तनाव न केवल वातावरण की विशेषता है और न ही केवल व्यक्ति की विशेषता। इसके स्थान पर तनाव व्यक्ति तथा

वातावरण के बीच समन्व्यक, द्विदिशीय तथा गतिशील संबंध रखता है जिसमें व्यक्ति या समूह समायोजित मांगों को अपने पारा उपलब्ध संसाधनो से अधिक समझता है।

तनाव संरोषण प्रशिक्षण से संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण जानकारी संरचित कहानी उपागम ;ब्छच्द्ध से प्राप्त होती है। यह उपागम व्यक्तियों, समूहों तथा समुदाय को एक कहानी कहने वाली संस्था के रूप में देखता हे। ये सभी अपने बारे में , अन्य लोगों के बारे में, संसार के बारे में तथा भविष्य के बारे में कहानी कहते हैं। व्यक्ति की कहानी की प्रकृति तथा कहानी की विषय–वस्तु जो वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में कहते है, वे सभी व्यक्ति के रक्षात्मक प्रक्रम को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। वर्तमान में किये जा रहे अनेक शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि संज्ञान तथा संवेग, तनाव के प्रतिक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। खासतौर से उत्तर प्रतिघात प्रतिबल रोग में इसकी उपयोगिता सिद्ध होती है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण क्या है ?

तनाव संरोपण प्रशिक्षण प्रत्येक व्यक्ति के अनुरूप किया जाता है तथा यह संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का बहुमुखी रूप व तनाव संरोपण प्रशिक्षण तनाव से ग्रस्त लोगों के लिये सामान्य सिद्ध तथा नैदानिक नियमावली प्रदान करती है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण एक रामवाण औषधि नही है तथा यह अन्य चिकित्सा के पूरक का कार्य करती, जैसे लम्बे समय से आघात से ग्रसित रोगियों को यह चिकित्सा प्रदान की जा सकती है।

तनाव संरोपण के तीन चरण होते है–

संप्रत्यात्मक शिक्षण की अवस्था योग्यता का अर्जन तथा समेकन उपयोग तथा पुनः जॉच की अवस्था ये सभी चरण तनाव के स्रोत की प्रकृति पर तथा क्लाइंट की तनाव की प्रतिरोध क्षमता पर निर्भर करता है।

प्रारंभिक संप्रत्यात्मक शिक्षण चरण में क्लाइट व चिकित्साक के मध्य सहयोग संबंध की स्थापना होती है। यह संबंध आधार का कार्य करता है जिससे क्लाइंट को तनाव आसंधको का सामना करने के लिये प्रात्साहित कर सके तथा विभिन्न प्रकार की प्रतिरोधक योग्यताओं का उपयोग प्रशिक्षण सत्रों में कर सके।

चिकित्सीय संबंध के निर्माण तथा उसके अनुरक्षण के अतिरिक्त तनाव संरोपण प्रशिक्षण के इस चरण का दूसरा उद्देश्य क्लाइट की अपने तनाव व प्रतिरोधक स्रोतों की प्रकृति व प्रभावों के बारे में समझ तथा जागरूकता को बढ़ा सकें।

इस शैक्षिक प्रक्रिया के लिये अनेक प्रकार की नैदानिक तकनीकियों का उपयोग किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त यह शैक्षिक प्रक्रिया पूरे तनाव संरोपण प्रशिक्षण में चलती रहती है।

इसमें अनेक प्रकार की नैदानिक तकनीके जैसे सुकरात अन्वेषण आधारित साक्षात्कार, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, प्रतिक्रिया का तरीका, आत्म–निरीक्षण, प्रक्रियाओं तथा फिल्मों के द्वारा माडलिंग आदि का उपयोग जागरूकता तथा व्यक्तिगत नियंत्रण व प्रभुत्व के लिये किया जाता है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण के दूसरे चरण में क्लाइट की सहायता की जाती है कि वह प्रतिरोधक योग्यताओं को प्राप्त कर सके तथा उन सभी प्रतिरोधक क्षमताओं को जो उसके पास पहले से उपस्थित है उनका समेकन कर सके। इस योग्यता प्रशिक्षण चरण का केन्द्रण सामान्यीकरण तथा उपचार के प्रभाव के अनुरक्षण के लिये तथा सामान्यीकरण की प्राप्ति के लिये नियमवली का पालन करना है। चिकित्क केवल सामान्यीकरण के लिये ''प्रशिक्षण तथा उम्मीद'' नही कर सकता। इसके लिये तनाव प्रशिक्षक को आवश्यक रूप से चिकित्सा संबंध में सामान्यीकरण प्रशिक्षण तकनीक का निर्माण करना होता है।

तनाव संरोपण का उपयोग :– इस चरण में क्लाइंट के पास यह अवसर होता है कि वह अपनी सभी प्रतिरोध क्षमताओं का उपयोग कर सके। इसके अंतर्गत कल्पना आदि का प्रयोग किया जाता है। इस चरण की केन्द्रित भूमिका यह होती है कि इसमें पुनरावृर्तन निरोध प्रक्रिया का उपयोग होता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षक क्लाइट के साथ विभिन्न प्रकार के उच्च जोखिम युक्त व पद परिस्थितियों जिन्हें वे अनुभव कर सकते हैं को खोजता है। (अतरवैयक्ति, संघर्ष, आलोचना, सामाजिक दबाव आदि)। इसके पश्चात क्लाइट प्रशिक्षक के साथ सहयोगपूर्ण तरीके से अभ्यास कर सकता है (समूह में अन्य क्लाइट के साथ भी कर सकता है) तथा विभिन्न प्रकार की अंतः तथा अंतर तनाव प्रतिरोध तकनिकियों का प्रयोग किया जा सकता है। पुनरावृर्तन निरोध प्रक्रिया के अतंर्गत, क्लाइट को यह सिखाया जाता है कि वे गिरावट को इस तरह देखे कि वे ''सीखने का अवसर है'' न कि उन्हें आपत्तिजनक रूप में देखे।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण के अंतर्गत महत्वपूर्ण लोगों का साथ तथा वातावरणीय, प्रहस्तलन सम्मिलित है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण में प्रशिक्षक यह मानता है कि क्लाइट जो तनाव महसूस कर रहा है वह स्थानिक होता है, सामाजिक होता है, संस्थागत होता है, तथा टाला नही जा सकता है। उदाहरण के लिये मेंडिकल की परीक्षो की तैयारी में, प्रशिक्षक ने केवल तनाव ग्रस्त अभिभावकों को तनाव प्रतिरोध क्षेमता सीख सकता है बल्कि अस्पताल के कर्मचारियों को भी प्रशिक्षण दे सकता है जिससे अस्पताल तथा चिकित्सकीय तनाव को कम किया जा सके। प्रतिस्पर्धा तनाव खेलों में एक प्रशिक्षक खिलाड़ियों को अपने वार्तापरण के प्रति स्पर्धा के तनाव का सामना कर सकता है, लेकिन खिलाड़ियों के अतिरिक्त प्रशिक्षक खिलाड़ियों के कोच को तथा अभिभावों को भी प्रशिक्षण दे सकता हैं।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण की *विधि* :–

तनाव संरोपण प्रशिक्षण की सबसे बड़ी शक्ति इसका लचीलापन है। इसका उपयोग व्यक्तियों, जोडों, परिवारों तथा छोटे व बड़े समूह में किया जाता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण की समयावधि भिन्न–भिन्न प्रकार की हो सकती है यह 20 मिनट की भी हो सकती है या 1 घंटा प्रतिसाप्ताह भी हो सकती है। इसका उपयोग बार–बार घटित होने वाले मानसिक रोगों से प्रभावित रोगियों पर तथा दीर्घ कालिक चिकित्सकीय समस्याओं से जूझ रहे व्यक्तियों पर की जा सकती है।

संप्रत्यात्मक शिक्षा, योग्यता का अर्जन,समेकन उपयोग का जिस तरह प्रयोग किया जाता है उनमें भिन्नता होती है , जो कि क्लाइट की प्रकृति तथा प्रशिक्षण की समयावधि पर निर्भर करता है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण के व्याख्यात्मक उदाहरण

तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग चिकित्सा तथा बचाव प्रक्रिया दोनों में किया जाता है। इसका उपयोग अनेक प्रकार की जीव संख्या पर किया जाता है जिन्हें उच्च मात्रा में कार्य से संबंधित तनाव रहता है। चिकित्सकीय आधार पर तनाव संरोपण प्रशिक्षण संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक तनाव व्यवस्थापन प्रक्रिया से संबंधित है। इनके अतिरिक्त चिन्ता व्यवस्थापन उपागम, प्रतिरोध योग्यता प्रशिक्षण तथा संज्ञानात्मक भावत्मक तनाव व्यवस्थापन प्रशिक्षण का उपयोग अनेक प्रकार के क्लाइट के ऊपर किया जाता है।

इसका नैदानिक उपयोग निम्न है–

चिकित्सकीय रोगी – ऐसे रोगी जिन्हें विभिन्न प्रकार के तथा दीर्घकालिक र्दद से संबंधित रोग है ऐसे रोगी जिन्हें स्तन कैंसर है तथा उच्च तनाव के रोगी है, जले हुये रोगी, अल्सर के रोगियों तथा गठिया से परेशान रोगियों के लिये यह चिकित्या विधि उपयोगी है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग दाँत के उन रोगियों पर भी किया जाता है जो सर्जरी की तैयारी कर रहे है। इसका उपयोग टाईप । व्यक्तियों पर किया जाता है तथ्याा उन लोागों की भी सहायता करता है जो चिकित्सकीय रूप से बीमार बच्चों तथा व्यस्कों की देखभाल करते है।

मनोचिकित्सकीय रोगी जिनके अन्दर शारीरिक शोषण के फलस्वरूप च्ंेक उत्पन्न हुआ है व्यस्क व किशोर जिन्हें चिन्ता की तीव्र समस्या हो तथा उनमें जो आक्रामक व्यवहार को नियत्रित नहीं कर पाने के लिये भी यह प्रशिक्षण उपयोगी हैं।

वे व्यक्ति जिन्हें निष्पादन से संबधित चिन्ता होती है जैसे सार्वजनिक रूप से भाषण देना तथा उन व्यक्तियों में जिन में जानवरों से संबंधित दुर्भिति है तथा उड़ने से संबंधित दुर्भिति है। ये चिकित्सकीय प्रशिक्षण उपयोग व्यसायिक समूह जैसे अध्यापक, सैन्य कर्मचारियों, मनश्चिकित्सकीय सदस्य तथा आपदा व सुरक्षा कर्मचारियों में इसका उपयोग किया जाता है।

व्यक्ति जिन्हे तनाव पारगमन की स्थिति का सामना करना पड़ता है जैसे बेरोजगारी की स्थिति, या फिर वे किसी जगह का नये परिवर्तन का सामना करते हैं। जैसे हाई स्कूल या कालेज मे पुनः प्रवेश, विदेश में नियोजन अथवासेना में नौकरी पाना आदि के लिये यह प्रशिक्षण विधि काफी उपयोगी है।

संक्षेप में इसके उदय के समय से (1976) से, इसका उपयोग चिकित्सा तथा बचाव के लिये विभिन्न प्रकार की नैदानिक जीवसंख्या पर किया जाता है जो उच्च तनाव व्यवसायिक समूह हैं।

इन विभिन्न जीवसंख्या में से कुछ का वर्णन निम्नलिखित है–

चिकित्सकीय समस्या से संबंधित रोगी– (Patcents with Medical Prohtens)

तनाव संरोपण प्रशिक्षण चिकित्सकीय रोगियों तनाव संरोपण प्रशिक्षण की एक वृहद शैक्षिक पृष्ठभूमि होती है जिसमें रोगी तथा उनकी देखभाल करने वाले की क्रियात्मक तथा संवेगिक सूचना प्रदान की जाती है। इस परीक्षण में रोगी स्वयं की विशेष स्वभाव के अनुसार तनाव प्रतिरोध क्षमता का उपयोग कर सकता है। तनाव प्रतिरोध क्षमताओं के अतंर्गत माडलिग जिसमें काल्पनिक तथा व्यवहारात्मक अभ्यास सम्मिलित होता है, का प्रयोग किया जाता है। इस व्यवहारात्मक अभ्यास में प्रतिपुष्टि का उपयोग किया जाता है। इन सबके साथ यह बात ध्यान देने योग्य है कि तनाव संरक्षिण प्रशिक्षण का उपयोग उम्र के ध्यान में रखते हुये किया जाना चाहिये तथा रोगी के तनाव प्रतिरोध के तरीकों को भी देखना चाहियें। अंत में यह कहा जा सकता है कि तनाव संरोपण प्रशिक्षण में व्यक्ति निष्पादन देखना चाहिये।

तनाव संरोपण का प्रयोग उपचार तथा प्रतिरोध दोनों ही रूपों में किया जा सकता है। इसमें विभिन्न प्रकार के चिकित्सकीय तथा मनोवैज्ञानिक समस्या से ग्रस्त लोगों की जनसंख्या होती है जिनमें व्यवसाय से संबंधित तनाव का अनुभव करने वाले विभिन्न व्यवसायिक समूह होने भी सम्मिलित होते है।

चिकित्सकीय आधार पर तनाव संरोपण संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक प्रबन्धन प्रक्रिया, चिन्ता प्रबंधन उपागम, प्रतिरोध प्रशिक्षण तथा संज्ञानात्मक भावात्मक तनाव प्रबन्धन प्रशिक्षण से निकटवर्ती होता है।

निष्कर्ष :– पिछले कई वर्षो से तनाव संरोपण प्रशिक्षण का विभिन्न प्रकार के तनाव से ग्रस्त जीवसंख्या पर प्रयोग किया गया है। प्रत्येक मामले में तनाव संरोपण का प्रयोग विशिष्ट जीवसंख्या तथा परिस्थिति के अनुसार निर्मित किया जाता है। यह भी स्पष्ट है कि तनाव संरोपण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें अनेक प्रकार के संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा का उपयोग किया जाता है जिसमे क्लाइट के साथ विशिष्ट चिकित्सकी व संबंध बनते है।

मनोशिक्षिकीय विशेषता भी इसमें सम्मिलित है जिसमें सुकरात की अन्वेषण उमुखी जाँच प्रक्रिया सम्मिलित होती है। सहयोगपूर्ण लक्ष्य निर्माण जिससे आशा का संचार होता है तथा स्वीकृति आधारित प्रतिरोध योग्यता प्रशिक्षण को पोषित करता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग लक्षण के आधार पर कर सकते है तनाव संरोपण प्रशिक्षण के बारे में संक्षेप में, तनाव संरोपण तनाव प्रतिरोध की तकनीकियों का मात्र एक ढाँचा नही हैं।

13.5 आत्म अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण

आत्म–अनुनिदेशात्मक एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति का आत्म नियंत्रण शाब्दिक कथनों से किया जाता है जिससे अशाब्दिक कार्यो को निदेर्शित किया जाता है।

मेकिनबाम तथा गडमैन ऐसे प्रथम शोधकर्ता थे जिन्होंने आत्म–नियंत्राण प्रशिक्षण का उपयोग नैदानिक समस्याओं के समाधान के लिये किया। उनका शोध प्रारंभिक विद्यालयी बच्चों जिन्हें जो आवेगी होते है पर आत्म निर्देश का उपयोग को उनके शैक्षिक कार्य को बढ़ावा देने के लिये किया था।

आत्म – अनुकनदेशात्मक प्रशिक्षण एक साक्ष्य आधारित चिकित्सकीय रणनीति है जिसका उपयोग प्रायः संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा के अंग के रूप में किया जाता है इस प्रशिक्षण में व्यक्ति को अनेक प्रकार के आत्म कथनों के बारे में समझाया जाता है जिसका उपयोग या तो व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये किया जाता है या कुछ कार्य करने के लिये किया जाता है।

इसका सैद्धान्तिक आधार लेब बायगोश्टकी तथा अलेक्जेंडर लरिया का कार्य है जिसमें उन्होंने 1980 के अंत में भाषा तथा व्यवहार में कार्यात्मक संबंध बताया था।

आत्म अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के तत्वों खासकर संज्ञानात्मक माडलिंग को समाहित कर तथा साथ ही साथ भाषा के आत्म नियम तथा अंतरिक अभ्यास को भी अतंनिर्हित करता है।

आत्म– अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण के दो तत्व अंग है– संज्ञानात्मक मॉडलिंग तथा आत्म–निदेश । संज्ञानात्मक मॉडलिंग के अंतर्गत चिकित्सक आत्म निदेशशित विचार को आत्म अनुनिर्देश के शाब्दिक रूप में अभिव्यक्त करता है।

अभ्यास तत्व समाहित करता है चिकित्सक या प्रशिक्षक के द्वारा बहस निर्देश तथा बाहस तथा छुपा हुआ आत्म निर्देश। चिकित्सक क्लाइट के व्यवहार को निर्देशित करता है। क्लाइट चिकित्सक के निर्देश को कार्य करते हुये सुनता रहता है। इस द्वितीय चरण को बाहय आत्म निर्देशित शाब्दिकरण कहते है। इसके पश्चात क्लाइट धीरे–धीरे आत्म निर्देशित प्रशिक्षण के अंतर्गत जो प्रशिक्षण किये जाते है उनका उपयोग विभिन्न प्रकार के संज्ञानात्मक कार्यो में किया जाता है। अनेक प्रकार

के शोधो से यह ज्ञात हुआ है कि क्लाइट को यह सीखते है कि उन्हें क्या करना है उन्हें क्या योजना बनानी है? स्वाभाविक रूप से कार्य योजना के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते है तथा प्रच्छन्न माध्यम का उपयोग उन्हें निर्देशित उनका निरीक्षण तथा उनका प्रदर्शन सही करने के लिये करते हैं।

आत्म – निर्देश प्रशिक्षण का विकास

आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण के अंतर्गत सामाजिक अधिगम सिद्धन्त तथा भाषा के आत्म नियंत्रण प्रारूप को समाहित किया जाता है। संज्ञानात्मक मॉडलिंग शोधों से ज्ञात होता है कि मॉडल के द्वारा जो व्यवहार प्रदर्शित किये जाते है वे व्यवहार अवलोकन करने वाले लोगों के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के साथ–साथ माइकहेनबम ने शाब्दिक अधिगम मध्यस्थता जो कि वाइगोस्टकी तथा लुरिया के कार्यो से प्रेरित था को भी इसमें समाहित किया। माइकहेनबम ने मॉडलिंग तथा भाषा मध्यस्थल को पाँच अधिगम सिद्धान्त में जोडा है। –निर्देशक या चिकित्सक ने ऐच्छिक व्यवहार तथा उसके सहयोगी कार्यो को सुनने योग्य विस्तृत,आंतरिक विचारों को संवाद के रूप में प्रस्तुत किया इस चरण में, संज्ञानात्म मॉडलिंग मे एक व्यस्क जोर से बोलते हुये कार्य करता है जबकि एक क्लाइटदेखता तथा सुनता हैं। दूसरे चरण में, मॉडल के आदेशों का अनुकरण करते हुये, क्लाइट उसी काम को अपरोक्ष तथा बाहय निर्देश में करता है। अगले चरण में क्लाइट कार्य को निर्देश को बुदुबुदाते हुये अपरोक्ष निर्देश में करता है। अंततः एक क्लाइट कार्य को आंतरिक भाषण–प्रच्छन्न आत्म–निर्देश के रूप में करता है।

माइकेहेनबम ने आत्म–निदेश प्रशिक्षण का उपयोग अल्य जनसंख्या पर किया। ज्ञात होता है कि इसमें लचीलापन आ सकता है तथा व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप इसका उपयोग किया जा सकता है। माइहेनबम ने यह उपकल्पना गनायी कि आत्म–निर्देश प्रशिक्षण बूढे लोगों पर अधिक उपयोग सिद्ध होता है। जो प्रायः तकेणा व समस्या समाधान में महसूस करते है। इस प्रशिक्षण का उपयोग छोटे–2 बच्चों पर किया गया शाब्दिक रणनीति का उपयोग नही कर पाते है। इस प्रशिक्षण का उपयोग ऐसे लोगों पर किया गया जो सामाजिक रूप से अलग–अलग हो जैसे व्यस्क मनीविदलता से पीड़ित व्यक्ति, फोबिया का अनुभव करने वाले क्लाइट तथा कालेज के विद्यार्थी जो सृजनात्मकता को बढ़ावा चाहते हैं।

आत्म– निर्देशात्मक प्रशिक्षण के तत्व

आत्म–निर्देशात्मक प्रशिक्षण बतलाता है कि आत्म–निर्देश का प्रयोग करते हुये कार्य को किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से किया जाये। आत्म निर्देश प्रशिक्षण में संज्ञानात्मक मॉडल ऐसे चिकित्सकीय तथा कार्य प्रस्तुत करते हैं जो कि किसी कार्य को पूरा करने के लिये आवश्यक है। एक चिकित्सक यह भी विश्लेषित कर सकता है कि क्यों विचार तथा कार्य आवश्यक हैं। आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण क्लाइट को

यह बताता है कि किसी कार्य कासे आत्म निर्देशात्मक विधि से कैसे किया जा सकता है।

आत्म–निदेशात्मक विधि के चरण– आत्म–निर्देशात्मक विधि में किसी व्यक्ति को कोई कार्य स्वयं करने को कहा जाता है जिसे व्यक्ति को करना होता है। ;भ्नहीमेए1997द्ध इसमें क्लाइट के ऊपर निर्देश की जिम्मेदारी होती है न कि चिकित्सक के ऊपर। '' आत्म– संवाद'' के उपयोग से अथवा निर्देश को जोर से बोलने पर निर्देश की जिम्मेदारी चिकित्सक से हटकर क्लाइट के ऊपर आ जाती है। यह विकास सीखना तथा उपयोग की सरल प्रक्रिया है। अतंतः इस प्रक्रिया से क्लाइट अपने जीवन को स्वयं निर्देशित करता है जहॉ उसे निर्देशात्मक लेबल प्राप्त नही होता, जैसे बस में कार्य में अथवा मित्रों के साथ ;भ्नहीमेए1997द्ध आत्म निर्देश आत्म प्रबंधन की एक रणनीति है जो कि व्यक्ति की योग्यता निर्धारण में योगदान करता है। निर्देशात्मक विधि का लक्ष्य व्यक्ति को स्वयं स्वतंत्रता पूर्वक कार्य को पूरा करने में सहायता प्रदान होता है। चूॅकि कोई भी कार्य हमेशा शाब्दिक व्यवहार के नियंत्रण में नही रहता है अतः आत्म–निर्देशात्मक प्रशिक्षण कुछ आरम्भित प्रशिक्षण की मॉग करता है। आत्म–निर्देरूरररत्मक प्रशिक्षण के द्वारा अंतर्गत निम्न चरण सम्मिलित होते है। ये चरण के कार्य से प्रभावित हैं–

चरण – 1 – समस्या की पहचान करना– इस चरण में ऐसी समस्या की पहचान करना होता है जिसका समाधान करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये अगर एक व्यक्ति भूखा है और कुद खाने के लिये चाहता है तो समस्या ये हो सकती है मैं भूखा हूँ।

चरण – 2 – समस्या के लिए संभावित प्रतिक्रियाओं की पहचान –

इस चरण में किसी समस्या का कोई समाधान प्रापत करने की कोशिश की जाती है। यह समाधान परिसिथति पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिये भूख को दिन के समय तथा स्थान के आधार पर भिन्न – भिन्न प्रकार से संबोधित किया जा सकता है। आत्म निर्देशिता का उपयोग दिन के समय या परिसिथित के लिये भी किया जा सकता है। इस केस में, आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण दिन के भोजन से संबधित है। दिन के भोजन के समय भूख लगनेपर एक प्रतिक्रिया हो सकते हैं। '' मैं सैंडविच खाऊॅगा ''।

चरण – 3 – प्रतिक्रिया का मूल्यांकन –

इसमें क्लाइट कह सकता है कि मैने अपने लिये एक सैंडविच निश्चित कर लिया है। इसके पश्चात क्लाइट के लिये यह आवश्यक होता है कि क्या उन्होंने वैसा ही किया जैसा उन्होंने स्वयं को करने के लिये कहा था।

''मैनें अपने लिये सैंडविच निश्चित किया क्योंकि मै भूखा था।''

चरण – 4 आत्म– पुनार्वतन

क्लाइट के लिये यह आवश्यक होता है कि वे शाब्दिक रूप से यह स्वीकृत करें कि उन्होंने कार्य कर लिया है। जैसे '' बहुत अच्छा। अब मैं भूखा नही हूँ।

चरण – 5 शाब्दिक कथनों से मिलान हेतु व्यवहार को प्रशिक्षित करना

एक बार ये विचार पहचान लिये जाते हैं, उसके पश्चात चिकित्सक के लिये आवश्यक हो जाता हे कि वह चरण को क्लाइट के साथ इस चरण को सीखने हेतु अभ्यास करे।

इस पूरी प्रक्रिया की संक्षिप्त रूप रेखा निम्न है–

चिकित्सक कार्य को पहले जोर से बोलते हुये दिखाता है। क्लाइट कार्य को करता है जबकि चिकित्सक उसे जोर से बोलने को कहता है। क्लाइट कार्य को जोर से बोलते हुये करता है।

आत्म– निर्देशात्मक प्रशिक्षण के अंतर्गत किसी कार्य को अनुक्रम में किया जाता है। इसमें क्लाइट किसी कार्य को प्रतिक्रिया को जो बतायेगा जो उससे कर लिया है। वे क्या कर रहे है (अगला), तथा एक निर्देश कि इसे अभी करे।

आत्म–निर्देशात्मक प्रशिक्षण की प्रभावशीलता

माइकहेनबम तथा गुडमैन (1971) नें बच्चों के ऊपर आत्म–निर्देशात्मक प्रशिक्षण का उपयोग किया। इसमें शोधकर्ता का उद्‌देश्य था कि यह जानना था कि क्या बच्चों को आत्म–निर्देश में प्रशिक्षित किया जा सकता है तथा क्या वे इसका उपयुक्त ढंग से अनुपालन कर सकता है। क्या आंतरिक संवाद में मजबूती होती है? क्या शाब्दिक मध्य स्वता का उपयोग उत्पाद तथा घटाव में किया जा सकता है, क्या प्रयोज्य आत्म–पुनर्वतन का उपयोग उपर्युक्त ढंग से कर सकते है। मैहक्बम तथा गुडमैन ने आठ लडकियों तका सात लडकों का चयन द्वितीय कक्षा के बच्चों में से किया। ये बच्चे व्यवहारात्म समस्या से ग्रस्त थे तथा विद्यालय द्वारा किये गया बौद्धिक लब्धि मापन पर कम प्राप्तांक प्राप्त किये थे।

उनकी मध्यमान आयु 8 वर्ष थी। प्रायोगिक मापन में उन मनोमितिकीय उपकरणों का उपयोग किया गया जिससे आवेगी और बच्चों में और अल्य बच्चों में अंतर किया जा सके तथा कक्षा में व्यवहार को मापा जा सके मनोमितिकीय उपकरणों में समाहित थे। च्वतजपने ड्रंम ब्वतजपनेए 1942ए डंजबीपदह थ्ंउपसपंत थ्पहनमे ज्मेज बंहंदए1996द्ध तथा ˆघ्ब्˜मबीसमदए1949द्ध के तीन उपपरीक्षण – च्पबजनतम ।ततंदहमउमदजए ठसवबा कमेपहद तथा ब्वकपदह का उपयोग किया गया। चिकित्सा का सामान्यीकरण कक्षा आधारित प्रक्रियाओं के द्वारा किया गया।

पॉच बच्चों को तीन चिकित्सकीय दशाओं में रखा गया। ये तीन चिकित्सकीय दशायें थी– संज्ञानात्मक प्रशिक्षण (आत्म–निर्देशात्मक प्रशिक्षण) अवधान नियंत्रण तथा मूल्यांकन व मापन नियंत्रण। प्रयोगात्मक स्थिति के अंतर्गत संज्ञानात्मक मॉडलिंग तथा आत्म–निर्देश का प्रच्छन्न अप्रच्छन्न अभ्यास को जारी

रखा गया। प्रशिक्षण कार्यो के अंतर्गत साधारण सांवेगिक गति से लेकर समस्या समाधान कार्यो को रखा गया। कार्य की जटिलता को धीरे–धीरे बढ़ाया गया।

अवधान नियंत्राण के प्रयोज्यों को भी समान प्रयोगकर्ता ने समान समय दिया। उन्हें वही समान सामग्रियॉ दी गयी थी जो आत्म– निदेश के प्रयोज्यों को दी गयी थी। इस समूह में व पहले के समूह में माह एक अन्तर यह था कि इसमें आत्म–निर्देश का प्रयोग नही किया गया था। सामाजिक पुनर्वलन दोनों समूहों में उपस्थिति था।

मापन–नियंत्रण में प्रयोज्यों को चिकित्सा से पूर्व, चिकित्सा के पश्चात तथा निरंतरता का मापन किया गया। इस अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि आवेगी बच्चों में शाब्दिक मध्यस्थता तथा आत्म–निर्देश का उपयोग करके उनके प्रदर्शन तथा व्यवहार को सुधारा गया।

मेहग्बम तथा गुडमैन (1971) के पश्चाता आत्म–निर्देश का उपयोग आवेगी अति सक्रिय बच्चों पर किया गया, आक्रमक बच्चों पर तथा मनोविदलता से ग्रस्त व्यस्कों पर किया गया

आत्म–निर्देश प्रशिक्षण का उपयोग शैक्षिक रूप से पिछड़े बच्चों पर किया गया।

13.6 आत्म–प्रबंधन

आत्म–प्रबंधन का प्रारंभ में नैदानिक चिकित्सकों के द्वारा विकसित व अयोग किया गया। इस चिकित्सा का केन्द्र बिन्दु यह है कि व्यक्ति जिसे परिवर्तन की आवश्यकता होती है वह तब अधिक सफल हो सकता है वह परिवर्तन प्रक्रिया को नियंत्रित कर सकता है। जब व्यक्ति अपने परिवर्तन प्रक्रिया को की जिम्मेदारी खुद लेता है। तो यह अपने आपको अधिक योग्य महसूस करता है तथा यह परिवर्तन अधिक स्थायी होता है। आत्म– प्रबंधन से सावोगिक अंगों का जिनमें आत्म–मूल्यांकन, आत्म–विश्वास, चेतना तथा विश्वास, आत्म नियंत्रण तथा उपलब्धि , अभिप्रेरिक आदि को प्रभावित करता है। इसमें अंतदर्शन विधि का प्रयोग किया जाता है। आत्म–मूल्यांकन तथा आत्म– प्रबंधन तकनीकियों का प्रयोग किया जाता है जिससे व्यक्ति अपने व्यवहार तथा कार्य में सुधार ला सके।

इसका उपयोग आटिज्म, मधुमेह, अधिगम अक्षमता आदि में किया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति व्यवसायिक सामाजिक जथा शैक्षिक तथा कार्यों में वृद्धि होती है।

आत्म–व्यवस्थापन के प्रकार –

आत्म–व्यवस्थापन के अंतर्गत कुछ भिन्न कार्य किया जाता है जिससे लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। इसके अंतर्गत क्लाईट को कुछ कार्य करने होते हैं–

भविष्य के बारे में सोचना जिसे वे प्राप्त करना चाहता है (जैसे– किसी प्रोजेक्ट में ग्रेड प्राप्त करना) ऐसे उपाय व परिस्थितियों के बारे में सोचना तथा निर्णय लेना।

ऐसे स्थान का चुनाव करना या ऐसे लोगों के साथ रहना जिससे व्यक्ति अपना व्यवस्थापन स्वयं कर सके।

जैसे– ऐसे विद्यार्थियों के साथ रहना जो अच्छे ढंग से कार्य कर रहा है ऐसे रास्ते का चुनाव करना जहाँ माल रास्ते है नहीं पड़ते।

परिस्थिति का सुधार करना –

ऐसे परिस्थिति में सुधार करना जिससे बचा नहीं जा सकता। उदाहरण– कक्ष में ऐसे विद्यार्थियों के सामने की ओर न कि पीठ की तरफ बैठना।

आत्म– प्रबंधन की रणनीतियाँ –

संज्ञानात्मक रणनीति–

अपने ध्यान में परिवर्तन लाना

ऐसी परिस्थिति को देखना जो लक्ष्य पर ध्यान को बढ़वा देता है।

उदाहरण– कक्षा में व्यवस्था को देखना।

परिस्थिति के या व्यक्ति के बारे में क्या सोचते है, इसमें बदलाव लाना

ध्यान भंग करने वाले परिस्थिमि पर ध्यान न देना, गृहकार्य को एक कार्य न समझकर उसे सोचिये कि जब आप गृहकार्य पूर्ण कर लेते हैं तो आपको कितना अच्छा लगता है।

आवेग / संवेदन को दबाने की रणनीति–

यह इसका उपयोग करना बहुत मुश्किल होता है कम प्रभावशील होता है तथा इसमें बहुत अधिक संज्ञानात्मक ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

आवेग को खत्म करना

किसी अवांछित आवेग या संवेग को घटने के बाद खत्म करना। जैसे– सामने किसी अच्छे खाने को बार–बार खाने से रोकना।

वूप रणनीति – वूप रणनीति जो कि सकारात्मक रणनीति है तथा इसमें वास्वविकता भी समाहित है चार चरणों में को समाहित करती है–

Wish (इच्छा)

क्लाइंट को ऐसी महत्वपूर्ण व प्राप्य इच्छा कहने को कहा जाता है जिसे वे पूरा करना चाहते हैं।

Outcome (परिणाम) –

क्लाइंट को कल्पना करने को कहा जाता है कि जब वे अपनी इच्छा पूरी कर लोगे तो उनका भविष्य कैसा होगा।

Obstacle (अवरोध)–

क्लाइंट को सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तिगत अवरोध के बारे में सोचने को कहा जाता है जो उनकी इच्छा की पूर्ति में बाधक होता है।

Plan (योजना) –

क्लाइंट को एक प्रभावशाली व्यवहार के बताना होता है जिससे वे अवरोध को दूर कर सके तथा एक विशिष्ट योजना बना सके।

आत्म– प्रबंधन का इतिहास –

आत्म– प्रबंधन शब्द ब्रिटेन–अमेरिकन शोधों में प्रयुक्त होता हैजिससे व्यक्ति अपने आत्म–नियंत्रण तथा आत्म–सम्मान को बढ़ा सकता हैं। यह दृष्टिकोण सामाजिक अधिगम सिद्धांत आत्म–नियंत्रण से संबंधित होता है। आत्म– प्रबंधन शब्द की उत्पत्ति दीर्घकालिक बीमारी तथा चिकत्सकीय देखभाल के साहित्य से हुई। 1976 में इस शब्द की उत्पत्ति थामस फ्रीश की पुस्तक जो उन्होंने दीर्घकाल से बीमार चल रहे बच्चों के सुधार के लिये लिखी से हुयी। डिश्चियन के अनुसार आत्म– प्रबंधन की शुरूआत रोगियों को अपने उपचार में सक्रिय योगदान लेने के लिये की गयी। वर्तमान में आत्म–व्यवस्थापन कार्यक्रमों का अयोग दीर्घकालिक चिकित्सकीय स्थितियों जैसे गठिया, मघुमेह, हृदयरोग आदि रोगियों के लिये किया जाता है। आत्म– प्रबंधन चिकित्सा का उपयोग इस चिकित्सा विधि का उपयोग अस्थमा की देखभाल के लिये भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

आत्म– प्रबंधन चिकित्सा के लाभ –

लचीलापन –

कम अनुपस्थिति

उच्च समर्पण

कम से कम निर्देश की आवश्यकता

अधिक सअनुशासन

उत्पादकता को बढ़ाव

दोष–

आत्म– प्रबंधन विधि का एक दोष यह है कि इसके द्वारा सामान्यीकृत परिणाम प्राप्त नहीं होते है।इस कारण इस विधि के ऊपर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

इस विधि का उपयोग अधिक जटिल समस्या वाले व्यक्तियों पर नहीं किया जा सकता है।

इस विधि का उपयोगकेवल तात्कालिन समस्या के समाधान के लिये किया जाता है। इसका उपयोग दीर्घकालिक समस्या के समाधान के लिये नहीं किया जाता है।

13.7 समस्या–समाधान चिकित्सा

समस्या–समाधान चिकित्सा एक मनोसामाजिक चिकित्सा है, जो कि संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक हल के अंतर्गत आता है। इसके द्वारा बातों से लेकर बड़ी–बड़ी समस्याओं को दूर किया जाता है। इसके द्वारा जिससे व्यक्ति की मानसिक तथा स्वास्थ्य से संबंधित परेशानियों को दूर किया जा सके। इस चिकित्सा विधि के प्रमुख लक्ष्य निम्न लिखित हैं–

समायोजित व्यवहार के प्रति उन्नमुखता को बढ़ाना आशावादिता, सकारात्मक, आत्म–सामर्थ्यता, स्वीकारात्मकता तथा समस्या जो कि दैनिक जीवन से संबंधित हैं।

विशिष्ट समस्या– समाधान व्यवहार की प्रभावशाली उपयोगिता को बढ़ाना (संपेगात्मक नियंत्रण तथा व्यवस्थापन) संक्षेप में समस्या केंद्रित चिकित्सा उन व्यक्तियों पर उपयोगी होती है जो कि स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित होती है। जैसे–अवसाद, चिंता, संवेगात्मक, तनाव, आत्म–हत्या, कैंसर, हृदय से संबंधित बीमारी, मधुमेह, आघात, पीठ दर्द, अत्यधिक तनाव आदि।

इसका उपयोग मनोविदलता तथा मानसिक मंदता से ग्रस्त लोगों पर किया जाता है। इसका प्रयोग कुछ निश्चित जनसंख्या पर जैसे–युद्ध क्षेत्र से वापस आने वाले व्यस्कों पर किया जाता है। समस्या केंद्रित चिकित्सा का उपयोग मनोचिकित्सा के रूप में भी किया जाता है तथा साथ ही प्रशिक्षण व्यवस्था के रूप में भी किया जाता है।

समस्या केद्रित चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास–

1971 में थामस डी जुरीला तथा मार्पिन गोल्डप्राइड ने वास्तविक जीवन से संबंधित समस्याओं के शोध को प्रस्तुत किया है। यह इसका विषय क्षेत्र सृजनात्मकता असामान्य व्यवहार, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान शिक्षा तथा उद्योग से संबंधित व्यवहारवादी चिकित्सकों में एक संक्षिप्त मॉडल का निर्माण किया है इसमें दो तत्व समाहित है–

सामान्य उन्मुखता तथा समस्या समाधान योग्यता। सामान्रू अन्मुखता से तात्पर्य अभिप्रेरणात्मक कार्यों से होता हैं। इसके द्वारा संज्ञानात्मक–संवेगात्मक जो कि अधिक स्थिर होती है जिससे व्यक्ति की समान्य जागरूकता तथा समस्या का मूल्यांकन किया जाता है। समस्या समाधान योग्यता से तातर्प्य संज्ञानात्मक–व्यवहारात्मक क्रियाकलापों से होता है।

समस्या – समाधान

हम वास्तविक समस्या समाधान जिसे सामाजिक समस्या समाधान भी कहते हैं। एक आत्म–निर्देशित प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति समस्या का समाधान की पहचान कर सकता है, खोज सकता है। समस्या ऐसी हो सकती हैं जो दीर्घ तीव्र हो सकती है तथा जिसे वे दैनिक जीवन में देख सकते हैं। इसके विशिष्ट रूप में, इसके द्वारा व्यक्ति अपनी प्रतिरोध क्षमता की पहचान कर सकता

(Problem)

समस्या – हम साधारणतया समस्या को जीवन परिस्थिति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं– नकारात्मक परिणामों सक बचने कि लिये समायोजी प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है (व्यवहारिक तथा संवेगात्मक समस्थिति को पुनः प्राप्त करना)

प्रभावशाली प्रतिक्रिया तात्कालिक नहीं प्राप्त होती है क्योंकि व्यक्ति के सामाजिक अथवा शारीरिक वातावरण से उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त ये आंतरिक अथवा अंतर्वयक्तिक (अधिक धन कमाने की इच्छा, लक्ष्य से उत्पन्न भांति, सामाजिक संबल के अभाव) के कारण भी उत्पन्न होते हैं।

समस्या में अनेक बातें सम्मिलित होती हैं। जिनके अंतर्गत आते हैं–

नयापन (नये वातावरण की तरफ मुड़न)

जटिलता (कैसे कोई रिश्ते का विकास हो रहा है को लेकर से मुक्ति)

पूर्वानुमान का अभाव (अपने कैरिया लक्ष्य पर नियंत्रण का अभ्ररव)

उदात्मक लक्ष्य (किस घर को खरीदना है, इसे लेकर विभिन्न विचार)

प्रदर्शन योग्यता क्षमता में कमी (अपने साथियों के साथ संवाद क्षमता में कमी)

संसाधनों का अभाव (सीमित आर्थिक क्षमता)

एक व्यक्ति समस्या को तुरंत पहचान सकता है अथवा अनेक बार प्रयत्न करके असफल हो जाने पर पहचान सकता है एक समस्या एक बार ही घटित हो सकती है समान घटनाओं का बार–बार घटना अपने बॉस से बार–बार अतार्किक माँगों का उठना अथवा कोई दीर्घकालिक परिस्थिति हो सकती है (लगातार दर्द अकेलापन अथवा चिकत्सकीय बीमारी)।

एक समस्या न केवल वातावरण की विशेषता होती है और न ही केवल व्यक्ति की। यह व्यक्ति–वातावरण के संबंध के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसमें परिस्थितियों की माँग तथा व्यक्ति की प्रतिरोध क्षमता में मतभेद होता है। अतः समस्या तटिलता के आधार पर बदल सकती है अथवा इसका महत्व बदल सकता है। मत व्यक्ति अथवा वातावरण अथवा दोनों से संबंधित होती है। यह संबंधात्मक परिदृश्य यह बताता है कि इसका समस्या–समाधान मूल्यांकन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। इसका अर्थ यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये समस्या अलग–अलग हो सकती

हैं। एक व्यक्ति के लिये एक समस्या हो सकती है। किसी एक समय पर एक व्यक्ति के लिये एक समस्या हो सकती है उसी समय वही समस्या दूसरे के लिये नहीं हो सकती हैं।

समाधान (Solution)

समाधान एक परिस्थिति–विशेष प्रतिरोध प्रतिक्रिया पर आधारित होती है जो कि समस्या–समाधान प्रतिक्रिया पर आधारित होती है जो कि विशिष्ट समस्या परिस्थिति पर आधारित होती है। एक प्रभावशाली समाधान यह हो जो कि समस्या समाधान लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता हैइसके साथ–साथ इसके द्वारा सकारात्मक परिणाम को बढ़ाया जाता है तथा नीरात्मक परिणामों कम किया जाता है। महत्वपूर्ण परिणामों में सम्मिलित होते हैं – स्वयं के अन्य के ऊपर प्रभाव पड़ते है तथा इसका दीर्घकालिक प्रभाव तथा लघु–कालीन परिणाम होता है। इस संदर्भ में इसे नोट किया जाना चाहिये कि किसी विशिष्ट समाधान की प्रभावशालीता प्रत्येक व्यक्ति के लिये भिन्न–भिन्न हो सकती है। यह समस्या–समाधानकर्ता के मानक मूल्य तथा लक्ष्य पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त यह समाधानकर्ता अथवा अन्य तहत्वपूर्ण व्यक्ति जो कि समाधान का मूल्यांकन करता है पर भी निर्भर करता है।

सामाजिक समस्या समाधान का मॉडल–

(1971) के मॉडल में संशोधन किया गया इसके अनुसार समस्या समाधान या उन्मुखता तथा समस्या –समाधान करने के तरीके पर आधारित होती है।

समस्या उन्मुखता –

समस्या उन्मुखता स्थिर संज्ञानात्मक भावात्मक स्कीमों पर आधारित होती है। इसके द्वारा व्यक्ति के सामान्यीकृत विचार, अभिवृत्तियाँ तथा समस्या के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रियायें आती हैं। समस्या उन्मुखता दो प्रकार होती हैं–

सकारात्मक उन्मुखता के अंतर्गत निम्न प्रवृत्तियाँ आती हैं– समस्या को एक चुनौती के रू में मूल्यांकित करना। यह विश्वास करना कि समस्या का समाधान संभव है अपनी स्वयं की योग्यता पर विश्वास करना कि वह समस्या का समाधान कर सकते है।

सफलतापूर्वक तरीके से समस्या समाधान करने में समय तथा मेहनत लगती है। ऐसा सोचना कि नकारात्मक संवेग संपूर्ण समस्या–समाधान प्रक्रिया का आवश्यक अंश है जिससे कि समस्या का समाधान हो सके।

नकारात्मक समस्या अन्मुखता के अंतर्गत निम्न तीन प्रवृत्तीयाँ आती है–

समस्या को डर के रूप में देखें तो समस्या का समाधान होने की उम्मीद न करना।

नकारात्मक संवेगों का सामना करने पर बुरा लगना।

क्योंकि एक व्यक्ति की अपनी अभिप्रेरणा व्यक्ति की उन्मुखता पर प्रभाव डालती है तथा समस्या समाधान की योग्यता का भी इस पर प्रभाव पड़ता है।

समस्या–समाधान के तरीके –

इसके अंतर्गत वे सभी तरीके आते हैं जो समस्या समाधान के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। यह संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

शोध के अनुसार तीन तरह के तरीकों का पता चलता है–

तार्किक समस्या समाधान जिसे योजना पूर्ण समस्या समाधान कहते हैं।

परिहार समस्या समाधान

***आवेगी*–लापरवाही समस्या समाधान**

तार्किक अथवा योजनापूर्ण समस्या समाधान एक संरचनात्मक उपागम है जिससे तनावपूर्ण समस्याओं का समाधान ठीक तरीके से किया जा सकता है। इसमें क्रमबद्ध तथा विचारयुक्त तरीके से निम्न योग्यताओं का उपयोग किया जाता है–

समस्या परिभाषा –इसमें समस्या की प्रकृति को बताया जाता है, वास्तविक समस्या समाधान लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है तथा उन सभी बाधाओं की पहचान की जाती है जो व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुँचने से रोकती हैं।

विकल्पों का निर्माण –

पहचान ने जानने योग्य समस्त बाधाओं के संभावित समाधान के विकल्पों की पहचान करना

न्याय का निर्माण –

इन सभी विकल्पों के परिणामों का पूर्व कथन करना, पहचान योग्य परिणामों के आधार पर लागत –लाभ व्याख्या की जाती है। तथा ऐसी समाधान योजना बनान जिससे कि लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

समाधान उपयोगिता तथा जाँच –

समाधान याजना को बनाना परिणाम की देखभाल तथा क्या व्यक्ति के समस्या–समाधान के प्रयास सफल हुये हैं अथवा इन्हें जारी रखने की आवश्यकता है, तार्किक समस्या समाधान को गलत तरीके से बराबर समझा जाता है।

आवेगी /लापरवाह तरीके से समस्या–समाधान करने के तरीके में व्यक्ति आवेगी अथवा लापरवाह तरीके में समाधान कर सकता है। ऐसे प्रयास संकुचित होते हैं, जल्दी में किये जाते है अथवा अपूर्ण होते हैं इसमें व्यक्ति विभिन्न विकल्पों का चयन करता है। इसके अतिरिक्त वह विभिन्न विकल्पों में से ज्यादातर पहले विचार का ही चयन किया जाता है। इसके अतिरिक्त वह विभिन्न उपलब्ध समाधानों को तुरंत लापरवाह तरीके से तथा अक्रमबद्ध तरीके से निरीक्षण करता है।

परिहार उपागम एक अन्य कुसमायोजन समस्या–समाधान प्रक्रिया है जिसे अक्रिया तथा दूसरो पर विर्मश के रूप में देखा जा सकता है। इस तरह का समाधान कर्ता समस्या से बचना चाहता है।

समस्या–समाधान चिकित्सा

(चिकत्सकीय उद्देश्य)

सकारात्मक समस्या उन्मुखता को बढ़ाना

नकारात्मक समस्या उन्मुखता को घटाना

याजनाबद्ध समस्या समाधान को बढ़ाना

परिहार समस्या समाधान को कम करना

आवेगी / लापरवाह समस्या समाधान को कम करना।

समस्या–समाधान चिकित्सा

चिकित्सा के तत्व

व्यक्ति जब इन चिकत्सकीय लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है तो उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। असके अंतर्गत निम्न तथ्य आते हैं।

संज्ञानात्मक भारीपन खासकर तब जब व्यक्ति तनाव में हो प्रभावशाली संवेगात्मक नियमन में व्यस्त रहने के लिये कम योग्यता।

संवेग –संबंधी सूचनाओं के प्रति पक्षपात पूर्ण संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं उदाहरण नकारात्मक स्वायत्त विचार, सीमित आत्म–सामर्थ्य विश्वास नकारात्मक स्मृति से निकलने में असमर्थता, आशावादिता के कम होने के कारण सीमित अभिप्रेरणा

अप्रभावशाली समस्या–समाधान

इन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिये समस्या–समाधान चिकित्सा क्लाइंट को चार मुख्य समस्या –समाधान के साथ तरीकों को बताती है।

ये चार प्रक्रियायें निम्न है– समस्या–समाधान के साथ अनेक कार्य रूकना, धीमा होना, सोचना तथा कार्य करना (SSTA) DS द्वारा समस्या का समाधान करना।

स्वस्थ चिंतन तथा कल्पना योजनाबद्ध समस्या–समाधान

सारांश–

समस्या–समाधान केंद्रित चिकित्सा एक मनोसामाजिक चिकित्सा है जिसका मुख्य लक्ष्य जीवन के तनाव कासामना करना होता है जिसका स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित दिक्कतों तथा भविष्य की दिक्कतों से बचा जा सके। समय–समय पर इस चिकित्सा विधि में संशोधन किया जाता रहा है। मूल सिद्धांत D z will and Goldenrod (1971) द्वारा दिया गया था परंतु इसमें अनेक सुधार हुये इसके द्वारा

व्यापक पैमाने पर नैदानिक जनसंख्या तथा समस्या का उपचार किया जाता है। इस मूल सिद्धांत का प्रयोग मनोविज्ञान तथा तंत्रिकाशास्त्र में किया जाता है।

नवीन सिद्धांत में दो मुख्य विमाओं को जोड़ा गया समस्या उन्मुखता व्यक्ति का सामान्यीकृत विश्वास अभिवृत्ति तथा समस्या के प्रति (संवेगात्मक तथा व्यवहारात्मक प्रक्रिया में) शोध के अनुसार दो उन्मुखतायें प्राप्त हुयी।

(तार्किक अथवा योजनाबद्ध समस्या समाधन, परिहार समस्या समाधान तथा आवेगी /लापरवाह समस्या समाधान)

13.8 सारांश

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा सुधार चिकित्सा नकारात्मक को सकारात्मकता में बदलने का प्रयास है ।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है ।

आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण एक साक्ष्य आधारित चिकित्सकीय रणनीति है जिसका उपयोग संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के रूप में किया जाता है ।

आत्म प्रबन्धन का दृष्टिकोण अधिगम सिद्धांत , आत्म नियेत्तरा से संबंधित है ।

समस्या समाधान चिकित्सा बडी –बडी समस्याओं को किया जाता है जिसके द्वारा किया जाता है जिसके द्वारा उसकी मानसिक व शारीरिक स्वास्थय से संबधित परेशानी को दूर किया जाता है ।

13.9 शब्दावली

संरोपण – संरोपण का उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है ।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण – तनाव संरोपण प्रशिक्षण संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का बहुमुखी रूप है । इसके द्वारा तनाव से ग्रस्त लोगों के लिये नैदानिक नियमावली प्रदान की जाती है ।

आत्म – निर्देशात्मक प्रशिक्षण – आत्म – निर्देशात्मक प्रशिक्षण एक साक्ष्य आधारित चिकित्सकीय रणनीति है जिसका उपयोग प्रायः संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा के अंग के रूप में किया जाता है ।

आत्म –व्यवस्थापन प्रशिक्षण – आत्म –व्यवस्थापन प्रशिक्षण वह प्रशिक्षण है जिसमें व्यक्ति जिसमें परिवर्तन की आवश्यकता होती है । वह तब सफल हो सकता है जब वह परिवर्तन को नियंत्रित कर सकता है ।

समस्या – समाधान चिकित्सा – समस्या – समाधान चिकित्सा एक मनोसामाजिक चिकित्सा है जिसमें बडी –बडी समस्याओं को दूर किया जाता है ।

इसके द्वारा व्यक्ति की मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित परेशानियों को दूर किया जा सकता है ।

13.10 संदर्भ –ग्रंथ सूची

1. Cognitive –Behavior Modification: Application with exceptional students (1982). Karen, Harris. Focus on Exceptional Children.
2. Stress Inoculation Training: A Preventaive and Treatment approach. Danial Meichenbaum.
3. Application of Social learning theory to employee self-management of attendance. Frajne, C.A. & Latham, G.P. (1987). Journal of Applied Psychology,72(3), 387-393.
4. Cory, G. (2005). Theory and Practice of Counseling and Psychotherapy (7th ed). Belmont.

13.11 प्रश्नावली

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1–..................का उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक –मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है ।

2–तनाव संरोपण प्रशिक्षण सिद्धांत ....द्वारा किये गये तनाव तथा प्रतिरोध क्षमता के संयोजन के दृष्टिकोण पर आधारित है ।

3–.............................एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति का आत्म नियंत्रण शाब्दिक कथनों से किया जाता है ।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1– संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा क्या है ? आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण का वर्णन कीजिये ।

2– तनाव संरोपण प्रशिक्षण की व्याख्या कीजिये ।

इकाई – 14 निर्देशन एंव परामर्श कार्यक्रम:- उद्देश्य, आयोजन और विकास (Guidance & Counseling Programme:-Purpose, Organization and Development)

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम

14.4 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों को संगठित करने के सिद्धांत

14.5 निर्देशन कार्यक्रमों का रूप

14.6 निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताएँ-

14.7 अच्छे निर्देशन के आयोजन की मुख्य विशेषताएं-

14.8 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम को आयोजित करने के उद्देश्य

14.9 विद्यालय में निर्देशन सेवाओं का आयोजन

14.10 सारांश

14.11 कठिन शब्दार्थ

14.12 अभ्यास प्रश्न

14.13 निबंधात्मक प्रश्न

14.14 संदर्भ ग्रन्थ

14.1 प्रस्तावना:

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। इसलिए, यह आम तौर पर सहमति है कि एक नागरिक को इस तरह से शिक्षित किया जाना चाहिए कि वह अपने स्वयं के साथ-साथ राष्ट्र की प्रगति के लिए कुछ वांछनीय जीवन कौशल, दृष्टिकोण और मूल्यों को विकसित करे।

यह एक उद्देश्यपूर्ण और सफल जीवन जीने के लिए सहायक उनके बौद्धिक और सामाजिक कौशल को समृद्ध कर सकता है। जीवन कौशल आधारित शिक्षा बच्चों को स्वयं, उनके दोस्तों और उनकी दुनिया को समझने में मदद करती है। प्रभावी परामर्श सेवाओं को छात्रों के अनुभवों (मटी और नदबुकी, 2004) की पूरी समझ और स्वीकृति पर आधारित होना चाहिए। इसलिए, सभी छात्रों को आवश्यकता होगी उनकी शैक्षणिक, सामाजिक और व्यक्तिगत दक्षताओं को विकसित करने के लिए परामर्श सेवाएँ। प्रभावी परामर्श

उन्हें उन मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निपटने में सक्षम करेगा जो वे अनुभव कर सकते हैं और अकादमिक, सामाजिक और व्यक्तिगत चुनौतियों का समाधान या सामना करने के तरीके पर तर्कसंगत निर्णय ले सकते हैं।

यह एक व्यक्ति को कौशल और दृष्टिकोण प्राप्त करने में मदद करता है, जो उसे या उसे जीवन स्थितियों में ठीक से समायोजित व्यक्ति बनाते हैं। स्कूल के छात्रों के बीच शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, मानसिक भावनात्मक और अन्य समान समस्याओं को रोकने में मार्गदर्शन और परामर्श एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निर्देशन सेवाओं का क्षेत्र एवं कार्य विद्यार्थियो को शैक्षिक एवं व्यावसायिक चयन (choices) में सहायता तक ही सीमित नहीं है अपितु कहीं अधिक व्यापक हैं| निर्देशन का लक्ष्य समायोजन (Adjustment) एवं विकास (Development) दोनों में सहायता पहुँचाना है| निर्देशन जहाँ बालक को स्कूल एवं घर की परिस्थितियों में सर्वोत्तम संभावित समायोजन प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है, वहां बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास भी उसका लक्ष्य है | इसलिए निर्देशन को शिक्षा का संघटक अंग माना जाना चाहिए| केवल शैक्षिक उद्देश्यों से प्रदान की जाने वाली मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सेवा तक ही वह सीमित नहीं है अपितु सभी विद्यार्थियो के लिए अपरिहार्य है, यह एक निरंतर चलने वाला प्रक्रम (Continuous Process) है जो व्यक्ति को समय- समय पर निर्णय करने एवं समायोजन में सहायता करता है |

यह कार्य न तो किसी एक विशिष्ट क्षेत्र तक सीमित है और न ही कुछ विशिष्ट मानवीय एवं भौतिक साधनों तक। प्राय: प्रत्येक क्षेत्र से संबंधित समस्याओं के समाधान में यह प्रक्रिया सहायक सिद्ध हो सकती है तथा अनेक व्यक्तियों के इस प्रक्रिया में निरितर अपनी भूमिका निर्वाह करना पड़ता हैं।

निर्देशन कार्यक्रमों को समुचित रूप में सुसंगठित करने के संबंधमें क्रो एवं क्रो ने अपनी पुस्तक, निर्देशन एक परिचय, में व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। उनके अनुसार प्रभावशाली निर्देशन कार्यक्रम लचीला होना चाहिए, जिससे उस कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सके। साथ ही यह भी आवश्यक है कि निर्देशन प्रक्रिया से संबंद्ध समस्त व्यक्तियों का सहयोग समन्वित रूप से प्राप्त हो सकें। इस समस्त के अतिरिक्त अनेक अन्य बातों का भी निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन में ध्यान रखना आवश्यक है जिसे इस इकाई में पढ़ेगें।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम के स्वरूप को समझ सकेगे,
- निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों के अच्छे संगठनको समझ सकेंगे।
- विभिन प्रकार के निर्देशन कार्यक्रमों के बारे में जान सकेंगे।
- निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

- निर्देशन कार्यक्रम के प्रकार को जान सकेंगे।
- निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों की व्यवस्था समझ सकेंगे।

निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों का आयोजन का उद्देश्य जान सकेंगे।

14.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का परिचय

शिक्षा संस्थाओं को प्रमुख रूप से तीन कार्य करने होते है, शिक्षण, प्रबंध एवं निर्देशन। शिक्षण संस्थाओं में केवल ज्ञान प्रदान करने का कार्य ही नहीं चलता है अपितु यहाँ शिक्षार्थी को जीवन के लिए तैयारी करने का अवसर मिलता हैं। निर्देशन का प्राथमिक परिचय तथा विकासात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते समय हम देखते हैं कि कई वर्तमान विकासमान विषय क्षेत्रों की सैद्धान्तिक मान्यताओं को एक व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु निर्देशन का नवीन विज्ञान आधुनिक युग में अवतीर्ण हुआ हैं। किसी भी क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य करने के कतिपय मूल अधिग्रहण होते हैं। निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों में इनके कार्य का मूल आधार है व्यक्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व की बहुपक्षीयता के कारण मानव से संबंधित आज कोई भी विषय क्षेत्र नहीं होगा जिसके विशेषज्ञ एकांकी रूप से अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को निभा सकें। विविध विषय क्षेत्रों की सीमाओं मे निर्देशन के आधारों का निहित होना इस तथ्य की पुष्टि करता हैं। आज वर्तमान में व्यक्ति की वैयक्तित्व अपेक्षाएं है और कुछ समाज के स्वीकृत शिक्षा दर्शन के अनुसार आज के विद्यार्थी से समाज वैयक्तित गुणों की अपेक्षा करता है जिससे सफल वह संतोषप्रद एवं प्रभावपूर्ण जीवनयापन कर सके। निर्देशन कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थी कई क्षेत्र एवं उद्देश्य से अवगत होता हैं।

निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम बालकों की रूचि विकसित एवं सामाजिक संबंध स्थापित करने में मदद करता हैं।

14.4 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों को संगठित करने के सिद्धांत

निर्देशन कार्यक्रमों को संगठति करते समय कतिपय सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए समस्त प्रकार के निर्देशन संगठन हेतु यह सिद्धान्त उपयोगी होते हैं।

1. **कार्यक्रम के उद्देश्य -** कार्यक्रम बनाने से पूर्व यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि कार्यक्रम का उद्देश्य क्या होगा? अथवा कार्यक्रम का आयोजन किन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया जा सकता हैं। क्योंकि उद्देश्यों से के अभाव में कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता? निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों का गठन विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को समझने तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करने के उद्देश्य से किया जाता हैं। परिवार एवं पड़ोस के परिवेश का प्रभाव विद्यार्थियों की आवश्यकताओं पर पड़ता हैं। अत: निर्देशन कार्यक्रम विद्यार्थियों को प्रभावित करने वाले, विभिन्न तत्वों की खोजने का प्रयास करती हैं।

2. **कार्यक्रम का निष्पादन -** कार्यक्रम के उद्देश्य निर्धारित के पश्चात निर्देशन कार्यक्रम के कार्यो को निश्चित किया जाना चाहिए, इन कार्यक्रम के कार्यों का लक्ष्य होगा – निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति। निर्देशन कार्यक्रम, परिस्थिति एवं समयानुसार बदलता रहा हैं। सन् 1947 उपरान्त भारत मे विभिन्न परिवर्तन हुए है

तथा 21 सीबीटी शताब्दी में तो जबरदस्त बदलाव आ रहा हैं। देश के विभिन्न नवीन उद्योग धंधों को स्थापित किया जा रहा हैं गांव एवं शहर में कोई ज्यादा अंतर नहीं रहा हैं। शिक्षण संस्थानों म निर्देशन के लक्ष्य एवं कार्यों में भी उनके अनुसार ही परिवर्तन हो रहा हैं। अत: निर्देशन एवं परामर्श के कार्यक्रमों में नमनीयता होना अत्यंत आवश्यक हैं।

3. उत्तरदायित्वों का निर्धारण - शिक्षा संस्थाओं में समस्त शिक्षकों का सहयोग प्राप्त होने पर ही, निर्देशन कार्यक्रम सफल हो सकता हैं। अत: निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए समस्त शिक्षकों को निर्देशन में रूचि एवं योग्यता के संबंधमे जानकारी प्राप्त करनी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि शिक्षकों की रूचियों तथा योग्यताआं के आधार पर ही उनको उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों को सोंपा जा सकता हैंप्रत्येक अध्यापक को अपने निर्देशन संबंधीकार्य से परिचित होना। ये कार्य अध्यापकों की क्षमताओं के आधार पर होने चाहिए।

4. कार्यक्रम का मूल्यांकन - निर्देशन कार्यक्रम प्रारंभ करने के बाद उसकी प्रगति तथा उपयुक्तता का मूल्यांकन करना होता हैं। इस मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होगा कि जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम आयोजित किया गया है उसमें कहां तक सफलता प्राप्त हुई। मूल्यांकन का दूसरा उद्देश्य यह देखना है कि कार्यक्रम वर्तमान समय के अनुकूल है या नही। सामाजिक अवस्था छात्रों की आवश्यकताओं एवं निर्देशन विधियों में निरन्तर परिवर्तन होने से निर्देशन भी सदैव परिवर्तित होता रहता हैं। निर्देशन एवं परामर्श कार्यकर्ताओं को इन परिवर्तनों के प्रति सजग रहना चाहिए जिससे कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार नवीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर सकें।

5. निश्चित अधिकार क्षेत्र - जिस प्रकार अध्यापकों को उनके कार्य सौपें जाये उसी प्रकार उन्हें उनके अधिकार क्षेत्रों से परिचित करवाना आवश्यक हैं।

6 संबंधों को परिभाषित करना - निर्देशन कार्यक्रम में कार्य कर रहे कर्मचारियों, चाहे वे अंशकालिक कर्मचारी हो या फिर पूर्णकालिक कर्मचारी हो, उनके संबंधोंकी स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसी संस्था के अन्य कर्मचारियों के साथ उनके निर्देशन उत्तदायित्वों के अनुरूप निश्चित हो।

7. निर्देशन कार्यक्रम का स्वरूप - संस्थओं में निर्देशन कार्यक्रम को आयोजित करने से पहले इसके स्वरूप को भी निश्चित कर लेना सही रहता हैं। जैसे कर्मचारियों की संख्या, आकार, धन की व्यवस्था आदि इसके स्वरूप का आधार संस्था के उद्देश्यों तथा आर्थिक साधन और विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या आदि हो।

8. सरलता – संस्था निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन बहुत जटिल प्रकृति का नहीं होना चाहिए। इसके आयोजन की रूपरेखा जहां तक सं भवहो सके, सरल ही रहनी चाहिए। क्योंकि सरल रूपरेखा वाले कार्यक्रम में ही व्यक्ति रूचि लेने लगेगा।

क्रो एवं क्रो ने अपनी पुस्तक में निर्देशन कार्यक्रम की योजना शुरू करने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखने का सुझाव दिया हैं।

1- सबसे पहले से तय कर लेना चाहिए कि इस निर्देशन कार्यक्रम को शुरू करने में कितने व्यक्तियों तथा कितने समय की आवश्यकता होगी।

2- कर्मचारियों में कितनी वृद्धि करने की आवश्यकता है?

3- क्या निर्देशन की विभिन्न गतिविधियों का संचालन करने के लिए स्थान तथा भवन पर्याप्त है?

4- विभिन प्रस्तावित कार्यक्रमों को प्रदान करने के लिए कौन कौन से अध्यापक उपलब्ध हैं।

5- विद्यालय में उपलब्ध अध्यापक एवं अन्य कर्मचारी निर्देशन कार्यक्रम में अपेक्षित समय और शक्ति लगाने के योग्य और सक्षम हैं।

6- क्या कर्मचारी कार्यक्रम में रूचि का प्रदर्शन करते है? यदि करते है तो किस सीमा तक।

7- क्या निर्देशन एवं परामर्श संबंधी नियोजित कार्यक्रम में माता-पिता भी रूचि रखते है तथा क्या वे इस कार्यक्रम में अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

8- निर्देशन कार्यक्रम के विस्तार संबंधी विद्यालय तथा समाज का दृष्टिकोण क्या है?

9- विद्यार्थियों को कौन कौन से अनुभव क्षेत्रों में सेवा करने की आवश्यकता है?

10-निर्देशन कार्यक्रम के लिए क्या संस्था बजट में धन की व्यवस्था हो पायेगी

11-विद्यार्थियो को स्वयं के लिए निर्देशन कार्यक्रम का मूल्य समझने की अवस्था में किस प्रकार प्रेरित किया जा सकता हैं।

14.5 निर्देशन कार्यक्रमों का रूप

1- केन्द्रिय रूप - इस प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम में सहायता देना विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों का कार्य होता हैं। निर्देशन कार्यक्रम के केन्द्रिय रूप में अधिकांश निर्देशन क्रियाएं केन्द्रित कार्यलय से नियंत्रित होती है, अध्यापक भी निर्देशन मण्डल के निरीक्षण तथा आदेशों के अनुसार कार्य करते हैं।

2- विकेन्द्रीय रूप - विकेन्द्रीय रूप में निर्देशन सहायता देना अध्यापको का उत्तरदायित्वों माना जाता हैं। अध्यापक अपनी कक्षा के छात्रों के घनिष्ठ सम्पर्क में रहता हैं। यह उनकी आवश्यकताओं तथा समस्याओं का अच्छी प्रकार से समझ सकता हैं। अत: अध्यापक छात्रों की अधिक सहायता कर सकता हैं। कुछ लोगों को यह भय भी है कि विद्यालय में निर्देशन का पृथक विभाग स्थापित करने से अध्यापक निर्देशन कार्य को अपना उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करेगें। अत: निर्देशन देना अध्यापक का ही कार्य होना चाहिए।

उपरोक्त दोनों प्रकार के रूपों में कुछ गुण है तो उनमें कुछ दोष भी हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि निर्देशन कार्यक्रम का रूप इन दोनों का मिश्रित रूप होना चाहिए।

मिश्रित रूप - अध्यापकों और विशेषज्ञों को सामूहिक रूप से निर्देशन कार्यक्रम में प्रशासक, अध्यापक, निर्देशन आजीविका में संलग्न कर्मचारी, सामाजिक संस्थायें आदि सभी की समन्वित सेवाएं निहित होती हैं।

कुछ कार्य अध्यापक कर सकते हैं। उदाहरण के लिए छात्रों से संबंधित सूचनाएं एकत्रित करना। कुछ क्षेत्रों में विशेषज्ञों की सहायता आवश्यक हो जाती हैं। यह निश्चित करना कठिन है कि अध्यापक तथा विशेषज्ञ किन किन क्षेत्रों में कार्य करेंगे।

14.6 निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताएँ-

निर्देशन कार्यक्रम को सफलतापूर्वक आयोजित करने के लिए यह आवश्यक है कि निर्देशन कार्यक्रम को व्यवस्थित रूप प्रदान किया जाये अनेक व्यक्तियों को इस प्रक्रिया में निरन्तर अपनी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता। निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताओं को ध्यान मे रखना चाहिए। जो निम्नलिखित है -

- निर्देशन कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होना चाहिए प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को, व्यवस्थित निर्देशन कार्यक्रम को नेतृत्व करना चाहिए। निर्देशन कार्यक्रम किस प्रकार का हो? यह शिक्षालयों के रूप पर निर्भर करता हैं। छोटे विद्यालयों में एक ही प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति निर्देशन एवं शिक्षण दोनों कार्यों को कर सकता है, जबकि बड़े शिक्षालयों में निर्देशन प्रदान करने के लिए निर्देशन प्रदाता अलग अलग से होता हैं। इसका कार्य मात्र निर्देशन क्रियाओं तक ही होता हैं।
- निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त कार्य संबंधितरूप में किए जाने चाहिये। कार्यक्रम में सभी शिक्षकों को अपनी अपनी क्षमता के अनुसार सहयोग प्रदान करना चाहिये। निर्देशन प्रदाता का यह कार्य है कि वह कार्यक्रम का सफलतापूर्वक संचालन करने हेतु अन्य शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने हेतु प्रयास करें इसके अतिरिक्त अध्यापकों को उनकी रूचि के अनुसार ही निर्देशन कार्य प्रदान किया जाये।
- सभी के समन्वित प्रयास एवं सहयोग से ही निर्देशन कार्यक्रम सफल हो सकता हैं। छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझने हेतु नैदानिक सेवाएं स्वास्थ्य सेवा, परिवार कल्याण इत्यादि की सहायता ली जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त नियोक्ता एवं अभिभावकों को भी, निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने में सहयोग प्रदान करना चाहिए।
- निर्देशन कार्यक्रम निवास्क होनी आवश्यक हैं। आरंभ में विद्यार्थी के समुचित समायोजन हेतु प्रयास किया जाये। निर्देशन प्रदात्ता की इस प्रतिक्षा में नही रहना चाहिये कि विद्यार्थी के कुसामयोजित होने पर भी सहायता प्रदान की जाये।
- निर्देशन क्रियायें सतत् रूप से चलती रहनी चाहिये अर्थात् विद्यार्थी के विद्यालयी जीवन में प्रविष्ट होने के समय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक उसको निर्देशन सेवाएं प्राप्त होनी चाहिए। मात्र विद्यालयों तक ही निर्देशन सेवाओं का काल सीमित नही होता वरन् शिक्षण की समाप्ति पर व्यवसायों में नियुक्त अथवा सामाजिक सेवाओं में लगे, व्यक्तियों को भी निर्देशन सेवाएं प्राप्त होती हैं।
- निर्देशन कार्यक्रम शिक्षकों की रूचियों, विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के ज्ञान पर ही आधारित होनी चाहिये।
- निर्देशन का कार्य शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करना हैं। शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षार्थी के विकास एवं समायोजन में सहायता करना होता हैं। शिक्षा प्रक्रिया का शिक्षण एवं निर्देशन क्रियाएं,

अन्तरंग भाग होती हैं। लेकिन इन दोनों की पद्धतियां भिन्न भिन्न होती हैं। निर्देशन की परामर्श प्रक्रिया व्यक्तिक विभिन्नताओं पर आधारित होती है तथा इसमें एक व्यक्ति का एक व्यक्ति से ही संबंध होता हैं।

- निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन हेतु प्रथम महत्वपूर्ण कार्य है - कार्यक्रम के उद्देश्य को निर्धारित करना, क्योंकि निर्देशन कार्यक्रम असफल भी होता हैं। निर्देशन सेवाओं का गठन छात्रों की आवश्यकता को समझने एवं उनकी संतुष्टि में सहायता करने के उद्देश्य से किया जाता हैं। अतः निर्देशन सेवाओं के कार्यक्षेत्र को भी निर्धारित किया जाना आवश्यक हैं।

- **14.7 अच्छे निर्देशन के आयोजन की मुख्य विशेषताएं-**

- हमारा देश प्रजातंत्रात्मक देश हैं। अत: इस देश में प्रत्येक छात्र के निर्देशन प्राप्त करने का अधिकार हैं। साधारणत: आजकल विद्यालयों में शिक्षक शान्त अथवा विचारों में लीन रहने वाले विद्यार्थियों पर कोई ध्यान नहीं देते। बरन् शिक्षकों का ध्यान, अनुशासनहीन बालकों अथवा ऐसे बालक जो विद्यालय छोड़कर चले जाते है उन पर ही अधिक रहता है, जो कि अनुचित हैं। अतः निर्देशन प्रदाताओं को प्रत्येक बालक पर ध्यान देना चाहिये।
- निर्देशन कार्यक्रम का सेवार्थो केन्द्रित होना चाहिए। यही निर्देशन कार्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य हैं। सेवार्थो को अन्तिम निर्णय लेने हेतु स्वतंत्र छोड दिया जाना चाहिए।
- निर्देशन कार्यक्रताओं को अपनी योग्यता एवं ज्ञान में वृद्धि करने हेतु अवसर खोजने चाहिए निर्देशन कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग है - संचयी आलेख पत्र की समुचित व्यवस्था करना। निर्देशन प्रदाता को चिकित्सक के समान ही प्रत्येक सेवार्थो का संचयी आलेख पत्र रखना चाहिये। विद्यार्थी के विद्यालय में प्रविष्टि होने के समय से ही, आलेख को लिखना प्रारंभ कर देना चाहिये न कि उसे अपनी स्मृति पर निर्भर रहना चाहिये। निर्देशन कार्यक्रम में निर्देशन कार्यकर्ता को निर्देशन देते समय विभिन्न विधियों का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि एक विधि की सहायता से वह छात्रों के संबंधमें विश्वसनीय सूचनायें ज्ञात नहीं कर सकता हैं।
- परामर्शदाता को सूचनाएं गुप्त रखनी चाहिए ऐसा विश्वास होने पर ही छात्र सही जानकारी देगा।
- विद्यालय के बजट में ही निर्देशन कार्यक्रम को स्थान मिलना चाहिये।
- कार्यक्रम को अधिक उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक है कि कार्यक्रम स्थानीय परिस्थितियों के ही अनुकूल हो।
- निर्देशन कार्यक्रम मे परामर्श प्रक्रिया एवं परीक्षण के लिए तथा आलेख पत्र रखने के लिए प्रर्याप्त स्थान भी होना चाहिए।
- निर्देशन एवं परामर्श कार्यकर्ताओं को परामर्श सहायता देने के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिए।
- उचित निर्देशक - सामग्री भी निर्देशन कार्यकर्ताओं को प्राप्त होनी चाहिये। निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए समाज की अन्य निर्देशन एजेन्सियों का यहयोग प्राप्त करना चाहिए।

14.8 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम को आयोजित करने के उद्देश्य

भारत में निर्देशन कार्यक्रम विद्यालय स्तर पर जिस गति के साथ आयोजित हो रहा है वह अधिक संतोषप्रद नहीं हैं। किसी विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम आयाजित करने से पूर्व प्रश्नों पर विचार करना चाहिए -

- विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों की कौन-कौन सी और किस प्रकार की आवश्यकताएँ हैं जिनकी संतुष्टि के लिए उसी प्रकार के संगठन का रूप हो।
- निर्देशन कार्यक्रम में कार्य भार एवं कार्य क्षेत्रो के आधार पर कितने कर्मचारी योग्य हैं।
- विविध सेवाओं को प्रारं भकरने के लिए विद्यालय में कौन-कौन से अध्यापक आवश्यक हैं।
- कया विद्यालय के अध्यापकों के पास शिक्षण कार्य के अतिरिक्त निर्देशन के कार्य भार सम्भालने के लिए समय बचता हैं।
- निर्देशन कार्य के विभिन प्रकार की परीक्षाओं एवं सामग्री की आवश्यकता पड़ती हैं। क्या विद्यालय के बजट में से इनको खरीदा जा सकता हैं।
- क्या कार्यक्रम का आयोजन करने के लिए विद्यालय में उचित स्थान की व्यवस्था हो सकेगी?
- माता पिता तथा अन्य संस्थायें इस प्रकार के कार्यक्रम में रूचि रखते हैं या नहीं?

14.9 विद्यालय में निर्देशन सेवाओं का आयोजन -

कोठारी आयोग ने निर्देशन संबंधी अपनी सिफारिशों में लिखा है कि निर्देशन को शिक्षा का अभिन्न अंग माना जाये और इसे प्राथमिक स्तर से ही शुरू किया जाये। इसी सिफारिश के अनुरूप ही विद्यालय की क्रियाओं को बालकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके विकास के विभिन्न चरणों के अनुसार हो। निर्देशन कार्यकम नियोजित किये जाने चाहिए, ताकि वे बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक क्षेत्रों में सुसमायोजित हो सकें। इस दृष्टि से बालकों के विकास की अवस्था के अनुरूप तथा विभिन्न विद्यालय स्तरों के अनुरूप ही निर्देशन कार्यक्रमों के उद्देश्य तय किये जाते है, एक बात ध्यान देने योग्य है कि कोई निर्देशन व्यवस्था सभी विद्यालय में उपयोगी नहीं हो सकती हैं। अत: इसमें लचीलापन होना आवश्यक है जिसमें विद्यालय की आवश्यकताओं तथा आर्थिक साधनों के अनुरूप परिवर्तन किया जा सकें।

प्रारंभिक विद्यालयों की निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन -

प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालकों की समस्यायें कम होती है एवं अधिक गंभीर भी नहीं होती हैं। अत: इस स्तर निर्देशन कार्य अध्यापक ही सम्पन्न करता हैं। किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं होती हैं। प्राथमिक स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का निम्नांकित चित्र हो सकता हैं।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का प्रशासन विद्यालय के हाथों में होता हैं कक्षा अध्यापक छात्रों के अधिक संपर्क में रहता है अत: वह उनकी समस्यायें भली भांति समझता हैं निर्देशन कार्य को पूर्ण करने के लिए अध्यापक एवं प्रधानाचार्य समाजिक संस्थाओं एवं विद्यालय के बाहर की संस्थाओं की

सहायता भी लेते हैं माता पिता, चिकित्सक, उपस्थिति अधिकारी आदि सभी का सहयोग प्रदान करना होता हैं।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य -

इस स्तर में 5 से 11 वर्ष की आयु के बालक अर्थात् कक्षा एक से पांच तक के छात्र शामिल होते हैं इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम निम्नलिखित उद्देश्य होते है -

1- घर से विद्यालय में विद्यालयों का संतोषजनक परिवर्तन करवाने में सहायता करवाना।

2- मूलभूत शैक्षिक कौशलों को सीखने में आ रही कठिनाइयों के निदान में सहायता करना।

3- विद्यार्थियों को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए जरूरतमंद विद्यार्थियों की पहचान करने में सहायता जैसे प्रतिभाशाली, पिछड़े, तथा विकलांग बालक।

4- संभावितविद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों को स्कूल ठहराये रखना।

5- विद्यार्थियों को उनकी आगामी शिक्षा या प्रशिक्षण की योजना बनाने में सहायता करना।

क्रियाएँ या गतिविधियाँ - उपरोक्त विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्त करने के लिए प्राथमिक स्तर पर क्रियायें करनी होती हैं इस स्तर पर अध्यापक की केन्दिय भूमिका होती है, क्योंकि अध्यापक बालकों की रूचियां, योग्यताओं और आवश्यकताओं तथा प्रतिभाओं की खोज करने के लिए उत्तम स्थिति में होता हैं प्राथमिक स्तर पर यह गतिविधियाँ की जाती हैं

विद्यार्थियों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम - इसमें विद्यालय वातावरण के बरे में बच्चों को तथा उनके माता पिता को बताया जाता है कि उनको विद्यालय तथा निर्देशन कार्यक्रम में उनकी भूमिका आदि से परिचित कराया जाता हैं

- निदानात्मक और मूलभूत कौशलों का परीक्षणों का प्रयोग प्राथमिक कक्षाओं में खूब किया जाना चाहिए। क्योंकि दोषपूर्ण पठन से बहुत ही अवांछित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।
- प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की खोज - विभिन्न विधियों और प्रविधियों की सहायता से प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की खोज की जाती हैं। इन प्रतिभाओं के वैज्ञानिक योग्यता, सर्जनात्मक योग्यता, नेतृत्व की योग्यता, संगीत की योग्यता आदि शामिल होती हैं।
- कुसमायोजित और विभिनन दोषमुक्त विद्यार्थियों की खोज- ऐसे विभिन्न दोषों से युक्त और कुसमायोजित विद्यार्थियों की खोज करना अति आवश्यक है इसके लिए निरीक्षण परीक्षणों एवं अन्य विधियो का प्रयोग किया जाता हैं।

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर निर्देशन की बाधाएं

- यद्यपि भारत में निर्देशन कार्य का श्रीगणेश हो चुका है, किन्तु इसकी प्रगति अत्यंत अपर्याप्त एवं धीमी है | निर्देशन का जो थोडा बहुत कार्य हो रहा है उसे भी दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता | इसका कारण निर्देशन के मार्ग में आनेवाली अनेक बाधाएं हैं–

- **शिक्षकों का रुढ़िवादी रुख-** भारत देश में शिक्षा के क्षेत्र में जो लोग प्रवेश करते है उनमें से अधिकांश जीवन के अन्य क्षेत्रों के अवसर से वंचित लोग होते है | बहुत कम लोग इस प्रकार के होते है, जिनकी शिक्षण के क्षेत्र में रूचि होती है | परिणामत: कोई भी नवीन य रचनात्मक कार्य सौपें जाने पर वे उसमे अपना उत्साह प्रदर्शित नहीं करते | उनके अध्यापन का ढंग भी (बावजूद प्रशिक्षण के) प्राय: परम्परागत ही रहता है | शिक्षको के इस रुढ़िवादी रुख के कारण निर्देशन कार्य गतिशील नहीं हो पाता|
- **संसाधनों का अभाव-** इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे देश में विकसित देशों जैसी आर्थिक समृद्धि नहीं है किन्तु जो भी संसाधन उपलब्ध है उनका उचित उपयोग न किये जाने के कारण शिक्षा और निर्देशन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र पिछड़ जाते है और तत्संबंधी अधिकांश योजनायें कागजी रिपोर्ट रह जाती है|
- **शिक्षक छात्र अनुपात-** देश में शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बावजूद भी शिक्षक छात्र अनुपात निर्धारित मानक स्तर तक नहीं पहुँच पा रहा है और एक कक्षा में इतने अधिक छात्र होते है कि अध्यापक को छात्रों से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने में कठिनाई होती है और ऐसी स्थिति में वैयक्तिक परामर्श या निर्देशन कार्य कठिन हो जाता है |
- **शिक्षकों पर कार्यभार की अधिकता**- निर्देशन का प्रारंभिक दायित्व शिक्षकों पर होता है, किन्तु हमारे देश में रजिस्टर अभिलेख, कापियों को जांचने सम्बन्धी कार्य, जनगणना, मतदान सम्बन्धी कार्य एवं अनेक गौण कार्यो की अधिकता के कारण शिक्षक अपने मूल कार्य शिक्षण व निर्देशन सम्बन्धी दायित्वों का पूर्णत: निर्वहन करने में कठिनाई महसूस करता है |
- **निर्देशन के विभिन्न अभिकरणों के बीच सामंजस्य का अभाव-** निर्देशन की जो थोड़ी बहुत सुविधाएँ उपलब्ध है, सामंजस्य के अभाव में उनका उपयोग नहीं हो पाता | घर, विद्यालय, मनोचिकित्सा एवं राज्य निर्देशन ब्यूरो आदि अनेक निर्देशन एवं परामर्श अभिकरणों के कार्यो में परस्पर सहयोग एवं आदान-प्रदान के अभाव में निर्देशन कार्यो की समुचित प्रगति संभव नहीं है |

निर्देशन के प्रति जागरूकता एवं संसाधनों के उपलब्धता द्वारा इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है

माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन -

प्राथमिक विद्यालय की अपेक्षा माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम व्यवस्था निश्चित रूप धारण कर लेती हैं। इस स्तर पर संगठन कुछ जटिल हो जाता हैं। माध्यमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम की व्यवस्था को निम्नांकित चित्र हो सकता हैं।

माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य –

कक्षा 6 से 8 तक माध्यमिक स्तर होता हैं। इन कक्षाओं में 11 से 14 वर्ष की आयु समूह शामिल होता है, इन वर्षों में बच्चे किशोर अवस्था में प्रवेश कर लेते हैं। यह अवधि कई बालकों के लिए कठिन होती

हैं। इस अवस्था में परिवार, विद्यालय तथा समाज में समायोजन समस्यायें प्रकट होनी शुरू हो जाती है, इस स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य है -

1- विद्यार्थियों को परिवार, विद्यालय और समाज में समायोजन में सहायता करना,

2- विद्यार्थियों की योग्यताओं, अभिरूचियों और रूचियों को खोजना और उनका विकास करना

3- विद्यार्थियों को विभिन्न शैक्षिक और व्यवसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचनायें प्राप्त करने योग्य बनाना।

4- मुख्याध्यापक और अध्यापकों को उनके विद्यार्थियों को समझने तथा अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायता करना।

5- विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यवसायिक योजनाएं बनाने में सहायता करना।

6- इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम किये जा सकते है।

क्रियाएँ या गतिविधियाँ -

1- विद्यालय में मुख्याध्यापक के साथ निर्देशन कार्यक्रम पर विचार विमर्श करना।

2- विद्यालय संकायको परिचित करना,

3- विद्यालय के मुख्याध्यापक द्वारा विद्यालय निर्देशन समिति बनाना जिसमें कैरियर अध्यापक, शारीरिक शिक्षा अध्यापक और अध्यापक अभिभावक ऐसोसिएशन का एक प्रतिनिधि शामिल हो।

4- विद्यार्थियों के तथ्यों को इकट्ठा करना।

2- अभिविन्यास कार्यक्रम - जैसे विद्यालय का वातावरण, पाठ्यक्रम विद्यालयों मे सुविधाओं के बारे मे परिचय, नियमित अध्ययन आदतों का परिचय तथा खाली समय के सदुप्योग के बारे में अभिविन्यास

3- अधिगम वातावरण में सुधार करना।

4- के लिए उपचारात्मक कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता करना।

सैकेण्डरी स्तर एवं सीनियर सैकण्डरी स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन – इन उच्चतर कक्षाओं में छात्राओं को मुख्यतः निर्देशन की सहायता की आवश्यकता होती है इसी समय छात्र विभिन्न व्यवसायों के बे में ज्ञात प्राप्त करना चाहते है या विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त करने के लिए सूचना प्राप्त करना चाहते हैं। सीनियर सैकेण्डरी स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम व्यवस्था का निम्न रूप हो सकता है।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में प्रधानाचार्य पर कार्यभार अधिक होने से वह निर्देशन विभाग पर विशेष ध्यान नही दे पाता है अत: निर्देशन कार्य के संगठन का काम निर्देशन - संचालन का सौंप देता हैं। निर्देशन कार्य के कक्षाध्यापक, कक्षा - परामर्शदाता आदि सभी सहयोग देते हैं। इस स्तर पर विशेषज्ञों की विशेषरूप से आवश्यकता होती हैं।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य -

1- विद्यार्थियों को उनकी दुर्बलताओं और शक्तियों को समझने के योग्य बनाना।

2- शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरो और आवश्यकताओं के बारे में सूचना इकट्ठी करने के योग्य बनाना।

3- विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यावसायिक चयन करने मे सहायता देना।

4- व्यक्तिगत सामाजिक समायोजन के क्षेत्र में सहायता करना।

क्रियाएँ या गतिविधियाँ -

- योग्यताओं, अभिरूचियों, रूचियों, उपलब्धियो और अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के बारे मे आंकड़े एकत्रित करना
- क्षेत्र भ्रणो का आयोजन करना।
- कैरियर कान्फ्रेसिंस और कैरियर प्रदर्शनी का आयोजन
- कोर्स का चयन करने में सहायता करना,
- माता पिता को निर्देशन प्रदान करना।
- अल्प उपलब्धियों और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों की पहिचान करना
- इस स्तर पर स्थानीय व्यावसायिक अवसरों और स्वयं रोजगार अवसरों के बारे में सूचनायें प्रदान करने पर अधिक बल दिया जाता हैं।
- परामर्श सेवा व्यक्तिगत, सामाजिक और शैक्षिक व्यावसायिक समस्याओं के समाधान के लिए उपलब्ध कराई जाती हैं।
- निर्देशन एवं परामर्श कार्य की सफलता निर्देशन प्रदात्ताओं एवं कर्मचारियों पर निर्भर करती हैं। समाजिक संस्थाओं का भी निर्देशन व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य होता हैं।

14.10 सारांश

निर्देशन कार्यक्रम को विद्यालयों में सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक है कि यह संगठित तथा व्यवस्थित रूप में हो निर्देशन को विद्यालय के सामान्य जीवन से पृथक नही किया जा सकता है, न इसको विद्यालय के किसी एक विशेष भाग मे केन्द्रित किया जा सकता है, न इसको परामर्शदाता या प्रधानाचार्य के कार्यालय तक सीमित किया जा सकता है क्योकि निर्देशन सहायता देना विद्यालय के प्रत्येक अध्यापक का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व हैं। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सभी का सहयोग होना चाहिए। जिससे शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकें।

14.11 कठिन शब्दार्थ

- निष्पादन - क्रियान्वित कार्य को पूर्ण करना।
- मुख्याध्यापक- प्रधानाध्यापक

14.12 अभ्यास प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सत्य है उनके आगे सही का निशान एवं जो गलत है, उनके आगे क्रास का निशान लगाये।

1- निर्देशन कार्यक्रम में केन्द्रित रूप से निर्देशन सहायता देना प्रशिक्षित व्यक्तियों का कार्य होता हैं।

2- कार्यक्रम के उद्देश्य निश्चित करना प्रथम कार्य हैं।

3- निर्देशन कार्यक्रम में सभी स्तर पर एक ही विधि प्रयोग करनी चाहिये।

4- प्राथमिक स्तर पर पढ़ने वाले छात्रों की समस्यायें कम होती हैं।

5- निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन में विद्यालय बजट की जरूरत नहीं पडती है|

उत्तर (1) सही (2) सही (1) गलत (4) सही (5) गलत

14.13 निबंधात्मक प्रश्न

1- निर्देशन कार्यक्रम के अच्छे संगठन से आप क्या समझते हैं?

2- निर्देशन सेवाओं के संगठन के मुख्य सिद्धान्तों के बारे में लिखिए?

3- विद्यालय में निर्देशन सेवाओं का आयोजन के बारे में बताये?

4- निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य बताइये?

14.14 संदर्भ ग्रन्थ

- Bhatnagar A.B. (2004) “Educational and mental measurement, R. lall, Book Depot, Meerut
- Bhatnagar R.P (1977) “Guidance and counselling in Education and psychology R. Lall Book Depot, Meerut
- शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन स्वं परामर्श - डॉ. एस.सी. ओबराय लायल बुक डिपो मेरठ
- भार्गव, महेश (2007) - आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, एच.पी. भार्गव, बुक हाऊस, आगरा
- दुबे, एल.एन. (2009) - परामर्श मनोविज्ञान शिक्षा प्रकाशन जयपुर
- राय अमरनाथ एवं अस्थाना मधु (2014) निर्देशन एवं परामर्श, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली

इकाई 15- निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन (Evaluation of Guidance & Counseling Programme)

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन

15.3.1 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का अर्थ

15.3.2 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य

15.3.3 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का महत्व

15.3.4 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता

15.3.5 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के चरण

15.3.6 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के सिद्धान्त

15.3.7 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ो के स्रोत व विधियाँ

15.3.8 निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की नवीन धारणायें

15.4 परामर्श

15.4.1 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन का अर्थ

15.4.2 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य

15.4.3 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन के लक्ष्य

15.4.4 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता

15.4.5 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन के सिद्धान्त

15.4.6 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ो का उपयोग

15.4.7 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में समस्याए

15.5 निर्देशन कार्यक्रम व परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की विधियाँ

15.6 परामर्श कार्यक्रम में परामर्शदाता का स्वमूल्यांकन

15.7 सारांश

15.8 शब्दावली

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.11 संदर्भ सूची

15.1. प्रस्तावना-

आज व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याये व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक व व्यवसायिक जीवन से सम्बन्धित हो सकती है, जन्म के बाद व्यक्ति जैसे-जैसे समाज के संपर्क में आता है, वह अपने को इन समस्याओं से घिरा हुआ पाता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए, उसे किसी न किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। निर्देशन कार्यक्रम इन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है क्योंकि निर्देशन कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य है कि व्यक्ति को इस योग्य बनाया जाये कि वह स्वयं अपनी समस्यायों का समाधान करने में सक्षम हो सके। इसके लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम में यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि किस सीमा तक उद्देश्यों की पूर्ति हुई है।

परामर्श कार्यक्रम में परामर्शदाता व्यक्ति को समस्याओ के समाधान करने योग्य बनाता है। जैसे छात्रों में कोई कठिनाई व समस्या आ जाती है तो वह परामर्शदाता के पास जाता है और परामर्शदाता छात्रों की क्षमता रूचि योग्यता आदि का मूल्यांकन कर उन्हें सही शैक्षिक व व्यवसायिक निर्देशन देता है। परामर्श कार्यक्रम में परामर्श कार्यक्रम की प्रक्रिया और परिणाम का मूल्यांकन सम्पूर्ण प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। परामर्श एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है इसके पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है, परामर्श कार्यक्रम के द्वारा हम इन उद्देश्यो को पूरा करना चाहते है और हमने इन उद्देश्यो को पूरा करने में कितनी सफलता प्राप्त की है इसका मूल्यांकन करना आवश्यक है। मूल्यांकन कार्य को परामर्श प्रक्रिया का महत्वपूर्ण सोपान माना जाता है। परामर्श की प्रक्रिया और परिणाम का मूल्यांकन मनोचिकित्सा एव परामर्श का अभिन्न अंग होता है। इसके द्वारा आरम्भिक सम्बन्धो का निर्माण होता है। (बोर्डिन (Bordin E.S.1994)) । परामर्श, प्रार्थी की प्रगति में सहायक है, (विल्स (F Wills 1997))। परामर्श के मूल्यांकन को परामर्श कार्य की गुणवत्ता में उपयोगी मानते है। नई सामाजिक, शैक्षिक व अन्य परिवर्तनों के कारण भी हमे अपनी कार्ययोजना के सम्बन्ध में मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है। मूल्यांकन के द्वारा हमे यह पता चलता है की परामर्श कार्यक्रम सफल तथा प्रभावशाली रहा है या नही। मूल्यांकन का वर्णन परिणाम मूल्यांकन के रूप में करते है (मैक्लीआड 1994) अधिकांश उपागम परामर्श मूल्यांकन को उद्देश्य गुणवत्ता सुधार व कुछ उपागम परामर्श मूल्यांकन को परामर्श का अभिन्न अंग के रूप मे मानते है, जो कि परामर्श प्रक्रिया के साथ निरंतर चलते रहते है व परामर्श के लक्ष्यो को प्राप्त करने मे सहायक होता है।

15.2. उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप-

1. निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन को परिभाषित कर सकेगे।
2. निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की आवश्यकता को समझ सकेगे।
3. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की चरणबद्ध योजना तैयार कर सकेगे।
4. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन को संपन्न करने की विभिन्न विधियों को समझ सकेगे।
5. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ों को प्राप्त करने के स्रोतों को समझ सकेगे।
6. परामर्श कार्यक्रम में परामर्श के बाद मूल्यांकन की आवश्यकता क्यों पडती है, आप यह समझ सकेगे,
7. परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन के सद्धान्तों को समझ सकेगे।
8. परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन के उद्देश्यों को समझ सकेगे।
9. परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन पद्धति को समझ सकेगे।
10. परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में आकडों के उपयोग को समझ सकेगे।

15.3 निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन

15.3.1 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का अर्थ

निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन का अर्थ दो रूपों में समझ सकते है।

1. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन से अर्थ किसी संस्था में सक्रिय कार्यक्रम में दी जाने वाली सेवाओ की गुणवत्ता के मूल्यांकन से है इस प्रकार के मूल्यांकन को तुलनात्मक मूल्यांकन भी कहते है। क्योंकि इसमें दी जाने वाली सेवाओ की गुणवत्ता व स्वरुप के द्वारा अनेक कार्यक्रमों की तुलना करके यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किस कार्यक्रम की विशेषताए अधिक उपयुक्त है।
2. निर्देशन कार्यक्रम का प्रार्थी पर पड़ने वाले प्रभाव, लाभ तथा जीवन में लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में कार्यक्रम की भूमिका का मूल्यांकन किया जाता है। ऐसे मूल्यांकन को विशेष मूल्यांकन कहा जाता है।

15.3.2 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य

निर्देशन कार्यक्रम को निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सम्पन्न किया जाता है।

1- निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावशाली एवं उपयोगी बनाना।
2- व्यक्ति को अपनी समस्यायों का समाधान के लिए अभिप्रेरित करने हेतु पुरुस्कार प्रदान करना।
3- व्यक्ति को यह जानकारी प्रदान करना की उसके द्वारा आयोजित निर्देशन कार्यक्रम से समस्यायों का समाधान करने में कितनी सफलता प्राप्त हुई है।
4- व्यक्ति का विभिन्न व्यवसायों तथा उनके विषय में जानकारी देने वाले स्रोतों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
5- व्यक्ति को भविष्य की उपलब्धियों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
6- समाज व समुदाय को निर्देशन कार्यक्रम की उपयोगिता तथा महत्व के बारे में बताना।

15.3.3 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का महत्व

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का महत्व निम्न प्रकार है-

1- निर्देशन कार्यक्रम को अधिक प्रभावी व्यवहारिक व उपयोगी बनाने के लिए मूल्याकंन आवश्यक है।
2- मूल्यांकन से व्यक्ति की सफलता प्रगति आदि का ज्ञान प्राप्त होता है।
3- मूल्यांकन के द्वारा यह भी पता चलता है कि निर्देशन कार्यक्रम अपने उद्देश्यों के अनुसार कार्य कर रहा है या नही।
4- मूल्याकंन से निर्देशन कार्यक्रम की नयी पद्धतियों की खोज के बारे में जानकारी होती है।
5- मूल्यांकन हमें निर्देशन सेवाओं की प्रभावशीलता की भी जानकारी प्रदान करता है।

15.3.4 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता निम्न प्रकार है-

1- व्यक्ति के व्यवहार पर निर्देशन कार्यक्रम के विभिन्न प्रकारों का प्रभाव देखने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।
2- व्यक्ति को दी जाने वाली निर्देशन सेवाओ की गुणवत्ता की जानकारी प्राप्त करने के लिए मूल्याकंन आवश्यक है।
3- व्यक्ति को दी जाने वाली निर्देशन सेवा की व्यावहारिकता व पर्याप्तता जानने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।
4- निर्देशन कार्यक्रम को अधिक प्रभावी बनाने के लिए अन्य क्रिया-कलापों तथा तकनीको को उपयोग में लाने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।

15.3.5 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के चरण (Step in the Evaluation of Guidance Program)-

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन प्रक्रिया के निम्न चरण हैं।

1- **निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों का वर्णन-** मूल्यांकन के प्रथम चरण में निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों की सूची बना लेनी चाहिए। निर्देशन कार्यकर्ताओं द्वारा इन उद्देश्यों को समझ लेना चाहिए जिससे लक्ष्य प्राप्त हो सके। उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए जिससे कि वे मापन योग्य हो सके।
2- **जाँच के बिन्दु**- निर्देशन कार्यक्रम में उद्देश्यों को निश्चित करने के बाद उसकी जाँच के बिन्दु निश्चित करना चाहिए। जो भी जाँच के बिन्दु तय किए जाए उसी के आधार पर अपेक्षित आकडों को एकत्रित करने के लिए उपयुक्त विधियों और तकनीकों का निर्धारण किया जाता है।
3- **योजना का क्रियान्वन**- निर्देशन कार्यक्रम के योजना की रुपरेखा तैयार करने के बाद उसके क्रियान्वयन की आवश्यकता होती है। उसके क्रियान्वयन से पहले दूसरे निर्देशन विशेषज्ञों की

सहमति और सुझाव भी मांगे जा सकते हैं। निर्देशन कार्यक्रम में होने वाले कार्यो को व्यवस्थित रूप से क्रियान्वित किया जा सकता है।

4- **प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या**- इस बात की सबसे अधिक सावधानी रखनी चाहिए की निर्देशन कार्यक्रम से जो आकड़े एकत्रित किये गए हैं, वे विश्वसनीय हैं। सबसे पहले प्राप्त आकड़ो को एकत्रित कर उन्हें व्यवस्थित करना चाहिए, उसके बाद उनकी व्याख्या करनी चाहिए, निष्कर्षो को संक्षेप रूप में प्राप्त कर उन्हें निर्देशन विशेषज्ञों से प्राप्त आकड़ों से जाँच करनी चाहिए।

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन में उपयोग किये जाने वाले चरणों को निम्न रूप से दर्शाया गया है।

मूल्यांकन के चरण

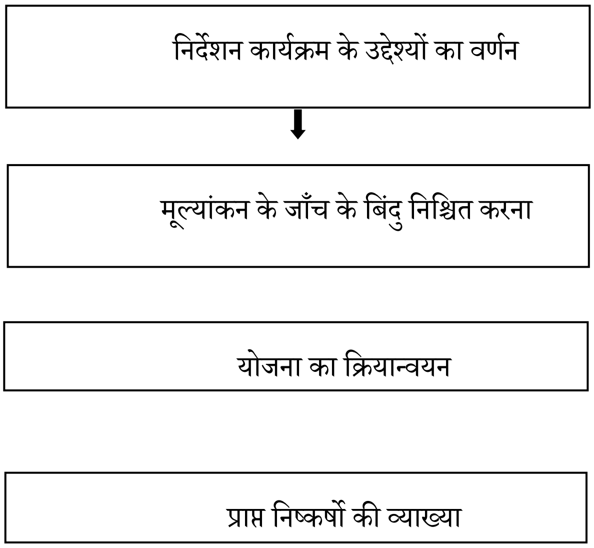

15.3.6 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के सिद्धान्त (Theory of Guidance Program Evaluation)–

निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि इनके बिना मूल्यांकन कार्यक्रम संभव नहीं है।

1- उचित मूल्यांकन के लिए सामान्य व व्यापक उद्देश्यों के साथ-साथ विशेष उद्देश्यों का निर्धारण भी करना चाहिए, निर्देशनकर्ताओं को यह स्पष्ट होना चाहिए की वह मूल्यांकन क्यों कर रहा है।

2- व्यक्ति के व्यवहार को अनेक कारक प्रभावित करते है जैसे परिवार, समाज, दोस्त आदि। मूल्यांकन निष्कर्ष केवल उन्ही तथ्यों के आधार पर करना चाहिए जिनका हम मापन कर सकते हैं।

3- विशिष्ट प्रत्ययो को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने से मूल्यांकन प्रभावशाली हो जाता है साथ ही विभिन्न व्यक्तियों द्वारा इसका प्रयोग करने पर त्रुटियाँ भी नहीं होती हैं।

4- मूल्यांकन गहन और व्यापक होना चाहिए। निर्देशनकर्ता के पास व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसकी बौद्धिक क्षमताओं, रूचि, अभिरुचि, प्रेरणा आदि की जानकारी होनी चाहिए क्योंकि मूल्यांकन के समय

इनका उपयोग आवश्यक है। व्यक्ति का व्यवहार इन सभी से प्रभावित होता है। अतः मूल्यांकन के समय इनका मापन अलग-अलग न करके सम्पूर्ण रूप में करना चाहिए।

5- मूल्यांकन के परिणाम सुव्यवस्थित, स्पष्ट, अर्थपूर्ण व् व्यवस्थित होने चाहिए। जिससे कि जनसाधारण के समझ में आ जाए।

6- मूल्यांकन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, इसे इस प्रकार आयोजित करना चाहिए कि एक चरण पूर्ण होने पर दूसरा चरण स्वतः ही शुरू हो जाए।

15.3.7 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ो के स्रोत व विधियाँ

निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन कार्य के लिए आकड़े निर्देशन प्रार्थी से प्राप्त होता है, साथ ही कुछ सूचनाये माता-पिता, अध्यापको, मित्रो, निर्देशन कर्ताओं एवं निर्देशन अभिलेखों आदि से प्राप्त किए जाते है।

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए उचित सूचनाये एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। अनुवर्ती सेवा में प्रश्नावली विधि का प्रयोग अधिक होता है।

अनुवर्ती अध्यनों में प्रश्नावली विधि का प्रयोग करने में अनेक समस्याऐ भी आती है।

1- कुछ निर्देशन प्राथी पहले लिखे पते पर नही मिलते क्योंकि वह पता बदल चुके होते हैं।

2- कुछ व्यक्ति प्रश्नावली वापस नही करते हैं।

3- प्रश्नावली के प्रश्नो का सही उत्तर नही देते हैं।

4- प्रश्नावली बनाने, भेजने व विश्लेषण के कार्य में समय श्रम व धन अधिक व्यय होता है।

रोएबर एरिक्सन व स्मिथ मूल्यांकन आकडों के संकलन में साक्षात्कार विधि को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। कार्लसन और वेनडाइवर ने टी0 ए0 टी0, म्यूएन्श ने रोर्शा, ड्रसेल एंव मट्टेसन ने आत्मबोध परीक्षण का उपयोग किया है। पेपिन्सकी एवं सहयोगियों ने समाजमितिक विधि का प्रयोग किया है।

15.3.8 निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की नवीन धारणायें

निर्देशन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि निर्देशन कार्यक्रम किस सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हुआ है। निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन को अधिक सफल बनाने के लिए निम्न लिखित उपायों को अपनाया जा सकता है।

1- निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों को स्पष्ट करना – निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के सम्बन्ध में सबसे पहले यह जाना जाता है कि निर्देशन कार्यक्रम के लक्ष्य किस सीमा तक वैध, परामर्शदाता द्वारा समझा जाने योग्य तथा प्रार्थी द्वारा प्राप्त किये जा सकते है। इन सब प्रश्नों के स्पष्ट होने पर ही निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य स्पष्ट हो सकेंगे।

2- निर्देशन कर्मचारियों का सर्वेक्षण- निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि निर्देशन कार्य में लगे कर्मचारियो की रूचि निर्देशन कार्य में है या नही, वे प्रशिक्षित है या नही। छात्रों की संख्या के अनुपात में उनकी संख्या क्या है। इन सबका सर्वेक्षण करना चाहिए जिससे

कि कर्मचारियों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त हो जाती है। अगर छात्रों की तुलना में निर्देशन कर्मचारियों की संख्या कम है तो उसे और अधिक करना चाहिए जिससे कि निर्देशन कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया जा सके।

3- **निर्देशन कार्यक्रम में सुविधाओं का विश्लेषण-** निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन में वर्तमान समय में निर्देशन कार्यक्रम के लिए उपलब्ध सुविधाओं को ध्यान में रखकर मूल्यांकन किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम के लिए कितना समय पर्याप्त है व निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए न्युनतम व आवश्यक सुविधाओं के क्षेत्र में शोध कार्य हो रहा है। इन सबका विशलेषण करना चाहिए जिससे कि निर्देशन कार्यक्रम में सुविधाओं का विश्लेषण होता है।

4- **रिकाडों की पूर्णता-** निर्देशन मूल्यांकन में रिकाडों की स्थिति क्या है, उपलब्ध रिकार्ड पर्याप्त व पूर्ण है, संकलित है या नही निर्देशनकर्ताओ के पास उपलब्ध है या नही इन सब बातों पर ध्यान दिया जाता है। जिससे कि निर्देशन कार्यक्रम का उचित रूप पर मूल्यांकन हो सकेगा।

5- **आकडों की संग्रह**– व्यक्ति के सम्बन्ध में आकडे एकत्रीकरण पर अधिक बल दिया जा रहा है मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अतिरिक्त परिवार मित्र व समाज से एकत्रित सूचनाओं को भी निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की प्रकिया में महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। क्योंकि व्यक्ति के विषय में सम्पूर्ण जानकारी केवल मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से प्राप्त नहीं होगी, इसके लिए उसके परिवार, मित्र का मिलना आवश्यक है जिससे निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन उचित हो सकेगा।

6- **सहयोग की सीमा-** निर्देशन कार्यक्रम में निर्देशनकर्ता, कर्मचारियों का सहयोग कितना रहा है, इसका निर्देशन मूल्यांकन के क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। क्योंकि निर्देशनकर्ताओं व कर्मचारियों के सहयोग के बिना निर्देशन कार्यक्रम अपने उद्देश्यों को पूर्ण नहीं कर सकता है।

7- **उद्देश्यों को प्राप्त करने का निर्णय-** मूल्यांकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि निर्देशन कार्यक्रम द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति कहाँ तक हुई है। वर्तमान समय जिन मानकों पर जोर दिया जा रहा है वे हैं, छात्र के विषय में अनुशासनात्मक कार्यवाही की कमी, परीक्षा में असफलता की कमी, विद्यालय में सफलता, वेतन स्तर, कार्यसंतोष आदि इन सब प्रश्नों पर नियंत्रण करके ही निर्देशन कार्यक्रम का उचित मूल्यांकन हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न-क

प्रश्न (1) निर्देशन कार्यक्रम की प्रभाविता का मापन बिना मूल्यांकन के भी सम्भव है – सत्य / असत्य

प्रश्न (2) निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की विधियाँ हैं -

(क) प्रयोगात्मक
(ख) सर्वेक्षण
(ग) व्यक्ति अध्ययन
(घ) उपयुक्त तीनो

प्रश्न (3) निर्देशन कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए वांछित सूचनाओ के संकलन हेतु सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली विधि है-

(क) साक्षात्कार
(ख) प्रश्नावली
(ग) प्रयोग
(घ) व्यक्ति इतिहास

प्रश्न (4) विस्लो की सर्वेक्षण तकनीक की प्रणाली है-

(क) अर्द्धसंरचित साक्षात्कार
(ख) असंचरित साक्षात्कार
(ग) संचरित साक्षात्कार
(घ) नैदानिक साक्षात्कार

प्रश्न (5) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन का प्रधान सोपान है ।

15.4. परामर्श

15.4.1 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन का अर्थ-

परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन का अर्थ जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि मूल्यांकन का अर्थ क्या है मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी वस्तु का मूल्य निश्चित किया जाता है। मूल्यांकन हमें क्यों और कैसे का उत्तर देता है। टारगर्सन एवं एडमस (Targarson and Adams) के अनुसार “किसी वस्तु का महत्व निर्धारित करना ही मूल्यांकन है। शिक्षण प्रक्रिया की मात्र के सम्बन्ध में निर्णय करना ही मूल्यांकन है।” क्रानबैक (Cronbach) के अनुसार- मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अध्यापक एवं छात्र यह निर्णय करते हैं कि शिक्षण लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है अथवा नहीं। विवलिन एवं हना (Vivlin and Hannah) के अनुसार विद्यार्थियों के व्यवहार में विद्यालय द्वारा किये गए परिवर्तनों के विषय में प्रमाणों को संकलित करना तथा उसकी व्याख्या करना ही मूल्यांकन है।

परामर्श प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण चरण मूल्यांकन है, मूल्यांकन के अभाव मे परामर्श प्रक्रिया पूर्ण नही होती है। परामर्श देने के बाद परामर्श की प्रगति, सफलता परामर्श के उद्देश्यो को पूर्ण करने की जाँच, परामर्श का प्रभाव, परामर्श देने से परामर्श प्रार्थी को प्राप्त लाभ/हानि, परामर्श की उपयोगिता, परामर्श प्रक्रिया आदि की जाँच करना ही परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन कहलाता है।

दूसरे शब्दो में परामर्श के सम्बन्ध मे मूल्यांकन का अर्थ यह भी है कि यह निर्धारित करना कि परामर्श लक्ष्यो की प्राप्ति हुई है या नही, यदि हाँ तो किस सीमा तक। ऐसे अनेक परामर्श उपागमो और स्थितियों का मूल्यांकन का भी अवश्यक है जिसमे परामर्श सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है।

15.4.2 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य

परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1. मूल्यांकन के द्वारा हमे यह ज्ञात होगा की निर्देशन कार्यक्रम क्यों आवश्यक है।
2. परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में रूचि लेने वाले उपागम में परामर्श प्रार्थी की अन्तदृष्टी जाग्रत करना।
3. परामर्श प्रार्थी की अपनी सहायता कर पाने सम्बन्धी क्षमताओं मे वृद्धि करना।
4. परामर्श प्रार्थी में आत्मविश्वास का विकास करना।
5. परामर्श प्रार्थी की सफलता मे वृद्धि।
6. सभी परामर्श प्रार्थियो के लिए समानता सुनिश्चित करना।
7. परामर्श प्रार्थी मे आत्मबोध का विकास करना।
8. परामर्श कार्यक्रम की गुणवत्ता के विषय में जानकारी देने वाली उपयुक्त विधियों का उपयोग करना।

15.4.3 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन के लक्ष्य

परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन का मुख्य लक्ष्य परामर्श प्रार्थी को दिए जाने वाले परामर्श के गुणो के विषय में जानकारी देने वाली विधियो का उपयोग करना व कमियो को पहचानना तथा परामर्श प्रक्रिया में सहयोग देना है।

क्लार्क व बारखम ने छ: प्रमुख व्यवहारिक लक्ष्यो का वर्णन किया है।

1. सेवा संरचना की उपयुक्ता का निर्देशन।
2. सेवा व्यवस्था की सुलभता में वृद्धि।
3. सेवा प्रक्रिया की स्वीकार्यता की जाँच।
4. समस्त प्रार्थियों के लिए समानता सुनिश्चित करना।
5. सेवा प्रणालियों की प्रभावशीलता का निर्देशन।
6. सेवा वितरण की सफलता में वृद्धि।

15.4.4 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता

परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन की आवश्यकता निम्न कारणों से पड़ती है-

5- परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन से हमें यह ज्ञात होता है कि परामर्श कार्यक्रम परामर्श के उद्देश्यों के अनुसार सम्पन्न हो रहा है या नही, अगर परामर्श कार्यक्रम परामर्श उद्देश्यों के अनुसार सम्पन्न नही हो रहा है, तो उसमें संशोधन की क्या आवश्यकता है।

6- परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन परामर्शदाता को उचित मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए आवश्यक है।

7- परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन परामर्श के उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है।

8- परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन परामर्श कार्यक्रम को और अधिक व्यवहारिक उपयोगी और सक्षम बनाने के लिए आवश्यक है।

9- मूल्यांकन के द्वारा परामर्श प्रार्थी द्वारा परामर्श केन्द्रो से प्राप्त सफलता प्रगती और सन्तुष्टि के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

10-परामर्शदाता मूल्यांकन के द्वारा परामर्श का लाभ ले चुके परामर्श प्रार्थी की सफलता और संतुष्टि का मूल्यांकन कर अपनी परामर्श सेवाओं की सफलता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकता है।

11-परामर्श सेवा को जनसाधारण तक फ़ैलाने के लिए भी मूल्यांकन जरूरी है, क्योंकि मूल्यांकन के द्वारा जनसाधारण को अपनी कुशलता व कमजोरियों के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है उन्हे यह भी जानकारी हो जाती है, कि उन्हे और किन-किन नए क्षेत्रो में अभी प्रगति करनी है।

15.4.5 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन के सिद्धान्त

परामर्श कार्यक्रम की सफलता के लिए उसका मूल्यांकन करना अत्यधिक आवश्यक है, मूल्यांकन करते समय मूल्यांकन के कुछ सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में परामर्श कार्यक्रम का उचित मूल्यांकन नही हो सकता है।

1. परामर्श कार्यक्रम से सम्बन्धित अधिकारियों, उनके कार्यों, परामर्श मे प्रयोग की गई विधियों, पद्धतियों, परामर्श के परिणामों व उनकी विवेचना में प्रयोग की गई भाषा में समानता होनी चाहिए।
2. परामर्श कार्यक्रम के उचित मूल्यांकन के लिए आवश्यक है, कि बड़े-बड़े उद्देश्यों के स्थान पर छोटे-छोटे उद्देश्यों का चुनाव करना चाहिए, यदि किसी विशेष उद्देश्य का चुनाव किया गया है तो उसकी सम्बन्धित व्यवहारिक उपलब्धियों का भी वर्णन करना चाहिए।
3. परामर्श कार्यक्रम उपलब्ध साधनो के अनुसार ही करना चाहिए।, क्योंकि अधिकारियो के असहयोग, धन का अभाव, परामर्श के उद्देश्यों को पूरा करने वाले साधनो की कमी आदि के कारण से परामर्श क्रार्यक्रम में कठिनाई होती है,
4. छात्रो के व्यवहार को विद्यालय के कार्य ही प्रभावित नही करते बल्कि घर समाज व मित्रता आदि भी प्रभावित करते है इन सब पर एक साथ नियंत्रण नही किया जा सकता है और न ही

एक साथ सबकी व्याख्या की जा सकती है, अत: मूल्यांकन का निष्कर्ष केवल मापन योग्य वास्तविकता घटना के आधार पर ही निकालना चाहिए।

5. परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन गहन व विस्तृत होना चाहीए। मापन के लिए यदि उपकरण नही है, तो स्वयं उपकरण का निर्माण करना चाहिए।
6. परामर्श प्रार्थी के व्यवहार का मापन उसके व्यवहार की योग्यता के अनुसार जैसे- मानसिक, बौद्धिक तथा सामाजिक व्यवहार की एक दूसरे से अलग व्याख्या नही कर सकते है, करना चाहिए।
7. मूल्यांकन के परिणाम स्पष्ट, वस्तुनिष्ठ तथा अर्थपूर्ण होने चाहिए जिससे कि वे छात्र, अभिभावक, विद्यालय अधिकारी व समस्त जनसाधारण की समझ में सरलता व सीघ्रता से आ जाए।
8. मूल्यांकन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, एक सोपान के समाप्त होने पर दूसरा सोपान स्वत: ही प्रारम्भ हो जाता है।

15.4.6 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ो का उपयोग

परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन के आकड़ो की उपयोगिता के दो प्रकार हैं।

1. **परामर्श की प्रभावशीलता का मापन** – अधिकतर परामर्शदाताओं का मानना है की अगर परामर्शप्रार्थी की संतुष्टि का मापन कर लिया जाये तो उससे परामर्श की प्रभावशीलता का भी मापन हो जायेगा। इसकी कुछ कमियां भी है जो निम्न प्रकार हैं-
    1. परामर्श प्रार्थी की संतुष्टि का मापन करके ही उसकी असंतुष्टि का मापन नहीं कर सकते हैं।
    2. कभी-कभी परामर्श प्रार्थी असंतुष्ट होने पर भी असंतुष्टि की भावना को मापन नहीं कर सकते हैं।
    3. अधिकांश संतुष्टि मापनियों के प्रति परामर्श प्रार्थी हाँ में उत्तर देता है।
2. **परामर्श कार्यक्रम की गुणवत्ता बढ़ाना** – परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन से प्राप्त आकड़ों से प्राप्त परामर्श कार्यक्रम की गुणवत्ता का मूल्यांकन परिणाम मूल्यांकन की तुलना में नया है। इस प्रकार प्राप्त की सूचना के द्वारा परामर्श की गुणवत्ता का विकास किया जाता है। मूल्यांकन की गुणवत्ता के लिए परामर्शसेवा की सरलता, परामर्श की प्रभावशीलता व परामर्श की कार्यकुशलता से सम्बंधित अनेक प्रश्नों से प्राप्त उत्तर के द्वारा परामर्श कार्य की गुणवत्ता का विकास किया जाता है।

15.4.7 परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में समस्यायें -

1. **मापदंडों का चुनाव** – परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए ऐसे मानदंड निर्धारित होने चाहिए जिससे परिणामों की जाँच की जा सके। अच्छा मानदंड वह है जो अध्ययन की जाने वाली समस्या से सम्बंधित हो, संख्यात्मक रूप में निर्धारित होने पर ये अस्पष्ट व अव्यवहारिक

भी हो जाते है। यदि परामर्शदाता की प्रभाविता की जाँच परामर्शप्रार्थी की व्यक्तिगत राय से करे तो निष्कर्ष व्यक्तिनिष्ठ होंगे।

2. **मूल्यांकन किये जाने वाले लक्ष्य की जटिलता-** परामर्श का लक्ष्य आत्म निर्देशन व आत्म निर्भरता को प्राप्त करना होता है। इन लक्ष्यों का मूल्यांकन सरल नहीं होता है क्योंकि ये जटिल और गतिशील होते है, गतिशील होने के कारण लक्ष्य बदलते रहते हैं जिससे मूल्यांकन करने में कठिनाई होती है। यह समस्या अधिकांशत: व्यक्तिगत परामर्श में होता है।
3. **पर्याप्त आकड़ों का अभाव-** इसका सम्बन्ध पूर्व के परामर्श की स्थिति से व सबसे अच्छे परामर्श की स्थिति की तुलना से है। आकड़ो के अभाव में परामर्श अव्यावहारिक रूप ले लेता है।
4. **मूल्यांकन -** परामर्श में मूल्यांकन एक ऐसे प्रक्रिया है जिसमे काफी समय लगता है।
5. **प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव -** प्रशिक्षित कर्मचारियों के अभाव में उचित मूल्यांकन की समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं।

15.5 निर्देशन कार्यक्रम व परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की विधियाँ

निर्देशन कार्यक्रम और परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में तीन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है।

1. **प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental Method)-**

प्रयोगात्मक विधि के द्रारा मूल्याकंन करने के लिए निर्देशन कार्यक्रम के प्रारम्भ में ही योजना बनानी होती है, सामान्य रूप से प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग दो समूहों पर किया जाता है। एक समूह नियंत्रित समूह व दूसरा समूह प्रयोगात्मक समूह होता है। जैसे वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर एक समूह को निर्देशन दिया जाता है व दूसरे समूह को कोई निर्देशन नही दिया जाता है। जिसे निर्देशन नही दिया गया वह नियंत्रित समूह है। निर्देशन देने के बाद उसके प्रभाव की जांच के लिए दोनों समूहों की तुलना की जाती है। इसके द्वारा यह पता चलता है कि क्या निर्देशन कार्यक्रम का प्रयोगात्मक समूह पर कोई प्रभाव पडता है, यदि प्रभाव पडता है तो किस मात्रा तक पडता है। परामर्श कार्यक्रम में भी प्रयोगात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। प्रयोगात्मक पद्धति के द्वारा परामर्शदाता परामर्श कार्यक्रम के बाद परामर्श प्रार्थी के व्यवहार मे जो भी परिवर्तन होता है उसका अध्ययन करते हैं। इसके लिए परामर्श प्रार्थी के परामर्श कार्यक्रम से पहले व परामर्श कार्यक्रम के बाद के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करते है। मूल्यांकन के द्वारा यह ज्ञात होता है कि परामर्श पार्थी का परामर्श कार्यक्रम से पहले व्यवहार क्या था और परामर्श कार्यक्रम के बाद व्यवहार क्या है। इस विधि के मूलभूत आधार है-

a) उद्देश्यों का निर्धारण करना या उपकल्पनाओं का निर्माण करना।
b) प्रयोग के लिए उपयुक्त विधि का चयन करना।
c) दो या दो से अधिक समूहों का चयन करना।

d) परामर्श के तकनीकों का प्रयोग जिससे परिणामों की निष्पक्ष जाँच हो सके।

e) परामर्श प्रार्थी से प्राप्त आंकडों का विश्लेषण व निष्कर्षो की व्याख्या।

इसका सबसे महत्वपूर्ण चरण समान समूहों का चयन करना है। शैक्षिक व परामर्श के मूल्यांकन में इस विधि का प्रयोग किया जाता है। प्रयोगात्मक पद्धति के द्वारा परामर्श प्रार्थी के व्यवहार के सम्बन्ध में बनाई गई उपकल्पना की जांच के लिए आकड़े व प्रमाण एकत्रित किये जाते है। प्रयोगात्मक पद्धति अत्यधिक जटिल पद्धति, अधिक खर्चीली, व अधिक समय लेने वाली पद्धति है। क्योंकि इसमें परामर्श प्रार्थी के परामर्श कार्यक्रम से पहले व परामर्श कार्यक्रम के बाद दोनो व्यवहारो का अध्ययन किया जाता है, इस पद्धति का प्रयोग विद्यालयों के मूल्यांकन में कम किया जाता है।

2. सर्वेक्षण विधि (Survey Method)

सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली सामान्य विधि है। इस विधि के द्वारा मूल्यांकन करने के लिए व्यक्तियों के व्यवहार और समायोजन पर निर्देशन कार्यक्रम के प्रभाव के सम्बन्ध में मतों, अभिवृतियों, सूचनाओं और अन्य आकडों का संकलन प्रश्नावली के द्वारा या साक्षात्कार प्रणाली द्वारा किया जाता है। साथ ही इसकी व्याख्या भी की जाती है। इस प्रकार सर्वेक्षण मूल्यांकन द्वारा एक समय में सर्वेक्षण प्रणाली द्वारा समूह की दशा का अध्ययन करके पुन: दूसरे समय में सर्वेक्षण प्रणाली द्वारा अध्ययन करके समूह की दशा में परिर्वतन का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार निर्देशन के प्रभाव का मूल्याकंन होता है। परामर्श कार्यक्रम में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करते समय निश्चित किये गए उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए चयन किये गए प्रतिदर्श से आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं, इस विधि में जनसंख्या को पहचानना, उद्देश्य पूर्ण करने वाले प्रतिदर्श का चयन, जानकारी एकत्रित करना, मूल्यांकन में उपयोग की जाने वाले कार्य की सूची, अंत में निष्कर्ष निकलते हैं व व्याख्या करते हैं। इस विधि की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इसमें कम समय में अधिक संख्या में आंकड़े एकत्रित हो जाते हैं जिससे वैध परिणाम प्राप्त होते हैं। जबकि इसमें दोष यह है कि प्रतिदर्श में सम्मिलित व्यक्तियों से अविश्वसनीय उत्तरों की प्राप्ति, सामाजिक रूप से वांछित उत्तर अधिक होते हैं। प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग अधिक होता है, और प्रतिचयन त्रुटि की सम्भावना बढ जाती है, जिससे दोषपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते है। परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस पद्धति में प्रयोगात्मक पद्धति की तरह परामर्श प्रार्थी के परामर्श कार्यक्रम से पहले के व्यवहार व् परामर्श कार्यक्रम के बाद के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन न करके वर्तमान व्यवहार का अध्ययन किया जाता है, और अगर कोई सुधर करना है तो सुधार किया जाता है। सर्वेक्षण विधि के द्वारा हम निर्देशन की समस्त सेवाओं- सूचना सेवा, अनुवर्ती सेवा, परामर्श सेवा व स्थानन सेवा आदि का मूल्यांकन कर सकते हैं।

a) **सूचना सेवा (Information Service)-** निर्देशन कार्यक्रम की सफलता प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता, वैधता व विश्वसनीयता पर निर्भर करती है। सूचना सेवा के मूल्यांकन से हमें यह जानकारी प्राप्त होगी कि सूचना सेवायें विभिन्न छात्रों को उनकी क्षमता व आवश्यकता के अनुसार शिक्षा व व्यवसाय से सम्बंधित सूचनाएं देने में कितनी सफल हुई हैं। इन सर्वेक्षणों के

द्वारा सूचना सेवा की प्रभावशीलता व उपयोगिता से सम्बंधित राष्ट्रीय व स्थानीय मानक तैयार किये जा सकते हैं।

b) **अनुवर्ती सेवा(Follow up Service)-** अनुवर्ती सेवा में हमें व्यक्ति के कार्य क्षेत्र में समायोजन व प्रगति के बारे में पता चलता है, इसे एक उदहारण द्वारा समझ सकते हैं, जैसे एक विद्यालय यह ज्ञात करता है कि एक छात्र किसी क्षेत्र में चला जाता है चाहे वह अध्ययन क्षेत्र है या नियुक्ति क्षेत्र में किस सीमा तक छात्र अपने आपको समायोजित कर पाया है या उस क्षेत्र में उसने कितनी प्रगति प्राप्त की है। इस प्रकार अनुवर्ती सेवा विद्यालय के समस्त निर्देशन कार्यक्रमों की सफलता व असफलता को बताता है। यदि छात्र ने संतोषजनक प्रगति की है और क्षेत्र विषय में संतुलित रूप से समायोजन कर लिया है तो इसका अर्थ है कि विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम सफल है। इस प्रकार अनुवर्ती सेवा समस्त निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन करती है और उसके बाद कार्यक्रमों में सुधार की योजना बनाती है। अतः इसके लिए आवश्यक है कि अनुवर्ती सेवा का भी मूल्यांकन हो।

c) **परामर्श सेवा (Counselling Service)-** परामर्श सेवा का मूल्यांकन परामर्शदाता परामर्श के समय प्रयोग में लाये जाने वाले अभिलेखों के सर्वेक्षण के द्वारा करता है। उदहारण यदि विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन करना है तो विद्यालय में प्रत्येक परामर्शदाता अपने प्रतिदिन के कार्यों, परामर्श के लिए आये छात्रों, उनकी समस्या के समाधान के लिए किया प्रयास, उसमे सफलता, असफलता व कठिनाई आदि का लेखा-जोखा एक विवरण पुस्तिका में रखना चाहिए, यह विवरण पुस्तिका परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में सहायक हो सकती है। इस विवरण पुस्तिका के विश्लेषण से निर्देशन कार्यक्रम की वैधता व विश्वसनीयता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

d) **स्थानन सेवा (Placement Service)-** सूचना सेवा, अनुवर्ती सेवा तथा परामर्श सेवा की तरह स्थानन सेवा का भी मूल्यांकन किया जा सकता है। व्यक्ति के स्थानन सेवा तभी दक्षतापूर्ण कार्य कर सकती है, जबकि उनके पास उन क्षेत्रों की पूर्ण जानकारी हो, जहाँ विद्यालयी शिक्षा समाप्त करने के बाद नियुक्ति प्राप्त की हो। इसके लिए स्थानन सेवा को समय-समय पर अपने शहर तथा पड़ोसी शहरों में सर्वेक्षण करने की आवश्यकता होती है। इनसे आधुनिक आँकड़े तथ्यों तथा क्षेत्रों के ज्ञान के साथ-साथ व्यवसाय में वर्तमान समय में कहाँ-कहाँ वर्तमान में नियुक्ति होनी है, और कहाँ-कहाँ भविष्य में रिक्त पद होने की संभावना है और किन-किन शैक्षिक योग्यता वाले छात्रों की आवश्यकता है। स्थानन सेवा छात्रों को सेवा में नियुक्ति करने व

हटाने वाले अधिकारियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का अध्ययन कर सकती है। स्थानन सेवा का मूल्यांकन करते समय हमें यह देखना चाहिए कि स्थानान सेवा के द्वारा कितने छात्रों को नियुक्ति मिली है? नियुक्तियां दिलाने का प्रतिशत अन्य संस्थाओं की उपेक्षा कितना है। यदि प्रश्नों के उत्तर स्थानन सेवा के द्वारा नियुक्तियां नहीं दिला पाते तो इसकी दक्षता बढाने पर विचार करना चाहिए।

2. **व्यक्ति इतिहास विधि (Case Study Method)**

इस विधि का प्रयोग व्यक्ति के निरन्तर दीर्घकालीन व विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के लिए एक निश्चित समय तक किया जाता है। इसमें निर्देशन प्रार्थी से लगातार सम्पर्क बना कर उसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण सूचनाये एकत्रित की जाता है उसका एक व्यक्तिगत अभिलेख तैयार किया जाता है इसके द्वारा यह पता चलता है कि व्यक्ति पर निर्देशन कार्यक्रम का क्या प्रभाव पड़ता है। परामर्श कार्यक्रम में परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी के व्यक्तिगत बातो की ओर अधिक ध्यान देता है, सभी बातों का गहनता से अध्ययन करता है, जिससे परामर्शदाता द्वारा दिए गए निर्देशन के प्रभाव का पता चलता है, इसके बाद परामर्श प्रार्थी के व्यक्तिगत मूल्यों के द्वारा पुनः मूल्यांकन किया जाता है, उदहारण- परामर्श प्रार्थी परामर्श कार्यक्रम के प्रति क्या सोचता है, या अपने हित को ध्यान में रखते हुए परामर्श के प्रति उसके विचार कैसे हैं। इस विधि का प्रमुख लाभ व्यक्तिगत मामलों में दिए जाने वाले हित में है। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें समय अधिक लगता है, क्योंकि परामर्श प्रार्थी के व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक पहलू का मूल्यांकन करना होता है इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अलग होता है। ऐसे में उसके आंकडों पर कठोर राय देना उचित नहीं होगा।इसके विपरीत अगर हम अलग-अलग परामर्श प्रार्थी से सम्बन्धित आकड़ों को अनदेखा करते हैं तो व्यक्तिगत विधि के विशिष्ट लक्षणों को भी अनदेखा करना ही होगा।

15.6 परामर्श कार्यक्रम में परामर्शदाता का स्वमूल्यांकन

परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता के स्वमूल्यांकन के लिए आत्मप्रबंधन दक्षताओं की आवश्यकता होती है। जिनके द्वारा परामर्शदाता स्वयं का मूल्यांकन कर सकता है। ये दक्षतायें निम्न प्रकार हैं-

1. आत्म स्वीकृति का विकास व स्वयं के अन्दर न्यायपूर्ण ढंग से देखना-
2. अपने सीखने, सावेगिक, शारीरिक, आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पहचानना और उन्हें पूरा करने के लिए संसाधनों का उपयोग करना व स्वयं का मूल्यांकन करना।
3. स्वयं के मूल्यों, विश्वासों के सिद्धांतो को पहचानना और उनकी जाँच करना।
4. स्वयं के प्रतिबिम्ब, अभिलेख को प्रस्तुत करना और पर्यवेक्षण का उपयोग करके परामर्शदाता स्वयं का मूल्यांकन कर सकता है।

5. परामर्श प्रार्थी के साथ मिलकर पुनः स्वयं का मूल्यांकन।
6. परामर्श प्रार्थी से फीडबैक की मांग करना जिससे कि स्वयं की कमियां भी पता चलती है।

15.7 सारांश

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन में यह ज्ञात किया जाता है कि कार्यक्रम के उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है। निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन का अर्थ है कि किसी संस्था द्वारा निर्देशन कार्यक्रम में दी जाने वाली सेवाओ की गुणवत्ता के मूल्यांकन से है।मूल्यांकन की मुख्य आवश्यकता व्यक्ति के व्यवहार में निर्देशन का प्रभाव, उसकी गुणवत्ता, उसकी व्यवहारिकता व कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए प्रयोग की जाने वाली तकनीको के अध्यन में है। निर्देशन कार्यक्रम में उद्देश्यों का निर्धारण, जाँच का मापन, योजना बना व निष्कर्षो की व्याख्या करना मुख्य चरण है। निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन सर्वेक्षण, प्रयोग व व्यक्ति इतिहास विधि द्वारा किया जा सकता है। निर्देशन मूल्यांकन की प्रक्रिया के क्षेत्र में सबसे अधिक ध्यान नवीन प्रवृत्तियो पर दिया जा रहा है इसके अंतर्गत कार्यक्रम लक्ष्यो के स्पष्टीकरण, कार्यकर्ता सर्वेक्षण सुविधाओ के विचार, रिकार्डो की पूर्णता, आकड़ें, सहयोग का प्रसार उद्देश्यों की प्राप्ति आदि के विषय में नवीन योजनाएँ प्रस्तुत की गयी है।

मूल्यांकन का अर्थ निर्धारित मानको के अन्तर्गत कार्यक्रम के प्रभाव की जांच करना है, परामर्श कार्यक्रम परामर्श लक्ष्यो को प्राप्त कर रहा है या नही। परामर्श कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य परामर्श प्रार्थी को दिए जाने वाले परामर्श के विषय में जानकारी देना। परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की मुख्य आवश्यकता है कि परामर्श कार्यक्रम अपने उद्देश्यों के अनुसार सम्पन्न हो रहा है या नही। मूल्यांकन करते समय मूल्यांकन के सामान्य सिद्धांतो को ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में परामर्श कार्यक्रम का उचित मूल्यांकन नही हो सकता है। परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में प्रयोगात्मक सर्वेक्षण और व्यक्ति इतिहास विधि का प्रयोग किया जाता है। परामर्श कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले परामर्शदाता को स्वयं अपना भी मूल्यांकन करना चाहिए, जिससे कि अपनी कमियो का भी पता चलता है।

15.8 शब्दावली

निर्देशन कार्यक्रम- निर्देशन कार्यक्रम वह है की जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विकास के विभिन्न चरणों में आयी हुई शिक्षा सम्बन्धी, व्यसाय सम्बन्धी, वैयक्तिक अथवा सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होता है.

अनुवर्ती सेवा– अनुवर्ती सेवा के द्वारा व्यक्ति को यह पता चलता है कि उसकी जिस क्षेत्र में नियुवित्त नही है उसमे वह कितना समायोजित हुआ है और उस क्षेत्र में उसकी प्रगति क्या है ।

परामर्श कार्यक्रम - परामर्श कार्यक्रम वह है जिसमे परामर्शदाता किसी परामर्श प्रार्थी की इस प्रकार सहायता करता है कि परामर्श प्रार्थी अपनी योजनाओ का चुनाव जो वह करना चाहता है की व्याख्या कर सके।

परामर्श मूल्यांकन – परामर्श मूल्यांकन का अर्थ यह निर्धारित करना है कि जिन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए परामर्श कार्यक्रम चलाता था उन लक्ष्य की प्राप्ति हुई है या नही। यदि हुई है तो किस सीमा तक।

परामर्शदाता – परामर्शदाता वह व्यक्ति है जो किसी क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता रखता है जो दूसरो को समस्या का समाधान करने योग्य बनाता है।

परामर्श प्रार्थी - परामर्श प्रार्थी वह है, जो किसी समस्या का समाधान के लिए परामर्शदाता के पास आता है, और परामर्शदाता उसे समस्या का समाधान करने योग्य बनाता है।

अभ्यास प्रश्न- ख

प्रश्न 1- निम्नलिखित में से कौन सा परामर्श मूल्यांकन का उद्देश्य नही होता है?

क- परामर्श कार्यक्रम की प्रभावशीलता

ख- परामर्श शुल्क का निर्धारण

ग- परामर्श प्रार्थी का प्राप्त हुए लाभ की प्रगति का मूल्यांकन

घ- परामर्श प्रार्थी की अपनी सहायता कर पाने की समता मे वृद्धि का मूल्यांकन

प्रश्न 2- परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन परामर्शदाता के मूल्यांकन में सहायक होता है- हां/नही

प्रश्न 3- परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन का क्या अर्थ है।

प्रश्न 4- परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन क्यो उपयोगी है।

प्रश्न 5- परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन का सामान्य सिद्धान्त कौन-कौन से है।

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न-क

(1) असत्य

(2) (घ) उपयुक्त तीनो

(3) (ख) प्रश्नावली

(4) (क) अर्द्धसंरचित साक्षात्कार

(5) उद्देश्यों का निर्धारण

अभ्यास प्रश्न- ख

उत्तर 1- परामर्श शुल्क का निर्धारण

उत्तर 2- हाँ

उत्तर 3- परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन एक महत्वपूर्ण चरण है। परामर्श प्रार्थी को परामर्श देने के बाद परामर्श की प्रगति, सफलता, परामर्श उद्देश्यो की जाँच, परामर्श का प्रभाव परामर्श प्रार्थी को परामर्श से

होने वाले लाभ/हानि, परामर्श की उपयोगिता, परामर्श की प्रक्रिया आदि की जाँच करना ही परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन कहलाता है।

उत्तर 4- परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन निम्नलिखित दृष्टि से उपयोगी है

1. परामर्श कार्यक्रम की सफलता व प्रभाव की जाँच के लिए।
2. परामर्श देने के उद्देश्यो की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए।
3. परामर्श सेवा कार्यक्रम को अधिक व्यवहारिक, सफल व उपयोगी बनाने के लिए।
4. परामर्श प्रक्रिया की जाँच के लिए।
5. परामर्श कार्यक्रम की कार्य योजना मे परिवर्तन की आवश्यकता है या नही इसकी जाँच के लिए।
6. आवश्यकतानुसार परामर्श कार्यक्रम मे परिवर्तन के लिए।
7. भूतपूर्व परामर्श प्रार्थियों की सफलता के आधार पर अन्य परामर्श प्रार्थियों को परामर्श देने के लिए।
8. परामर्श प्रार्थी की सफलता, प्रगति व सन्तोष जानने के लिए।

उत्तर 05 - परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन के सामान्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं-

1. परामर्श कार्यक्रम से सम्बन्धित अधिकारियो, कार्यो में प्रयोग की गई विधियों, पद्धतियो प्राप्त परिणाम व उनकी विवेचना मे प्रयुक्त भाषा मे समानता होनी चाहिए।
2. बड़े-बड़े उद्देश्यो के स्थान पर छोटे-छोटे उद्देश्यों का चयन करना चाहिए।
3. परामर्श कार्यक्रम उपलब्ध साधनों के अनुसार ही करना चाहिए।
4. परामर्श प्रार्थी के व्यवहार का मापन उसकी व्यवहार की योग्यता के अनुसार ही करना चाहिए।
5. मूल्यांकन के परिणाम स्पष्ट, वस्तुनिष्ट व अर्थपूर्ण होने चाहिए।

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन क्यों आवश्यक है

(2) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन के चरणों का वर्णन किजिए

(3) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की विभिन्न विधियों का वर्णन किजिए

(4) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन किजिए

(5) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन के स्रोतों और तकनीको का वर्णन किजिए

(6) परामर्श कार्यक्रम में परामर्श मूल्यांकन का अर्थ समझाते हुए उसकी आवश्यकताओ पर प्रकाश डालिए।

(7) परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन के सिद्धान्तो को समझाइऐ।

(8) परामर्श मूल्यांकन परामर्श कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है इस कथन कि विवेचना किजिये।

(9) परामर्श कार्यक्रम में मूल्यांकन की पद्धतियो का वर्णन किजिए।

(10) परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ो के उपयोग को समझाइऐ।

15.11 संदर्भ सूची

1. निर्देशन एवं परामर्श राय अमरनाथ,अस्थाना मधु, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन
2. शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका- उपाध्याय राधाबल्लभ, जायसवाल सीताराम, अग्रवाल पब्लिकेशन
3. वोकेशनल गाइडेंस एवं कैरियर काउन्सिलिंग में पी० जी० डिप्लोमा – उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, शान्तिपुरम (सेक्टर-एफ) फाफामऊ इलाहाबाद।
4. निर्देशन तथा उपबोधन –ES363, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

इकाई–16 परामर्श के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण, भविष्य में शोध हेतु दिशा-निर्देश (Teaching and Training for Counseling, Guidelines for future research)

इकाई संरचना

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 परामर्श के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण

16.3.1 व्यक्तिगत विशिष्टतायें

16.3.2 परामर्शदाता की दक्षतायें

16.3.3 सामान्य दक्षतायें

(1) आन्तरिक दक्षतायें

(2) बाह्य दक्षतायें

16.3.4 परामर्श की विशद् एवं सूक्ष्म दक्षतायें

16.3.5 परामर्श की गौण दक्षतायें

I. भौतिक साज सज्जा

II. सुरक्षा

III. अभिलेखों का रख रखाव

16.4 भावी शोध हेतु दिशा निर्देश

16.5 शब्दावली

16.6 सारांश

16.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

16.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

16.1 उद्देश्य– (AIMS)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- परामर्शन में शिक्षण की महत्ता के बारे जान पायेंगें।
- परामर्श सम्बन्धी दक्षता एवं प्रशिक्षण के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- परामर्श में भावी शोध निर्देशों की जानकारी द्वारा शोध कार्य में लाभान्वित हो सकेंगे।

16.2 **प्रस्तावना** –(introduction) मनुष्य एक सभ्य प्राणी है, सभ्यता का आधुनिक स्वरूप सदियों से चले संघर्ष एवं विकास के कारण आया। यह माना जाता है कि मानव स्वभाव का सर्वोत्तम गुण दुःखियों एवं पीड़ितों को मदद पहुँचाना है, अगर कोई व्यक्ति दुःखी, पीड़ित या समस्याग्रस्त होता है तो कई व्यक्ति उसकी सहायता स्वरूप आ जाते कुछ राय मशवरा देते। भारत में यह कार्य घर के बड़े बुजर्ग एवं गणमान्य व्यक्ति किया करते थे चूंकि वर्तमान समय में एकाकी परिवारों का दौर है साथ ही वर्तमान समय वैश्वीकरण का समय भी है इस दौर में अधिकांषतः लोग कैरियर का आपा–धापी में भाग रहे हैं बच्चों पर पढ़ाई का दबाब, और माता–पिता पर अपनी नौकरी के साथ–साथ बच्चों की अच्छी परवरिष का दबाब, विभिन्न संस्कृतियों से मेल–जोल का दबाब, नई तकनीक सीखने का दबाब आदि– इन तमाम दबाबों से कई बार व्यक्ति विशेष अपनी समस्याओं में उलझ कर रह जाते है। कई बार वह अपने माता–पिता, भाई–बहिन एवं संगी साथियों से राय मशवरा लेता है परन्तु समस्या सुलझाने में असफल होने पर अवसाद में भी चला जाता है।

आधुनिक दौर में जहाँ शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों का विकास हुआ है, वहीं परामर्शन (counsling) भी एक मुख्य विषय बन चुका है जिससे लोगों को अपनी समस्या सुलझाने में मदद मिलती है। वर्तमान समय में बाकायदा परामर्श के लिए शिक्षण और प्रशिक्षण लिया जाता है। शिक्षण प्रशिक्षण के संदर्भ में जानने से पूर्व विद्यार्थियों को यह बताना आवश्यक है कि परामर्श क्या है, परामर्श अंग्रेजी शब्द counsling का हिन्दी रुपान्तरण है, जिसका अर्थ राय मशवरा एवं सुझाव देना होता है।

कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) के अनुसार परामर्श एक निश्चित रुप से निर्मित स्वीकृत सम्बन्ध है। जो परामर्श प्रार्थी को पर्याप्त मात्रा में अपने को समझने में सहायता देता है, जिससे वह अपने नवीन ज्ञान के परिपेक्ष्य में ठोस कदम ले सकें।"

"A definitely structured permissive relationship which allowes the client to gain an understanding to himself to a degree which enables him to take positive steps in the light of his orientations."

"Carl Rogers"

रुथ स्ट्राँग – "परामर्शन प्रक्रिया एक संयुक्त प्रयास है, परामर्शन प्रक्रिया का सार–तत्व ऐसा सम्बन्ध है जिसमें व्यक्ति जिसका परामर्शन हो रहा है, स्वयं को पूर्णतः अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्रता का अनुभव करता है तथा अपने लक्ष्यों से उसकी सिद्धी के बारे में स्पष्टीकरण व उनकी सिद्धी हेतु अपने सामर्थ्यों और समस्याओं के

प्रकट होने पर उनके समाधान की विधियों या साधन के बारे में आत्मविश्वास अर्जित करता है।"

"The counseling process is a joint quest. The essence of the counseling prices is a relationship in which the individual being counseled feels free to express himself fully and gain clarification of him goods, self confidence in his abilities to realize them and methods or mean of solving difficulties as they arise.

"Ruth Strang"

उपरोक्त परिभाशाओं से यह स्पष्ट होता है कि परामर्श दो व्यक्तियों के मध्य होने वाली वार्तालाप है, जिसमें एक समस्याग्रस्त है और दूसरा उसकी समस्या के संदर्भ में परामर्श प्रार्थी को सलाह या सुझाव देता है या उन प्रक्रियाओं की चर्चा करता है जिससे परामर्श प्रार्थी स्वयं की समस्या का समाधान कर ले और अपने वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में बेहतर समायोजन कर सके।

उपरोक्त प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जाने कि परामर्श के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की क्या आवश्यकता है ? आवश्यक है कि वह अपने व्यवहार मे मधुरता बनाये रखे, मधुरता के साथ उसके व्यवहार से हास्य भी होना चाहिए ताकि दोनों के मध्य मधुर एवं मित्रता।

16.3 **परामर्श के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण** – परामर्श की प्रक्रिया बहुत ही संवेदनशील प्रक्रिया है चूंकि यह किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं से जुड़ी होती है, इसलिए इस कार्य में परामर्शदाता की निपुणता एवं योग्यता का अधिक प्रभाव पड़ता है, यह भी माना जाता है कि अत्यधिक कुशल परामर्शदाता सुविधा के अभाव होने पर भी प्रभावशाली ढंग से परामर्श प्रदान कर सकता है अनुभवी परामर्शदाता जानते हैं कि परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली ढंग से सम्पादित करने के साधनों एवं सुविधाओं की आवश्यकता तो होती है पर शिक्षण एवं प्रशिक्षण बेहतर होने पर कम सुविधाओं में बेहतर परामर्श दिया जा सकता है। यहाँ विद्यार्थियों के लिए यह जानना आवश्यक है कि परामर्श की सफलता के लिए परामर्शदाता को बेहतर शिक्षित एवं प्रशिक्षित होना चाहिए जिसकी चर्चा हम निम्न करेंगे :–

संयुक्त राज्य अमेरिका के निर्देशन तथा परामर्शन में संलग्न संगठनों ने परामर्शदाताओं के लिए आवश्यक बातों की रुपरेखा तैयार करने का प्रयत्न किया है उन्होंने निर्देशन व प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे परामर्शदाताओं के आठवें सम्मेलन में,परामर्शदाताओं के कर्तव्यों, मानदण्डों(Standards) तथा अर्हताओं (Qualification) के सम्बन्ध में एक रिर्पोट तैयार की उसके कुछ भागों का निम्न वर्णन किया जा रहा है–

16.3.1 **वैयक्तिक योग्यता** (Personal abilities) परामर्श के लिए वैयक्ति अर्हताओं का बहुत महत्व है, एक सफल परामर्शदाता में निम्न अर्हतायें एवं विषेशतायें होना आवश्यक हैः–

(स) **शिक्षा (Education)** शिक्षा अनादि काल से चली आ रही मानव व्यवहार को परिमार्जित करने वाली प्रक्रिया रही है। शिक्षा ने मनुष्य को सामाजिक मान्यताओं के अनुसार विकसित करने में विशेष योगदान दिया है शिक्षा न केवल व्यक्ति को अपने वातावरण से अनुकूलन करने में भी सहायता करती है वरन् उसके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन भी करती है जिससे व्यक्ति अपना व अपने समाज का कल्याण करने मे सफल होता है एक परामर्शदाता तभी बेहतर परामर्श दे पायेगा जब वह शिक्षित होगा। या यूं कहे कि उसे अपने विषय विशेष का पूर्ण ज्ञान होगा शिक्षा को यहाँ निम्न भागों में बाटा गया है–

(ll) **सामान्य शिक्षा** (General Education) परामर्शदाता को किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय या कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त होनी चाहिए साथ ही जिस क्षेत्र में उसे परामर्श का कार्य करना है उसी स्तर के लिए राज्य द्वारा निर्धारित योग्यताओं एवं मानदण्डों के अनुरुप प्रशिक्षित अध्यापक का प्रमाण पत्र होना चाहिए।

(2) **वृत्तिक शिक्षा** (Professional Education) परामर्शदाता को अपने परामर्शन एवं निर्देशन क्षेत्रों के लिए विस्तृत अध्ययन से युक्त उपाधि प्राप्त करनी चाहिए जो कम से कम मास्टर उपाधि (Master degree) के समकक्ष अवष्य है। इस संदर्भ में उसे (परामर्शदाता) को निर्देशन कार्य के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धित आधारभूत पाठ्यक्रम का अध्ययन करना आवश्यक हो, इनके अतिरिक्त परामर्श के लिए अन्य व्यक्तिगत योग्यताओं का होना भी जरूरी है –

- परामर्श के लिए शिक्षण अभिक्षमता पूर्ण होनी चाहिए वह अच्छा परामर्श तभी दे पायेगा जब उसे विषय विशेष का अच्छा ज्ञान होगा, अच्छे ज्ञान की वजह से ही परामर्शी (Counsellor) का विश्वास परामर्शदाता पर बना रहेगा **जैसे–** अगर परामर्शदाता विद्यालय परिवेश में कार्य कर रहा है, तो उसे शैक्षिक परिवेश के संदर्भ जानकारी होनी चाहिए साथ ही अध्यापकों एवं छात्रों के साथ कार्य करने में रूचि होनी चाहिए।

- परामर्शदाता का व्यक्तित्व सहज एवं सरल होना चाहिए उसमें लोगों के दुःख दर्द को महसूस करने का गुण होना चाहिए यदि वह (परामर्शदाता) संवेदनशील होगा तभी वह बेहतर राय भी दे जायेगा।

- उसका कौशल यह भी है कि उका व्यवहार मित्रतापूर्वक हो वह उपबोध्य (Counselee) का विश्वास जीत कर उसके जीवन के गोपनीय पक्षों को जानने में सफल हो, उसका व्यवहार मधुरतम होना चाहिए यदि परामर्शदाता अधिकारी की तरह

पेश आयेगा तो परामर्शी (Counselee) उससे भयभीत होगा और उसे अपनी वास्तविक गोपनीय जानकारी देने से बचेगा, साथ ही परामर्शदाता को अपनी भाशा शैली में आलोचना एवं व्यंग्य से भी बचना चाहिए और परामर्शी को प्रोत्साहित एवं सहज बनाये रखने के लिए हास्य का प्रयोग भी आना चाहिए।

• परामर्शदाता में निर्णय लेने की क्षमता एवं दृढ़ता का होना आवष्क है यदि काउन्सलिंग के समय परामर्शप्रार्थी मुख्य विषय से भटक जाता हे या वह विषय को मोड़ने की कोशिष करता है तो परामर्शदाता को अपने कौषल एवं दृढ़ता से मुख्य विषय को केन्द्र में लाने का परिचय देना चाहिए, कई बार काउन्सलिंग में उपबोध्य भावनात्मक रूप परामर्शदाता से जुड़ जाता है जिससे उसकी अपेक्षायें बढ़ जाती है, ऐसी स्थिति में भी उसे अपनी बेहतर निर्णय क्षमता का परिचय देना चाहिए।

• अच्छे परामर्श की सफलता विचारों के परस्पर आदान–प्रदान पर निर्भर करती है, उपबोधक (Counsellar) अपने विचारों में लीन हो जाता है ऐसी स्थिति में उपबोध्य को चाहिए कि वह प्रासंगिक बात कह कर उसे वार्तालाप के लिए प्रेरित करें, उपबोधक का भाषा पर भी पूर्ण अधिकार होना चाहिए तथा उसे अपनी कार्यक्षमता पर विश्वास और अपनी कार्यशैली का ज्ञान होना चाहिए।

(3) **<u>अनुभव–</u>** <u>(Experience)</u> परामर्शदाता के पास अपना परिचय देने के लिए अनुभव होना चाहिए यदि परामर्शदाता स्कूल के क्षेत्र में काउन्सलिंग कर रहा हे तो वह उसक परिवेश से परिचित होना चाहिए या यूँ कहें कि उसकी क्षमता स्कूली परिवेश की जानकारी लेने के लिए रूचिकर होनी चाहिए कार्य जगत के संदर्भ में परामर्शदाता की समझ और अनुभव परामर्श में उपयोगी सिद्ध होता है। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि किसी परामर्श में शिक्षण एवं प्रशिक्षण के लिए परामर्शदाता (Counsellar) की दक्षता बहुत महत्वपूर्ण है ताकि परामर्श का कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हो सके इस हेतु आधुनिक मनोविज्ञान में तीन श्रेणियों की दक्षता का वर्णन किया जाता है।

<u>परामर्शदाता की दक्षतायें</u>

1 सामान्य दक्षता दक्षतायें

2 विषद एवं सूक्ष्म दक्षतायें

3 अनुशांगिक/ गौण

(1) **<u>सामान्य दक्षतायें (</u>**<u>Generic Skills)</u> किसी की परामर्श में परिवेश क्षमतायें या दक्षता होनी चाहिए साथ ही परामर्श की विभिन्न विधियों के उपयोग के लिए सामान्य दक्षता को आवश्यक माना जाता है।

रोजर्स (1957) ने परानुभूतिक बोध (Empathic understan) अप्रतिबन्धित सकारात्मक सम्मान तथा सर्वांग क्षमता संगति (Congruence) और उनके समुचित संप्रेक्षण को परामर्शदाता के उन गुणों का आवश्यक तत्व बताया है कि जिसके आधार पर परामर्शदाता परामर्शी को वांछित परिवर्तन स्थापित करने में सहायता प्रदान करता है।

- **कर्क हफ्फ** (Cark haff 1969) ने सामान्य दक्षता में चार दक्षताओं को आवश्यक माना। निष्चयात्मकता (Conforntation), आत्म–अभिव्यक्ति (Self disclosure) सामना (Canforntation) और तात्कालिता (Immediacy)

- **केगन (**Kagan 1995) – ने उनकी वैयक्तिक प्रक्रिया प्रत्यावान (Interpersonal process Recall) प्रणाली की प्रक्रिया को परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण के लिए जरूरी बताया, इस प्रक्रिया में ऑडियो–वीडियो रिकॉर्ड का मूल्यांकन किया जाता है यह प्रक्रिया अर्न्तक्रिया के दौरान संवेदनाओं, विचारों एवं व्यवहार के पक्षों को समझने में मदद करती है।

- पिछले दशक में ब्रिटेन में **"नेशनल कौंशिल फोर वोकेसनल क्वालिफिकेशन"** एक दल का गठन किया जिसे (CAMPAG) के नाम से पुकारा जाता हे इस संगठन ने परामर्शदाताओं को मान्यता देने के लिए सामान्य दक्षताओं की एक सूची तैयार की है जो निम्न है– इस सूची को (Inskipp 2000) balfdIi (2000) में बताया

(l) रोगी क्लाईट के साथ सम्पर्क स्थापित करने की दक्षता

(ll) परामर्शन दशा की संरचना सुनिश्चित करने की दक्षता

(lll) क्लांयट के साथ अर्न्तक्रिया के विकास और अनुरक्षण की दक्षता

(iv) परामर्शन सम्बन्ध को विकसित करने की दक्षता और अनुरक्षण की दक्षता

(v) अपने कार्य एवं आत्म मूल्यांकन की दक्षता

(vi) परामर्शन उपचारात्मक प्रक्रिया में स्वयं का अनुश्रवण (Manitaring) करने की दक्षता

उपरोक्त छः दशाओं के अन्तर्गत परामर्शन की अनेक आन्तरिक एवं बाह्य दशायें भी शामिल की गई है।

- **आन्तरिक दक्षतायें** (Internal skills) – में परामर्शप्रार्थी का निरीक्षण, सुनना, उसकी संवेदनाओं संवेगों विचारों की पहचान के लिए शरीर की भाषा का अध्ययन, तटस्थ मूल्यांकन, निर्णय, परामर्शी के संदर्भ में अन्य व्यक्तियों के संदर्भ से जानकारी आदि को सम्मिलित किया जाता है। आन्तकरिक दक्षता प्राप्त करने के लिए कई बार

काउन्सलर 'निर्देशन एवं परामर्श' (guidance – counseling) के उपविशयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त डिग्री एवं डिप्लोमा का भी सहारा लेते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि जो उपयुक्त विषय पर प्रक्टिस कर रहे है तो उनके साथ कार्य कर या उनसे प्रशिक्षण ले कर परामर्शी को अपनी समस्या को सुलझाने में मदद की जाती है।

- **<u>बाह्य दक्षतायें</u>** <u>(External skills)</u> – **में** परामर्शी का अभिवादन करना, उस पर ध्यान देना, उसकी अनुभूतियों की व्याख्या करना, प्रश्न पूछना, उसके उद्देश्य को वरीयता तथा प्रदत्त अभिलेखों के लिए ओडियो वीडियो की दक्षता होनी चाहिए।

उपरोक्त दक्षताओं के कारण परामर्शदाता परामर्शी को सुरक्षा की एक ऐसी अनुभूति अर्जित में सहायता देता है, जिसके आधार पर क्लायंट स्वयं अपना व अपनी परिस्थितियों का अन्वेशण आरंभ कर देता है, परन्तु कभी–कभी परामर्शी के चुनौतीपूर्ण लक्ष्य होने के कारण परामर्शदाता को उसे चुनौतीपूर्ण परिवेश, परिस्थिति से सामना कराने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार करना पड़ता है ऐसी स्थिति के लिए उपयुक्त समय का ध्यान रखते हुए विचारों के आदान–प्रदान में बेहतर भाषा शैली का प्रयोग करते हुए परामर्शी को प्रोत्साहित करना होता है ताकि वह अपने उद्देश्य की दिशा में अग्रसर होते रहे।

(2) **<u>परामर्शदाता की विशद एवं सूक्ष्म दक्षतायें</u>** <u>(macro micro skills of counsellors)</u> परामर्शदाता के प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनेक सूक्ष्म दक्षताओं का अभ्यास कराया जाता है जैसे– समस्या सुनना उसका सार संक्षेपण करना और अनुभूतियों को प्रतिबिम्बित करने की योग्यता परामर्शदाता में परानुभूति (Empathy) की योग्यता को विकसित कर देती हैं।

(3) **<u>परामर्शदाता की गौण दक्षतायें</u>** <u>(Ancilhiary skills of counseller)</u> गौण दक्षताओं के अन्तर्गत भवन या कार्यालय उसकी साज सज्जा एवं उसकी सुरक्षा आदि आते हैं –

(I) **<u>भौतिक साज सज्जा</u> –** परामर्शन के लिए उपयुक्त परिवेश की रचना के लिए भौतिक साज सज्जा पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है, जैसे– प्रवेश कक्ष, प्रतीक्षा कक्ष, शोर से सुरक्षित कक्ष का निर्माण तथा गोपनीयता, सुरक्षा एवं सुविधा को ध्यान में रख कर कार्यालय स्थापित किया जात है।

(II) **<u>सुरक्षा</u>** गौण दक्षताओं में नैतिक, कानूनी एवं व्यक्तिगत सुरक्षा को ध्यान में रखकर कार्यस्थल का निर्माण किया जाता है साथ ही परामर्शी के हृदयागत, श्वास या मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ने पर उसे उसकी मेडिकल सुविधाओं का भी ध्यान रखा जाता है।

(III) **<u>अभिलेखों का रख रखाव</u>** <u>(Keeping records)</u> अभिलेखों के रिकॉड से अर्थ है कि परामर्शी से सम्बन्धित समस्त जानकारियों जैसे व्यक्ति इतिहास विधी

(case study) की फाईल, अन्य जानकारियों से सम्बन्धित फाईल, ऑडियो–विडियो आदि का बेहतर रखरखाव होना चाहिए इनकी सुरक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए ताकि कोई भी व्यक्ति इन सूचनाओं का दुरुपयोग न कर सके और परामर्शी की गोपनीयता बनी रहे।

उपरोक्त दक्षताओं के अतिरिक्त भी किसी परामर्शदाता को अपने कार्य क्षेत्र में विशिष्टता लाने के लिए निम्नांकित क्षेत्र विशेष पर भी ध्यान देना चाहिए–

- परामर्शदाता को सामान्य एवं असामान्य मानव व्यवहार की समझ होनी चाहिए।
- व्यक्तियों के अध्ययन के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक विधियों की जानकारी।
- निर्देशन एवं परामर्शन के सिद्धान्त और दर्शन का ज्ञान।
- प्राप्त आंकड़ों का परामर्शन कार्य हेतु उपयोग कर लेने की दक्षता।
- नैतिक संहिता (Ethical code) की जानकारी।
- परामर्शन के लिए हो रहे प्रशिक्षण कार्यक्रमों की जानकारी एवं उसमें भागीदारी।
- मूल्यांकन एवं शोध कार्य करने के लिए शोध विधियों का ज्ञान आदि।
- तकनिकी विधियों का ज्ञान आदि।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है, कि किसी भी परामर्श की सफलता काफी हद तक परामश

ीदाता के शिक्षण, प्रशिक्षण , प्रतिभा तथा दृष्टिकोण पर निर्भर करती है, वर्तमान समय वास्तव में परामर्शदाता के कार्य में विशेषता की मांग करता है और यह विशेषता शिक्षण, और प्रशिक्षण के साथ विविध विषयों के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक ज्ञान के परिणाम स्वरूप ही सम्भव है।

<u>16.4 भविष्य में शोध हेतु दिशा निर्देश</u> –आधुनिक युग में परामर्शन को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में देखा जाने लगा है क्योंकि इसका सम्बन्ध समाज के विभिन्न व्याक्तियों की व्यक्तिगत समस्याओं के निदान से जुड़ा है, अगर परामर्शदाता क्लायंट को समस्याओं के समाधान की तरफ अग्रसर कर देता है, तो परामर्शी (Counsellee) के आत्मबोध या आत्मज्ञान में वृद्धि होती है जो उसे बेहत्तर जीवन यापन के लिए प्रेरित करता, दूसरी तरफ परामर्शदाता भी विभिन्न परामर्शी यों की वैयक्तिक भिन्नता से प्रभावित होता है जो उसकी कार्य करने की अभिक्षमता में वृद्धि करती है, परन्तु कई बार जब परामर्शदाताओं एवं मनोवैज्ञानिकों के सम्मुख विकट समस्या आ जाती है, तो उन्हें भी कोई दिशा निर्देश नही मिल पाता है ऐसी स्थिति में कार्य कर रहे मनोवैज्ञानिकों एवं परामर्शदाताओं के लिए शोध एक महत्वपूर्ण विषय है, जो किसी भी कार्य को दिषा देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, प्रस्तुत अध्याय में

विद्यार्थियों के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि शोध क्या है इस सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप से चर्चा को जा रही है–

शोध या अनुसंधान– शोध शब्द का प्रयोग अब ज्ञान की प्रत्येक षाखा के गहन अध्ययन के निर्मित होने लगा है, अनुसंधान के क्षेत्र के अर्न्तगत केवल नये सत्यों एवं नये सिद्वान्तों की खोज नही की जाती वरन् पुराने सत्यों एवं पुराने सिद्वान्तों को नये कलेवर देना, पुराने, नियमों को युगानुरूप नवीनता प्रदान करना, प्रदत्तों एवं तथ्यों को नये सिरे से स्पष्ट करते हुए उनमें व्याप्त अर्न्तसम्बन्धों का विश्लेशण करना भी सम्मिलित है।

उपरोक्त कारकों को देखते हुए कहा जा सकता है कि **"शोध का मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक विधियों द्वारा परिवेश प्रश्नों का उत्तर अथवा परिवेश समस्याओं का समाधान करना है"।**

प्रस्तुत इकाई में हम परामर्श के संदर्भ में चर्चा कर रहे हैं, चूकिं परामर्श वर्तमान समय की आवष्यकता है, अधिंकाषतः लोग अपने वैयक्तिक जीवन में किसी ना किसी समस्या में उलझे हैं, कुछ तो स्वंय ही सामाधान खोज लेते हैं परन्तु अधिकतम अपनी समस्याओं को सुलझाने में जब स्वंय को असमर्थ महसूस करते है तो कई बार अवसाद के शिकार भी हो जाते है, अतः वर्तमान समय में परामर्शन एक महत्वपूर्ण विषय बन कर उभर रहा है। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक भी है कि यह क्षेत्र मनोवैज्ञानिक एवं परामर्शदाताओं के लिए चुनौती पूर्ण भी है।

वर्तमान समय वैश्वीकरण का युग है पूरे विश्व की संस्कृतियाँ एक–दूसरे से मिल रही है, रोजगार के लिए युवक अपने देष से कोसों दूर दूसरे देशों में पलायन कर रहे है, स्त्री–पुरूषों के बराबरी में कई तरह के अर्न्तद्वन्द दिखाई दे रहे है, भौतिकवादी संस्कृति जीवन में हावी हो रही है, रिश्तों में अपनापन व संवेदनशीलता घटी है, परामर्शदाता व मनोवैज्ञानिक भी नई–नई समस्याओं से जूझ रहे है इसलिए शोध या अनुसंधान एक ऐसा मार्ग है जो आगे का मागदर्शन कर सके – प्रस्तुत इकाई में शोध से सम्बन्धित निम्न क्षेत्रों पर चर्चा की जा रही है।

(1) परिवार परामर्श से सम्बन्धित शोध Researah related to family– परिवार जीवन का आधार होता है, परिवार एवं माता–पिता से ही बच्चे प्रेम, सदाचार नैतिकता धर्म, मूल्य एवं संस्कार सीखते हैं, इन्हीं गुणों की आधारशिला पर बच्चों का व्यक्तित्व एवं भविष्य निर्धारित होता है इसीलिए परिवार एवं माता–पिता को शिक्षा की पहली पाठशाला कहा गया है परन्तु अगर परिवार में राग–द्वेष, कलह अलगाव, हिंसा या चरित्रहीनता है एक परामर्शदाता को यह जानना जरूरी होता है कि परिवार के सदस्यों की एक–चरित्र के साथ राग द्वेष या हिंसा क्यों करते है, अगर परामर्शदाता उनकी समस्या को चरित्र को समझ लेता है तो निदान आसान होता है परन्तु अगर परिवार के सदस्यों के व्यवहारों को समझना मुश्किल है तो शोध के द्वारा कारणों तक पहुँचा जा सकता है।

वर्तमान समय लगभग एकांकी परिवारों का है जो बच्चों को शिक्षा, परवरिश से लेकर आर्थिक उपजिन आदि अनेक समस्याओं से जूझ रहे है अतः परिवार सम्बन्धी तमाम व्यवहार पर शोध भविष्य में मागदर्शन के रूप में कार्य कर सकते हैं।

(2) **प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों के शैक्षणिक परिवेश पर शोध –** किसी भी बच्चे के शैक्षणिक क्षमता को नींव उसके प्राथमिक /माध्यमिक विद्यालयों में पड़ती है अतः माध्यमिक एवं प्राथमिक विद्यालयों का परिवेश वहाँ पढ़ाने वाले शिक्षकों का बच्चों के साथ अर्न्तक्रिया किस प्रकार है यह जानना महत्वपूर्ण है साथ ही किसी बच्चे की वैयक्तिक प्रतिमा को पहचानकर उसे उस दिषा में प्रोत्साहित करने का गुण शिक्षकों में है अथवा नही यह भी जानना जरूरी होता है – वैसे तो राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (National curriculum Framwork) ने विद्यार्थियों के सम्बन्ध में अपनी गाईड लाईन दी है तत्पश्चात् भी वो परिणाम देखने को नही मिल रहे है जिनकी संभावना की जा रही थी इसलिए इस क्षेत्र में शोध एक महत्वपूर्ण कड़ी है– जो बच्चों को उनके रूचिकर विषयों की ओर अग्रसर कर उनके बेहतर व्यक्तित्व निर्माण की तरफ प्रेरित करती है।

(3) कैरियर परामर्श पर शोध Research in the field of carrier counseling– वृत्तिक या कैरियर आज के समय का ज्वलन्त मुद्दा है हर विद्यार्थी 10जी के या 12जी के पष्चात् इस द्वन्द में रहता है कि उसे किस क्षेत्र में जाना चाहिए – इसलिए परार्मषदाता के कैरियर सम्बन्धी सूचनाओं की प्रकृति को जानना जरूरी है किस तरह से परामर्शदाता (counselor) विभिन्न व्यवसायिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में कैरियर की प्रकृति को समझ सकता है इन पर शोध की आवश्यकता है, साथ ही कैरियर के लिए नये क्षेत्र कैसे इजाद किये जायें – अगर विद्यार्थियों को उचित समय पर कैरियर सम्बन्धी परामर्श मिल जाता है तो वो अपनी क्षमताओं का उचित प्रयोग कर लेते है और जीवन की नकारात्मकता से बच जाते हैं इस विषय पर शोध वास्तव में समाज के लिए भी उपयोगी होंगे और समाज में उपलब्ध मानव शक्ति का उपयोग भी सार्थक होगा।

(4) विवाह सम्बन्धी परामर्श में शोध (Research in the field of marrage counseling)- भारत में विवाह को एक पवित्र तथा स्नेहयुक्त सम्बन्ध माना जाता था, लेकिन सामाजिक धार्मिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के दोर में यहाँ भी विवाह –विच्छेदों की संख्या में वृद्वि हो रही है विवाह सम्बन्धों में कटुता के कारण अनेक हैं – जैसे – एक दूसरे के प्रति प्रेम का अभाव, चारित्रिक सन्देह, गृह कार्य में पुरूषों की भागीदारी का अभाव, विचारों का न मिलना, आर्थिक स्थिति का कमजोर होना, यौनिक सम्बन्धों से सन्तोश न होना, द्रव्य दुरूपयोग, एक दूसरे के सम्बन्धों से टकराव, गृह हिंसा आदि।

इसलिए विवाह से पूर्व एवं विवाह के पष्चात् दोनों को परामर्शन दिये जाने की आवष्यकता होती है, विवाह के असफल होने पर उससे मुगल से उत्पन्न सन्तान को भी इसका खामियाजा भुगतान पड़ता है और कई बार वो बच्चे ही जीवन में अवसाद से घिर जाते है इसलिए यह एक ज्वलन्त मुदद्ा है जिस पर शोध मार्गदर्शित कर सकता है ताकि भविष्य में विवाह– विच्क्षेदों को रोकने एवं एक सौहार्दपूर्ण वैवाहिक परिवेश बनाने में सफलता मिल सके।

(5) **<u>मादक पदार्थो के सेवन से सम्बन्धित शोध</u>** (Researech in the field of drug addiction) – वर्तमान समय में कालेज स्तर पर अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों में मादक पदार्थो के सेवन की प्रवृति लगातार बढ़ रही है वास्तव में यह समाज एवं शिक्षा विद्धों के लिए चिन्ता का विषय है, क्योंकि अगर देश का युवा ही स्वस्थ नही होगा तो स्वस्थ समाज की संकल्पना करना बेकार है, नशे के करण युवाओं का व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन तो नष्ट होता ही है कई बार परिवार के लिए भी वह षंका का कारण बन जाता है।

नशे की प्रवृत्ति क्यों बढ़ रही है या उस तरफ किशोरों का रूझान क्यों जा रहा है यह शोध़ अनुसंधान का विषय है अगर शोध से इस समस्या का सही मार्गदर्शन मिलेगा तो युवाओं को नशे की प्रवृति से रोका जा सकता है। यह क्षेत्र परामर्श के लिए भी चुनौती है क्योंकि देखा गया है कि जिन युवाओं की काउन्सलिंग होती है वह अधिकांशत कुछ समय पश्चात पुनः नशा करते हुए दिखाई देते हैं।

ऐसा नही है कि इस संदर्भ में अनुसंधान न हुए हो परन्तु जो शोध सभी तक हुए है उनसे भी समस्या का हल नही निकल पा रहा है अतः और शोधों की आवश्यकता है।

(5) **<u>बाल मनोविज्ञान से सम्बन्धित शोध</u>** <u>(Research in the field of child Psychology)–</u> बाल मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो बच्चों के विकास का अध्ययन गर्भकाल से किशोरावस्था तक करता है ताकि उनका शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास सम्पक हो और वो एक आदर्शवान युवा बने–परन्तु वर्तमान में यह स्थिति नही है बहुत से बच्चे अपराध की दुनिया में चले जाते है वो चोरी चकारी एवं मारपीट व दंगों में शामिल मिलते है – इसका कारण बच्चे कम हमारी परवरिश एवं वातावरण अधिक जिम्मेदार है, अतः बाल मनोविज्ञान में शोध की बहुत जरूरत है, शोध से माता–पिता, शिक्षको सभी को मार्गदर्शन मिले कि उनकी परवरिश के लिए कौन से कदम उठाये जाये, जिससे बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बेहतर होने के लिए अच्छा वातावरण तैयार हो सके।

उपरोक्त तथ्य के अतिरिक्त यहाँ बाल षोषण पर भी ध्यान केन्द्रित करना अनिवार्य प्रतीत होता है, भारत की बात करें तो बाल षोशण एक बहुत बड़ी समस्या है, शारीरिक शोषण के विरोध में कानून होने बाल मजदूरी विरोध

अधिनियम/के पश्चात भी हमारे यहाँ बाल बधुवा देखे जाते है जिन्हें मानसिक व शारीरिक शोषण होता है ऐसा नही है कि इस संदर्भ में अनुसंधान न हुए हों परन्तु जो शोध अभी तक हुए हैं, उनसे भी समस्या का हल नही निकल पा रहा है अतः और शोध की प्रशिक्षित है ताकि बच्चों को स्वस्थ्य, सुरक्षित परिवेश एवं अच्छा परामर्शन मिल सके और वह बेहत्तर जीवन जी सके।

इसके अतिरिक्त मानसिक रूप से कमजोर या मानसिक मंदता से ग्रस्त बच्चों पर भी शोध मार्गदर्शन दे सकते है चाहे दो मानसिक मंदता, आटिज्म, शारीरिक विकलांगता आदि किसी भी समस्या से ग्रस्त हो वहॉ भी हम शोध से उन्हें समाज को मुख्य धारा में जोड़ने में सफल हो सकते हैं।

वृद्धावस्था से सम्बन्धित शोध (Research in the fild of old age– वृद्धावास्था में व्यक्ति को अनेक संवेगात्मक एवं शारीरिक क्षीणताओं से गुजरना पड़ता है यह 60 की आयु वर्ग के पश्चात मानी गई है भारत के संम्बन्ध में अगर बात करें तो जब तक संयुक्त परिवार प्रथा थी उनकी देख – रेख बेहत्तर होती थी परन्तु वैश्वीकरण एवं भौतिकवादी युग में अधिकांशतः वह अकेले पड़ जाते है

इस आयु वर्ग में अधिकांशतः बुर्जग अकेलेपन, संवेगात्मक एवं शारीरिक क्षीणताओं, आर्थिक कमजोरियों स्मृति ह्यस आदि कई समस्याओं से जूझ रहे हैं अतः ऐसे समय में इन्हें परामर्शन की अत्यधिक आवश्कता होती है, वृद्धावस्था से सम्बन्धित समस्याओं पर शोध एक प्रेरक के रूप में कार्य कर सकते है ताकि उन्हें एक खुषहाल एवं सुरक्षित परिवेश प्राप्त हो सके।

(6) **मनोदैहिक एवं मनोचिकित्सा सम्बन्धी शोध** (Research in the field of Psychosomatic & Psychotherapy – मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दोनो रूपों में बीमार होने पर बीमार समझा जाता है, मन एवं शरीर किसी एक के अस्वस्थ होने पर सम्पूर्ण रूप से अस्वस्थ होने का बोध होता है, इसी तरह व्यक्ति के विभिन्न संवेग (emotion) या मानसिक संघर्ष की स्थितियाँ (State of mantal conflict) भी शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यशीलता को प्रभावित करते है, मनोदैहिक विकार मुख्यतः उसे कहते है। जिसके लक्षण स्पष्टः शारीरिक होते है लेकिन कारण शारीरिक न होकर मानसिक या मनोवैज्ञानिक होते है इसलिए अमेरिकी मनोवैज्ञानिक संघ (American Psychological Association - APA) से इसे मन शारीरिक विकृति (Psycho phisiological disordor) कहा है। अब तो अनुसंधान यह भी कहने लगे है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी तमाम् समस्याओं का कारण अधिकांशत मानसिक है, अतः इस समस्या पर अनुसंधान और होने के लिए प्रेरित करना चाहिए ताकि भविष्य में उचित दिशा – निर्देश मिल सके।

जहाँ तक मानसिक चिकित्सा सम्बन्धी समस्या है उस पर सम्पूर्ण विष्व में शोध हो रहे है परन्तु वर्तमान समय में भी ऐसी समस्या या मनोविकार आ रहे है जिनका निराकरण असम्भव हो रहा है, आज भी कई लोग मनोविदालिता (Schizophrenia) volkn fPkUrk (Depression) चित्त विकृति, परानोईया

आदि अनेक मानसिक रोगों से जूझ रहे है अतः यह क्षेत्र भी अनुसंधान के लिए उपयोगी है, इन क्षेत्रों में हुए शोध से असमान्य व्यक्ति के जीवन सकारात्मक परिणाम देखने को मिलेंगे या यूँ कहें कि मनोदैहिक, मनोविकार मनोचिकित्सा या किसी भी तरह की स्वास्थ्य समस्या पर शोध जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण या मार्गदर्शक के रूप में प्रेरित करेगें।

(7) औधोगिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित शोध (Research in the field of Industrial Psychology– औधोगिक मनोविज्ञान में उन व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है. जो औधोगिक कार्यों में संलग्न रहते हैं। औधोगिक विकास के लिए जरुरी है कि मालिक एवं कर्मचारियों के मध्य सौन्दर्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो, वर्तमान में देखा जा रहा है कि कई उद्योग अपने कर्मचारियों के लिए कम्पनी में बेहत्तर वातावरण का निर्माण कर रहे हैं उन्हें अपनी कम्पनियों में विभिन्न सुविधाओं का प्रस्ताव देते हैं ताकि उनको सन्तुष्ट रख सके परन्तु आज भी उद्योगो में आये दिन हड़ताल, तालाबन्दी, या कर्मचारियों एवं प्रशासन के मध्य होने वाली अन्तक्रिया और व्यवहार पर किये जाने वाले शोध इस परिवेश को उत्तम बनाने और कर्मचारियों की क्षमता का पूर्ण उपयोग करने में मार्गदर्शन करेगें।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त समाज में व्याप्त विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं तथा व्यवसाय कर रहे विभिन्न परामर्शदाताओं, मनोवैज्ञानिक, एवं मनोचिकित्सकों के सम्मुख आ रही विभिन्न समस्याओं पर शोध या अनुसंधानों को प्राथमिकता देनी होगी ताकि भविष्य में उपलब्ध शोध परिणामों से समस्याओं के निदान में मार्गदर्शन मिल सके।

16.5 सारांश– (conclusion) मनुष्य एक सभ्य प्राणी है, सभ्यता का यह स्वरूप सदियों के परिणाम स्वरूप आया, आज हम 21 वीं शताब्दी में है, परन्तु आज का मानव भी तमाम सुविधाओं के पश्चात् भी स्वयं को समस्याग्रस्त पाता है, अगर हम आदिकाल से वर्तमान तक की बात करें तो जब भी व्यक्ति परेशानी में आता है वह अपने बुर्जुगी, गणमान्य व्यक्तियों अथवा संगी साथियों से सलाह, मशवरा या राय लेता है, यही परामर्श है।

परामर्श दो व्यक्तियों के मध्य होने वाली वर्तालाप है जिसमें एक समस्याग्रस्त होता है और दूसरा उसकी समस्या के निदान के संदर्भ में उसको राय देता है ताकि यह स्वयं समस्या का समाधान कर सके।

वर्तमान समय में परामर्शन का स्वरूप बदल गया है अब यह एक विशम विषेशज्ञ के रूप उभर कर आया है, जिसमें परामर्शदाता को विभिन्न शिक्षण प्रशिक्षण की प्रशिक्षित होती है, साथ ही उसकी वैयक्तिक क्षमता इस कार्य को बेहत्तर ढ़ग से करने में सहयोग करती है वर्तमान समय में व्यक्ति इस कोर्स के लिए मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से डिग्री के साथ विभिन्न प्रकार के परामर्श जैसे कैरियर, विवाह, परिवार, मानसिक स्वास्थ्य आदि अनेक क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त कर प्रशिक्षण भी प्राप्त करता हैं।

वैश्वीकरण एवं भौतिकवादी युग में जब मानव सम्पूर्ण विश्व में रोजगार के सिलसिलें में जा रहा है, विश्व की तमाम संस्कृतियों का आदान प्रदान हो रहा हैं जहाँ दुनियाँ को देखना एवं समझना सरल हुआ है वहीं बहुत सी परेशानियाँ या समस्यायें भी दिखाई दी है, व्यक्ति तमाम सुविधाओं के पश्चात में संवेगात्मक रुप से कमजोर, संवेदनहीन, अकेला व स्वार्थी होते जा रहा है जिस कारण परामर्शदाताओं एवं मनोवैज्ञानिकों के सम्मुख अनेकानेक समस्याओं को उत्पन्न की हैं वो चाहे परिवार, शिक्षा, विवाह, कैरियर, वृद्धावस्था अथवा उद्योगों आदि से सम्बन्धित है, उनके समाधान के लिए भविश्य में शोध करने की प्रशिक्षित है ताकि वो भविश्य में मागदर्शन दे सके।

16.6 शब्दावली–

परामर्श (Counseling)– किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करने के लिए दी जाने वाली सहायता, सलाह एवं मागदर्शन परामर्श कहलाता है।

परामर्शदाता (Conusellor)– परामर्श देने वाले व्यक्ति को परामर्शदाता या उपबोधक कहते हैं।

परामर्शप्रार्थी (Counsellee)– वह व्यक्ति जो अपनी नीति समस्याओं के समाधान के लिए परामर्शदाता से सहयोग लेता हैं, परामर्शी या उपबोध्य कहलाता है।

16.7 स्वमूल्यांकन हेतू प्रश्न :–

नोट– नीचे दिये गये प्रश्नों का सही विकल्प चुनिये–

(1)– परामर्शदाता को ....होना चाहिए।

(l) शिक्षित

(ll) प्रशिक्षित

(lll) संवेदनशील

(iv) उपरोक्त सभी

(2) परामर्श की सफलता परामर्शदाता की .... पर निर्भर करती है।

(l) सामान्य योग्यता

(ll) वैयक्तिक योग्यता

(lll) गौण योग्यता

(lV) उपरोक्त में कोई नही

(3) परामर्शदाता में परानुभूति का गुण होना चाहिए – सत्य /असत्य

(4) परामर्शदाता को शरीर की भाषा का प्रशिक्षण लेना चाहिए– सत्य / असत्य

(5) प्रशिक्षण से परामर्शदाता की कार्यक्षमता में कमी आती है– सत्य / असत्य

(6) **गौण दक्षतायें परामर्शन के कार्य को अव्यवस्थित करते है–** सत्य / असत्य

उत्तर – 1–(lV), 2. (ll), 3– सत्य, 4– सत्य, 5– असत्य, 6– असत्य

16.8 निबन्धात्मक प्रश्न–

(1) परामर्श से आप क्या समझते हैं, परामर्शदाता के वैयक्तिक योग्यता पर प्रकाश डालिये ?

(2) परामर्शन में शिक्षण एवं प्रशिक्षण क्यों आवश्यकीय है स्पष्ट कीजिये ?

(3) परामर्श में आ रही विभिन्न समस्याओं को देखते हुए भविष्य में शोध हेतु दिशा निर्देश दीजिये ?

16.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) **राम अमरनाथ, अस्थाना मधु–** 'निर्देशन एवं परामर्शन' (सम्प्रव्यय क्षेत्र एवं उपागम) प्रकाशक–मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।

(2) **सिंह रामपाल, सिंह डा0 एस डी़, शर्मा डा0 देवदत्त–** व्यावहारिक–मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

(3) **उपाध्याय राधाबल्लभ, जायसवाल सोवाराम**–"शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्शन की भूमिका" अग्रवाल पब्लिकेशन।

(4) Suri Dr. S. P, SODHI Dr. T.S.& "Guidance and Counselling" Bawa Publications, 4141, urpan Estate plase II Patiala.

(5) **फातिमा डा0 निगार**– "असामान्य मनोविज्ञान" राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली 110002

(6) **भाई योगेन्द्रजीत**– "मानव विकास का मनोविज्ञान" प्रकाशक विनोद पुस्तक मन्दिर हास्पिटल रोड आगरा–3

(7) **पाठक पी0 डी0 – शिक्षा मनोविज्ञान"** प्रकाशन विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा,

(8) https://www.counselling foundation.org-Counselling Training /Counselling Training / Counselling.

(9) https://hi.m.wikepedia.org